वाल्मीकीय रामायण-कथा

श्री

वाल्मीकीय रामायण-कथा

रमाकान्त तिवारी

सुरुचि प्रकाशन
केशव कुञ्ज, नयी दिल्ली-११००५५

प्रकाशक : सुरुचि प्रकाशन
(सुरुचि संस्थान का प्रकाशन विभाग)
केशव कुंज, झण्डेवाला,
नयी दिल्ली–११००५५

प्रथम संस्करण : युगाब्द ५०९९ (विक्रम संवत् २०५५)
(१९९८ ई.)

मूल्य : सामान्य संस्करण रुपये ६५.००
पुस्तकालय संस्करण रुपये १२५.००

छायाक्षर-संयोजन : अल्फा ग्राफिक्स,
सी–६२, फ्लैटेड फैक्ट्रीज काम्प्लेक्स,
झंडेवालान, नयी दिल्ली–११० ०५५

मुद्रक : स्पीडोग्राफिक्स, दिल्ली

अनुक्रमणिका

मनोगत

श्री रामः शरणं समस्त जगतां
रामं विना का गती
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं
रामाय कार्यं नमः।
रामात् त्रस्यति काल भीम भुजगो
रामस्य सर्वं वशे
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे
राम ! त्वमेवाश्रयः ।। (स्कन्दपुराण)

श्री रामचन्द्र जी समस्त संसार को शरण देने वाले हैं। श्री राम के बिना दूसरी कौन सी गति है! श्री राम कलियुग के समस्त दोषों को नष्ट कर देते हैं, अतः श्री रामचन्द्र जी को नमस्कार करना चाहिये। श्री राम से कालरूपी भयंकर सर्प भी डरता है। जगत् का सब कुछ भगवान् श्री राम के वश में है। श्री राम में मेरी अखण्ड भक्ति बनी रहे। हे राम! आप ही मेरे आधार हैं।

श्रीराम की ही कृपा से मेरे अन्दर भाव आया कि मैं महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित राम-कथा महाकाव्य को भाषा में लिखूँ। प्रभु श्री राम की कृपा से मैंने सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण का संक्षेप वि०सं० २०४६ माघ कृष्णा एकादशी तदनुसार सन १९९३, १८ जनवरी, दिन सोमवार को पूर्ण किया।

राम-कथा के इस महान् आदिकाव्य को संक्षिप्त रूप में लिखते समय मैंने अद्भुत आनन्द एवं आत्मिक संतोष का अनुभव किया। संक्षिप्त रूप होने के बाद भी प्रयास यही रहा कि सभी प्रसंग, घटनाएं तथा विवरण इसमें सुरक्षित रहें।

भाषा में लिखी यह आदिकाव्य की सरल संक्षिप्त व्याख्या मैं प्रभु श्री राम के चरणों में समर्पित करता हूँ।

रामायण का प्रादुर्भाव महर्षि वाल्मीकि के मुख से हुआ है। यह समस्त पापों का नाश और दुष्ट ग्रहों की बाधा का निवारण करने वाला है। ऋषियों को यह प्रत्यक्ष हो गया था कि कलियुग में वेदोक्त मार्ग नष्ट हो जायेंगे। उस समय पाखण्ड फैल जायेगा, सभी लोग काम-वेदना से पीड़ित और लोभी होंगे तथा धर्म और ईश्वर का आश्रय छोड़कर आपस में एक-दूसरे पर ही निर्भर रहने वाले होंगे। उस युग की स्त्रियाँ अपने शरीर के पोषण में तत्पर और वेश्याओं के समान आचरण में प्रवृत्त होंगी। वे अपने पति की आज्ञा का अनादर करके दुराचारी पुरुषों से मिलने की अभिलाषा करेंगी। कठोर और असत्य बोलेंगी तथा शरीर को

शुद्ध कर सुसंस्कृत बनाये रखने के सद्गुणों से वंचित रहेंगी। कलियुग में अधिकांश स्त्रियाँ वाचाल होंगी।

भिक्षा से जीवन-निर्वाह करने वाले संन्यासी भी मित्र आदि के स्नेह-सम्बन्ध में बँधे रहने वाले होंगे। वे भोजन के लिए चिन्तित होने के कारण लोभवश शिष्यों का संग्रह करेंगे।

जब ब्राह्मण पाखण्डी लोगों के साथ रहकर पाखण्डपूर्ण बातें करने लगें, तब जानना चाहिये कि कलियुग प्रचुर बढ़ गया।

घोर कलियुग आने पर राम-कथा ही लोगों की मुक्ति का उपाय बनेगी, ऐसा ऋषियों ने ज्ञात किया।

इसलिए रामायण नामक परम पुण्यदायक उत्तम काव्य का श्रवण करें, जिसके सुनने से जन्म, जरा और मृत्यु के भय का नाश हो जाता है तथा श्रवण करने वाला मनुष्य पापदोष से रहित हो अच्युतस्वरूप हो जाता है।

विनीत,
रमाकान्त तिवारी

।। श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः ।।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-कथा

बाल-काण्ड

प्रथम सर्ग

वाल्मीकि-नारद संवाद।

तपस्वी वाल्मीकि ने तप और स्वाध्याय में लगे रहने वाले, वक्ताओं में श्रेष्ठ, मुनिवर नारद जी से पूछा–'मुने! इस समय संसार में गुणवान्, धर्मज्ञ, सत्यवक्ता, दृढ़-प्रतिज्ञ, समस्त प्राणियों का हित-साधक, विद्वान्, मन पर अधिकार रखने वाला, एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है? महर्षे! मैं यह सुनना चाहता हूँ। आप ऐसे पुरुष को जानने में समर्थ हैं।' यह सुनकर नारद जी 'अच्छा सुनिये' कहकर बोले :

मुने! आपने जिन बहुत से दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है, उनसे युक्त इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न एक ऐसे पुरुष हैं जो राम नाम से विख्यात हैं। वे ही मन को वश में रखने वाले, महाबलवान्, कान्तिमान, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं। धर्म के ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजा के हितसाधन में लगे रहने वाले हैं। वे आर्य एवं सब में समान भाव रखने वाले हैं, उनका दर्शन सदा ही प्रिय लगता है। राम के सम्बन्ध में आगे बताते हुए नारद मुनि ने कहा कि राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहा, परन्तु उनकी एक रानी कैकेयी ने यह वर माँगा कि राम को वनवास मिले तथा भरत (कैकेयी के पुत्र) का राज्याभिषेक हो। राजा दशरथ ने सत्यवचन के कारण अपने प्रिय पुत्र राम को वनवास दे दिया। पिता की आज्ञा का पालन करते हुए श्री राम अपनी पत्नी सीता तथा छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन को चले गये। श्रृंगवेरपुर में गंगा-तट पर निषादराज गुह से भेंट के बाद उन्होंने रथ को लौटा दिया तथा भ्रमण करते हुए भरद्वाज-आश्रम पहुँचे। भरद्वाज मुनि की ही आज्ञा से श्री राम ने चित्रकूट में अपना निवास बनाया। पुत्र-शोक से पीड़ित राजा दशरथ स्वर्गवासी हो गये तथा भरत राज्य की कामना न करके पूज्य राम को लौटाने के लिए चित्रकूट गये। श्री राम ने पिता की आज्ञा-पालन का संकल्प बताते हुए भरत को अयोध्या लौटा दिया तथा अपने खड़ाऊँ भरत को दिये। भरत खड़ाऊँ को सिंहासन पर स्थापित करके नन्दिग्राम में रहकर राज्य करने लगे। भरत के चित्रकूट से लौटने के बाद श्री राम ने दण्डकारण्य में प्रवेश किया। वहाँ विराध नामक राक्षस को मारकर वे शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि मुनियों से मिले। अगस्त्य मुनि ने श्रीराम को ऐन्द्र धनुष, खंग तथा दो तूणीर दिये जिनमें वाण कभी

घटते नहीं थे। राक्षसों के अत्याचार का वर्णन सुनकर श्री राम ने ऋषियों को वचन दिया कि वे राक्षसों का विनाश करेंगे। (सीता पर झपट रही) शूर्पणखा नामक राक्षसी को लक्ष्मण ने कुरूप कर दिया तथा उसके कहने से चढ़ाई करने वाले खर, दूषण, त्रिशिरा आदि सभी चौदह सहस्र (१४०००) राक्षसों को श्री राम ने जन-स्थान में मार गिराया। अपने कुटुम्ब का वध सुनकर रावण ने मारीच की सहायता से सीता का हरण किया तथा उनकी रक्षा में जटायु का वध हुआ। तदनन्तर सीता को खोजते समय राम ने कबन्ध नामक राक्षस को मारा तथा शबरी के आश्रम पर गये। धर्मपरायणा शबरी ने श्रीराम का भली भाँति पूजन किया। फिर श्रीराम की हनुमान् से भेंट हुई तथा उन्होंने सुग्रीव से मैत्री स्थापित की। सुग्रीव के भाई वाली ने उसे राज्य से निकाल दिया था। श्री राम ने वाली का वध करके सुग्रीव को राज्य पर स्थापित किया। सुग्रीव ने वानरों को सीता का पता लगाने भेजा। हनुमान् की सीता से भेंट हुई। समाचार मिलने पर श्रीराम ने समुद्र के कहने पर नल द्वारा समुद्र पर पुल बँधवाया तथा लंकापुरी जाकर रावण को मारा। सीता की अग्नि-परीक्षा हुई तथा अपने सभी अनुचरों के साथ श्रीराम अयोध्या आकर राज्य पर प्रतिष्ठित हुए। अब राम के राज्य में लोग प्रसन्न, सुखी, संतुष्ट, पुष्ट, धार्मिक तथा रोग-व्याधि से मुक्त रहेंगे। सत्ययुग की भाँति सभी लोग सदा प्रसन्न रहेंगे। फिर ग्यारह सहस्र (११०००) वर्षों तक राज्य करने के अनन्तर श्रीराम अपने परमधाम को पधारेंगे।
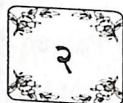
मुनि वाल्मीकि के मुख से प्रथम श्लोक का प्रस्फुटन; रामायण काव्य का सृजन।

देवर्षि नारद जी के वचन सुनकर ऋषि वाल्मीकि ने शिष्यों सहित उनका पूजन किया तथा नारद जी आकाश-मार्ग से चले गये। उनके जाने के बाद मुनि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर गये। वहाँ उन्होंने क्रौञ्च पक्षियों के एक जोड़े को देखा। उन्हीं के सामने एक निषाद ने उस जोड़े में से एक, नर पक्षी को मार डाला। उसकी भार्या क्रौञ्ची करुणाजनक चीत्कार कर उठी। उस नर पक्षी की वह दुर्दशा देख ऋषि को बड़ी दया आयी और रोती हुई क्रौञ्ची की ओर देखते हुए उन्होंने निषाद से इस प्रकार कहा–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौञ्च-मिथुनादेकमवधीः काम-मोहितम् ।।

निषाद! तुझे कभी भी प्रतिष्ठा (शान्ति) न मिले, क्योंकि तूने इस क्रौञ्च के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली।

तभी वाल्मीकि के मन में विचार कौंधा कि मैंने यह क्या कहा और कैसे कह डाला! उन्होंने इस पर चिन्तन किया। तब अपने शिष्य से वे बोले–'तात! मेरे मुख से जो वाक्य निकल पड़ा, यह चार चरणों में आबद्ध है। इसे वीणा की लय पर गाया भी जा सकता है।

अतः मेरा यह वचन श्लोकरूप होना चाहिये।' उनका ध्यान उस श्लोक की ओर ही लगा था कि इतने में ब्रह्मा जी मुनि वाल्मीकि से मिलने के लिए उनके आश्रम पर आये। उन्हें देखते ही वाल्मीकि सहसा खड़े हो गये, ब्रह्मा जी का पूजन किया तथा उनके आसन पर विराजमान होने के बाद बैठे। उनका मन पक्षी वाली घटना की ओर ही लगा था इसलिए उन्होंने ब्रह्मा जी के सामने उसी श्लोक को दुहराया। ब्रह्मा जी ने कहा–ब्रह्मन्! तुम्हारे मुँह से निकला यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकरूप ही है। इसी में तुम श्री राम के सम्पूर्ण चरित्र का वर्णन करो। श्री राम के जो गुप्त या प्रकट वृत्तान्त हैं, वे सब अज्ञात होने पर भी तुम्हें ज्ञात हो जायेंगे। इस पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी, तब तक संसार में रामायण-कथा का प्रचार होता रहेगा। ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा जी वहीं अन्तर्धान हो गये।

महर्षि वाल्मीकि श्री राम के जीवन-वृत्त का पुनः भली भाँति साक्षात्कार करने के लिए प्रयत्न करने लगे। योग का आश्रय लेकर महर्षि ने पूर्वकाल में जो-जो घटनाएं घटित हुई थीं, उन सब को प्रत्यक्ष देखा और महाकाव्य का रूप देने की चेष्टा की। नारद जी ने पहले जैसा वर्णन किया था, उसी के क्रम से वाल्मीकि मुनि ने श्री राम के चरित्र 'रामायण' काव्य का निर्माण किया।

इसमें महर्षि ने चौबीस सहस्र (२४ हजार) श्लोक, पाँच सौ सर्ग तथा उत्तरकाण्ड सहित सात काण्डों का प्रतिपादन किया है। पूर्ण कर लेने के बाद मुनि ने सोचा कि कौन ऐसा होगा जो इस महाकाव्य को पढ़कर जन-समुदाय में सुना सके? उसी समय कुश और लव ने आकर उन्हें प्रणाम किया। उन्हें योग्य समझकर मुनि ने कुश और लव को रामायण का अध्ययन कराया।

दशरथ का परिचय; अश्वमेध यज्ञ की तैयारी।

कोशल नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है जो सरयू नदी के तट पर बसा हुआ है। उसी जनपद में अयोध्या नाम की नगरी है। उस पुरी को स्वयं महाराज मनु ने बनवाया और बसाया था। मनु से लेकर अब तक वह पुरी उसी वंश के नरेशों के अधिकार में रही। राजा दशरथ ने अयोध्यापुरी को पहले की अपेक्षा विशेष रूप से बसाया था।

उसी अयोध्यापुरी में रहकर राजा दशरथ प्रजावर्ग का पालन करते थे। वे दूरदर्शी और महान् तेजस्वी थे। अयोध्या पुरी में निवास करने वाले सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत, निर्लोभ, सत्यवादी तथा अपने-अपने धन से संतुष्ट रहने वाले थे। सभी के पास उत्कृष्ट वस्तुएं उपलब्ध थीं तथा गाय, बैल, घोड़े, धन, धान्य की प्रचुरता थी। हर प्रकार से सुरक्षा थी। दो योजन भूमि तो ऐसी थी जहाँ पहुँच कर युद्ध करना किसी के लिए भी असम्भव था। इसलिए वह पुरी अयोध्या–इस सार्थक नाम से प्रसिद्ध हुई।

महाराज दशरथ के आठ अमात्य थे, जो तत्त्व को जानने वाले और बाहरी चेष्टा देखकर ही मन के भाव को समझ लेने वाले थे। उनके नाम थे–धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र। वसिष्ठ और वामदेव राजा के पुरोहित थे। इनके अतिरिक्त सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय और कात्यायन महाराज के मंत्री थे। अपने गुणों के कारण वे सभी मंत्री राजा के अनुग्रह-पात्र थे तथा उनका दोनों पुरोहितों की भाँति ही गुरु-तुल्य समादरणीय स्थान था। विदेशों में भी सब लोग उन्हें जानते थे। ऐसे गुणवान् मन्त्रियों के साथ रहकर निष्पाप राजा दशरथ उस भूमण्डल का शासन करते थे।

राजा दशरथ पुत्र के लिए सदा चिन्तित रहते थे। उनके वंश को चलाने वाला कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने अपने प्रधान अमात्य सुमंत्र को भेजकर कुल-पुरोहित वसिष्ठ तथा मुनियों एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों का आवाहन किया और उन से सहमति लेकर अवश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान का निश्चय किया। महाराज दशरथ ने भूमण्डल में भ्रमण के लिए यज्ञ-सम्बन्धी अश्व (घोड़ा) छोड़ा, यज्ञ-सामग्री का संग्रह किया तथा सरयू के उत्तर-तट पर यज्ञ-भूमि का निर्माण कराया।

अश्वमेध यज्ञ के संकल्प को सुनकर सुमन्त्र ने राजा दशरथ से एकान्त में कहा–"महाराज! एक पुराना इतिहास सुनिये। मैंने पुराण में भी इसका वर्णन सुना है। पूर्वकाल में भगवान् सनत्कुमार ने ऋषियों को एक कथा सुनायी थी। यह आपकी पुत्र-प्राप्ति से सम्बन्ध रखने वाली है। भगवान् सनत्कुमार ने कहा–'मुनिवरो! काश्यप ऋषि का विभाण्डक नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र है। उसका भी एक पुत्र होगा जिसकी प्रसिद्धि ऋष्यशृंग नाम से होगी। वे सदा वन में रहेंगे तथा पिता के अतिरिक्त दूसरे किसी को नहीं जानेंगे। उसी समय अंगदेश में रोमपाद नामक एक बड़े प्रतापी राजा होंगे। उनके द्वारा धर्म का उल्लंघन हो जाने के कारण उस देश में घोर अनावृष्टि हो जायेगी। इससे राजा रोमपाद को बहुत दुःख होगा। वे ज्ञान में बढ़े-चढ़े ब्राह्मणों को बुलाकर कहेंगे–विप्रवरो! आप लोग वेद-शास्त्र के अनुसार कर्म करने वाले हैं। अतः कृपा करके मुझे ऐसा कोई विधान बताइये जिससे मेरे पाप का प्रायश्चित हो जाय। राजा के ऐसा कहने पर सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण उन्हें सलाह देंगे–राजन्! विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृंग वेदों के पारगामी विद्वान् हैं, आप सभी उपायों से उन्हें यहाँ ले आइये तथा वैदिक विधि के अनुसार उनके साथ अपनी कन्या शान्ता का विवाह कर दीजिये। महर्षि विभाण्डक से डर कर मंत्री और पुरोहित ऋष्यशृंग को बुलाने का साहस नहीं करेंगे। फिर वेश्याओं की सहायता से ऋष्यशृंग को अपने यहाँ बुलायेंगे। उनके आते ही इन्द्रदेव राज्य में वर्षा करेंगे। फिर राजा उन्हें अपनी पुत्री शान्ता समर्पित कर देंगे।' वे (ऋृष्यशृंग) ही आपके लिए पुत्रों को सुलभ कराने वाले यज्ञ-कर्म का सम्पादन करें।"

यह सुनकर राजा दशरथ को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सुमन्त्र से कहा–मुनिकुमार ऋष्यशृंग को जिस प्रकार और जिस उपाय से बुलाया गया, वह स्पष्ट रूप से बताओ। यह

सुनकर सुमन्त्र ने बताया– राजा रोमपाद के पुरोहितों ने कहा कि हम मनुष्यों के चित्त को मथ डालने वाले विषयों का प्रलोभन देकर उन्हें अपने नगर में ले आयेंगे। यदि सुन्दर आभूषणों से विभूषित मनोहर रूप वाली गणिकाएं (वेश्याएं) वहाँ जायें तो वे लुभाकर उन्हें इस नगर में ले आयेंगी। राजा का आदेश सुनकर नगर की मुख्य-मुख्य वेश्याएं उस वन में गयीं तथा उन्हें आकर्षित करके अंगदेश ले गयीं। उनके अंगदेश में आते ही इन्द्र ने सहसा पानी बरसाना आरम्भ कर दिया। वर्षा से ही राजा को तपस्वी ब्राह्मण-कुमार के आगमन का अनुमान हो गया तथा उन्होंने ऋष्यशृंग मुनि की अगवानी की तथा अन्तःपुर में लाकर अपनी कन्या शान्ता का उनके साथ विवाह कर दिया। सुमन्त्र ने फिर कहा–महाराज! आप स्वयं ही अंगदेश में जाकर मुनिकुमार ऋष्यशृंग को सत्कारपूर्वक यहाँ ले आइये। सुमन्त्र के वचन सुनकर राजा दशरथ को बड़ा हर्ष हुआ तथा उन्होंने अंगदेश के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अंगराज से कहा कि तुम्हारी पुत्री शान्ता अपने पति के साथ मेरे नगर में पदार्पण करे। राजा की आज्ञा पाकर ऋषिपुत्र ने चलने की स्वीकृति दे दी तथा राजा दशरथ के साथ अयोध्यापुरी आये।

४

दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ और श्री रामादि चार पुत्रों का जन्म।

एक वर्ष पूरा होने पर जब यज्ञ का अश्व लौट आया तो मुनि ने शास्त्र-विधि के अनुसार अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान सम्पन्न किया। उसके बाद मुनि ने पुत्रेष्टि नामक यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में अपना भाग लेने के लिए सभी देवता तथा विष्णु व ब्रह्मा भी उपस्थित थे। उसी यज्ञ में देवताओं ने भगवान् विष्णु की स्तुति (प्रार्थना) की और फिर रावण के पराक्रम व अत्याचार का वर्णन किया। विष्णु भगवान् ने रावण-वध का निश्चय करके मनुष्य-रूप में जन्म लेने का संकल्प किया तथा राजा दशरथ को ही पिता बनाने की इच्छा की। उनके अन्तर्धान होने के बाद यज्ञ में अग्निकुण्ड से एक विशालकाय पुरुष खीर लिये हुए प्रकट हुआ जिसने राजा दशरथ से कहा कि तुम देवताओं की आराधना करते हो इसलिए देवताओं की बनायी यह खीर प्राप्त करो जो संतान की प्राप्ति कराने वाली है। राजा दशरथ ने उस खीर का आधा भाग रानी कौसल्या को दिया तथा शेष आधे का आधा भाग रानी सुमित्रा को दिया तथा दूसरे आधे का आधा भाग रानी कैकेयी को दिया और अवशिष्ट (बचे हुए) आधे भाग को पुनः रानी सुमित्रा को दे दिया। रानियों ने उस यज्ञ की उत्तम खीर को ग्रहण करके गर्भ धारण किया। जब भगवान् विष्णु राजा दशरथ के पुत्रभाव को प्राप्त हो गये तो भगवान् ब्रह्मा ने समस्त देवगणों से कहा कि तुम लोग उनके सहायक रूप से ऐसे पुत्रों की सृष्टि करो जो बलवान्, नीतिज्ञ, बुद्धिमान् तथा सब प्रकार की अस्त्रविद्या के गुणों से सम्पन्न हों। देवों ने उनकी आज्ञा स्वीकार करके वानर रूप में अनेकानेक पुत्र उत्पन्न किये।

चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में कौसल्या देवी ने दिव्य लक्षणों से युक्त श्री राम को जन्म दिया। तदनन्तर कैकेयी से भरत का जन्म हुआ। उसके बाद सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न, दो पुत्रों को जन्म दिया। बाल्यकाल से ही लक्ष्मण श्री राम के प्रति अत्यन्त अनुराग रखते थे तथा लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न भरत को अधिक प्रिय मानते थे।

यज्ञ-रक्षा-हेतु राम-लक्ष्मण को माँगने विश्वामित्र का आगमन।

चारों भाइयों की शास्त्र और शस्त्र शिक्षा

चारों भाइयों को शास्त्र व शस्त्र की शिक्षा वसिष्ठ जी की देखरेख में योग्य शिक्षकों द्वारा प्रदान की जाने लगी। इस बीच महामुनि विश्वामित्र राजा दशरथ से मिलने आये। विश्वामित्र महान् तपस्वी तथा विख्यात ऋषि थे। उनके आगमन का समाचार सुनकर राजा दशरथ के मन में घबराहट हुई, परन्तु उन्होंने महामुनि का यथायोग्य स्वागत किया। विश्वामित्र ने अपने आने का उद्देश्य बताते हुए कहा कि हम सिद्धि के लिए एक नियम का अनुष्ठान कर रहे हैं परन्तु मारीच और सुबाहु नामक राक्षस विघ्न डालते रहते हैं। वे राक्षस बहुत मायावी हैं, इसलिए आप यज्ञ की रक्षा के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को लक्ष्मण के साथ मुझे दे दीजिये।

विश्वामित्र जी के वचन सुनकर राज दशरथ कुछ देर के लिए संज्ञाशून्य-से हो गये तथा फिर कहा कि राम अभी पूरे सोलह वर्ष के भी नहीं हुए और मैं उनकी राक्षसों के साथ युद्ध करने की योग्यता नहीं देखता। आप के साथ में अपनी सेना के साथ चलूंगा तथा राक्षसों के साथ युद्ध करूंगा। बड़ी दीनता से राजा दशरथ ने कहा कि मैं वृद्ध हो गया हूँ तथा बड़ी कठिनाई से पुत्र की प्राप्ति हुई है, अतः आप राम को न ले जाइये। राजा दशरथ की बात सुनकर महामुनि ने बताया कि महर्षि पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न, विश्रवा मुनि का पुत्र रावण ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करके सभी देशवासियों को अत्यन्त कष्ट देता रहा है। उसी की प्रेरणा से दो बलवान् राक्षस यज्ञों में विघ्न डाला करते हैं। रावण का नाम सुनकर राजा दशरथ ने कहा कि मैं उस रावण के सामने युद्ध में नहीं ठहर सकता। रावण का वेग तो देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, गरुड़ और नाग भी नहीं सह सकते हैं, फिर मनुष्यों की क्या बात है!

राजा दशरथ की बात से विश्वामित्र अत्यधिक क्रोध में आ गये और बोले कि मेरी बात न मानना इस कुल के विनाश का सूचक है। विश्वामित्र के क्रोध के परिणाम को समझकर महर्षि वसिष्ठ ने राजा दशरथ को विश्वामित्र की तेजस्विता बतायी तथा परामर्श दिया कि वे महर्षि की आज्ञा मान कर राम को साथ जाने की अनुमति दे दें।

उन्होंने कहा– ये अस्त्र-विद्या जानते हों या न जानते हों, राक्षस इनका सामना नहीं कर सकते। विश्वामित्र से सुरक्षित हुए श्री राम का वे राक्षस कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। चराचर प्राणियों सहित तीनों लोकों में जो नाना प्रकार के अस्त्र हैं, उन सबको विश्वामित्र जानते हैं। प्रायः सभी अस्त्र कृशाश्व के परम धर्मात्मा पुत्र हैं। उन्हें प्रजापति ने पूर्वकाल में विश्वामित्र को, जब वे राज्य-शासन करते थे, समर्पित कर दिया था। प्रजापति दक्ष की दो सुन्दरी कन्याएं जया और सुप्रभा हैं, उन दोनों ने एक सौ परम प्रकाशमान् अस्त्र-शस्त्रों को उत्पन्न किया है। ये कुशिकनन्दन उन सब अस्त्र-शस्त्रों को अच्छी प्रकार से जानते हैं। जो अस्त्र अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं उनको भी उत्पन्न करने की इनमें पूर्ण शक्ति है। महर्षि कौशिक स्वयं भी उन राक्षसों का संहार करने में समर्थ हैं, किन्तु ये आपके पुत्र का कल्याण करना चाहते हैं। अतः इनके साथ राम को भेजने में आप किसी प्रकार का संदेह न करें। महर्षि वसिष्ठ के इस वचन से दशरथ का मन प्रसन्न हो गया तथा विश्वामित्र के साथ श्री राम का जाना उन्हें उचित लगा।
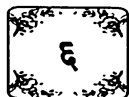
राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ प्रस्थान; ताटका-वध।

राम व लक्ष्मण महात्मा विश्वामित्र के साथ तैयार होकर चल दिये। डेढ़ योजन चलने के बाद सरयू के दक्षिणी तट पर महामुनि ने जल से आचमन की आज्ञा दी तथा उन्हें बला और अतिबला नाम से प्रसिद्ध मंत्र-समुदाय प्रदान किया। मंत्र-समुदाय के प्रभाव का वर्णन करते हुए महर्षि विश्वामित्र ने बताया कि अब तुम्हें कभी थकावट अनुभव नहीं होगी तथा ज्वर भी नहीं होगा। सोते समय अथवा असावधानी की अवस्था में भी राक्षस आक्रमण नहीं कर सकेंगे तथा इनका अभ्यास करने से कोई तुम लोगों की समानता नहीं कर सकेगा और ये विद्याएं सब प्रकार के ज्ञान की जननी हैं।

मार्ग में चलते हुए उन्हें एक पुण्य-आश्रम मिला। रात्रि में उन्होंने वहीं विश्राम किया। महामुनि ने राम को बताया कि भगवान् स्थाणु (शिव) इसी आश्रम में तपस्या करते थे। एक दिन काम ने उन पर आक्रमण किया तथा शिव ने अपनी रोषभरी दृष्टि से देखा, जिससे कन्दर्प (काम) अंगहीन हो गया। तभी से वह अनङ्ग नाम से विख्यात हुआ। कन्दर्प ने जहाँ अपना अंग छोड़ा था, वह प्रदेश अंगदेश के नाम से विख्यात हुआ। यह स्थान गंगा व सरयू के शुभ संगम पर है तथा आजकल के वाराणसी नगर के पास स्थित है।

पुण्य-आश्रम के पास गंगा नदी को पार करके जब महामुनि के साथ राम, लक्ष्मण ने आगे प्रस्थान किया तो उन्होंने एक भयंकर वन देखा जिसमें मनुष्य के आने-जाने का कोई चिह्न नहीं था। राम की जिज्ञासा पर महामुनि ने बताया कि यह 'मलद' और 'करूष' जनपदों का क्षेत्र है। ये बहुत समृद्धिशाली एवं धन-धान्य से सम्पन्न जनपद थे। परन्तु कुछ काल से यहाँ इच्छानुसार रूप धारण करने वाली एक यक्षिणी निवास करने लगी है तथा उसमें एक हजार हाथियों का बल है। उसका नाम ताटका है। वह सुन्द नामक दैत्य की पत्नी है तथा उसका मारीच नामक बड़ा बलवान् पुत्र है। वह यक्षिणी इन जनपदों का विनाश करती रहती है। तुम्हें उसे मारकर जनपद को निरापद करना होगा।

मुनि की बात सुनकर राम ने प्रश्न किया कि वह यक्षिणी है, फिर उसे एक सहस्र हाथियों का बल कैसे प्राप्त हो गया? महामुनि ने बताया कि ब्रह्मा ने ताड़का के पिता महान् यक्ष सुकेतु की तपस्या व सदाचार से प्रसन्न होकर उस कन्या को एक हजार हाथियों का बल प्रदान कर दिया। ताड़का का पुत्र मारीच अगस्त्य मुनि के शाप से राक्षसभाव को प्राप्त हो गया था। उन महामुनि ने शाप देकर उसके पति सुन्द को भी मार डाला जिससे कुपित होकर ताड़का अगस्त्य मुनि को मारने की इच्छा करने लगी। उसे आते देख मुनि ने शाप

दिया कि तू विकराल मुखवाली नरभक्षिणी राक्षसी हो जा! इससे वह अत्यन्त क्रोधित हुई तथा इस सुन्दर देश को उजाड़ दिया। राम तुम स्त्री-हत्या का विचार करके उसके प्रति दया न दिखाना। राजपुत्र को चारों वर्णों के हित के लिए स्त्री-हत्या भी करनी पड़े तो उससे मुँह नहीं मोड़ना चाहिये।

न हि ते स्त्रीवध-कृते घृणा कार्या नरोत्तम ।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ।। २५/७ ।।

विश्वामित्र की बात सुनकर राम ने कहा–

गो-ब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च ।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ।। २६/५ ।।

(गो-ब्राह्मण तथा समूचे देश का हित करने के लिए मैं आप जैसे अनुपम प्रभावशाली महात्मा के आदेश का पालन करूंगा।)

इसके बाद राम ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ायी और टंकार की, जिसकी आवाज से ताड़का क्रोध में भर कर आयी। उसने अनेक प्रकार से मायावी युद्ध किया, परन्तु राम ने अन्त में उसका वध कर दिया। ताड़का-वध से प्रसन्न होकर इन्द्र तथा समस्त देव आ गये तथा राम पर अपना स्नेह प्रकट किया और कहा कि राजकुमार श्री राम के द्वारा देवताओं का महान् कार्य सम्पन्न होने वाला है।
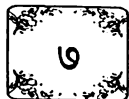
विश्वामित्र के आश्रम में पहुँचकर यज्ञ-रक्षा।

ताड़का-वध से प्रसन्न होकर महामुनि विश्वामित्र ने श्री राम को अनेक दिव्यास्त्र प्रदान किये तथा बताया कि इनके प्रभाव से तुम अपने शत्रुओं को, चाहे वे देव, असुर, गन्धर्व अथवा नाग ही क्यों न हों, रणभूमि में बलपूर्वक अपने अधीन करके उन पर विजय पा जाओगे।

महामुनि विश्वामित्र के साथ चलते-चलते श्री राम मुनि के आश्रम के पास आ गये। श्री राम के पूछने पर मुनि ने बताया कि इसका नाम सिद्धाश्रम है क्योंकि यहाँ महातपस्वी वामनरूप विष्णु को सिद्धि प्राप्त हुई थी। उसी काल में राजा बलि ने इन्द्र और मरुद्गणों सहित समस्त देवों को पराजित किया तथा तीनों लोकों में विख्यात हो गये। बलि एक उत्तम यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। देवों ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि आप वामन रूप धारण करके बलि से उसका समस्त राज्य दान में माँग लीजिये। महर्षि कश्यप और उनकी धर्मपत्नी अदिति महान् तपस्या से प्रकाशित हो रहे थे। उन्हीं की स्तुति से प्रसन्न होकर उन्हें सुखी करने के लिए विष्णु ने अदिति के गर्भ से जन्म ग्रहण किया और वामन रूप धारण करके बलि के पास गये तथा तीन पग भूमि का दान ग्रहण किया।

परम धनुर्धर श्री राम व लक्ष्मण सावधान रहकर यज्ञ की रक्षा में लगे रहे। एक दिन मारीच और सुबाहु नामक राक्षस अपने अनुचरों के साथ आये तथा सब ओर माया फैलाते हुए यज्ञ-मण्डप के पास रक्त की धाराएं बरसाना आरम्भ कर दिया। उन्हें देखकर राम ने मानवास्त्र का संधान किया तथा मारीच की छाती में उस बाण का प्रहार किया। मारीच आघात लगने से सौ योजन की दूरी पर समुद्र के जल में जा गिरा। इसके बाद श्री राम ने आग्नेयास्त्र से सुबाहु का तथा वायव्यास्त्र से सभी निशाचरों का संहार कर डाला। यज्ञ समाप्त होने पर महामुनि बहुत प्रसन्न हुए।
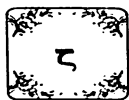
यज्ञ देखने मिथिला प्रस्थान।

इसके बाद आश्रम पर रहने वाले ऋषि-मुनियों ने राम से कहा कि हम लोग महर्षि विश्वामित्र के साथ मिथिला के राजा जनक के यहाँ आयोजित यज्ञ में जा रहे हैं, तुम भी हमारे साथ चलो। मिथिला में एक बड़ा ही अद्भुत धनुषरत्न है, तुम्हें उसे देखना चाहिये। वह धनुष बहुत भारी तथा प्रकाशमान् एवं भयंकर है। उसकी प्रत्यञ्चा भी कोई नहीं चढ़ा सका। वह धनुष भगवान् शंकर ने पूर्वकाल में प्रदान किया था। महामुनि विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण तथा सभी ऋषि-मण्डली के साथ मिथिला को प्रस्थान किया।

यात्रा के ही अन्तराल में महामुनि विश्वामित्र ने पूर्वकाल में कुश नाम से प्रसिद्ध राजा की कथा सुनायी। राजा के चार पुत्र थे जिनमें से एक कुशनाभ ने घृताची अप्सरा से सौ कन्याओं को जन्म दिया। एक दिन वायु देव ने उन कन्याओं के रूप से मोहित होकर उन को अपनी भार्या बनाना चाहा, परन्तु कन्याओं ने कहा कि हम लोग अपने पिता की आज्ञा में हैं तथा आप के प्रति हम लोगों का कोई भाव नहीं है, इसलिए हमें आपका प्रस्ताव स्वीकार नहीं है। इससे वायु देव कुपित हो गये तथा उनके अन्दर प्रवेश करके उनके अंगों को टेढ़ा-मेढ़ा कर दिया। वे सब कुबड़ी हो गयीं। वे सब दुःखी होकर अपने पिता के पास गयीं और सब घटनाएं बतायीं। अब पिता के सामने यह समस्या हो गयी थी कि इनका विवाह कैसे होगा? इसी समय ब्रह्मर्षि चूली ने एक गन्धर्व-कन्या को पुत्र प्रदान किया तथा मानस-पुत्र के रूप में उसका नाम ब्रह्मदत्त रखा। उनका यह पुत्र बड़ा प्रतापी राजा हुआ। कुशनाभ की कन्याओं का विवाह ब्रह्मदत्त से हो गया।

कुशनाभ ने गाधि नामक पुत्र को भी जन्म दिया। वही महामुनि विश्वामित्र के पिता थे। कुश के कुल में उत्पन्न होने के कारण विश्वामित्र 'कौशिक' भी कहलाये।

गंगावतरण-कथा

अगले दिन विश्वामित्र ने गंगा जी की उत्पत्ति की कथा श्रीराम को बताते हुए कहा : सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा तथा भगवती उमा– ये दोनों गिरिराज हिमालय की कन्याएं उनकी पत्नी मैना के गर्भ से उत्पन्न हुई हैं। देवताओं ने देव-कार्य की सिद्धि के लिए गिरिराज हिमालय से गंगा को माँग लिया तथा आगे चलकर वही स्वर्ग से त्रिपथगा नदी के रूप में अवतीर्ण हुई। उमा बहुत तपस्विनी थी, उसका विवाह भगवान् रुद्र से हुआ। राम व लक्ष्मण की जिज्ञासा देखकर महामुनि ने कार्तिकेय के जन्म की कथा सुनायी तथा देवगणों से रुष्ट होकर उमा द्वारा शाप दिये जाने की घटना बतायी। अपने शाप में उमा ने कहा कि अब देवगण संतान नहीं उत्पन्न कर सकेंगे तथा पृथ्वी का एक रूप नहीं रह जायेगा, यह बहुतों की भार्या होगी।

महामुनि विश्वामित्र ने अयोध्या के धर्मात्मा राजा सगर की कथा सुनायी। सगर के यज्ञ का अश्व खो गया। उनके ६० हजार पुत्र उस यज्ञ के घोड़े को खोजने गये। बहुत प्रयास के बाद उन लोगों को वह घोड़ा कपिल मुनि के आश्रम में मिला। सगर के पुत्रों ने क्रोध में आकर महामुनि कपिल का अपमान किया जिससे उनके हुंकार से वे सभी जलकर भस्म हो गये। पर्याप्त समय के पश्चात् भी जब राजा सगर के पुत्र वापस नहीं आये तो उन्होंने अपने पौत्र अंशुमान् को घोड़ा खोजकर लाने के लिए भेजा। अंशुमान् घोड़ा लाये तथा सब कथा राजा सगर को बतायी और कहा कि जब तक गंगा जी के जल से उन भस्म हुए मृतकों का तर्पण नहीं होगा, उस समय तक उन्हें मुक्ति नहीं मिलेगी। गंगा जी को कैसे पृथ्वी पर लाया जाये, इसकी चेष्टा सगर तथा उनके पौत्र अंशुमान् और तदनन्तर उनके पुत्र दिलीप ने की। परन्तु सफलता दिलीप के पुत्र भगीरथ की तपस्या से मिली। गोकर्ण तीर्थ में भगीरथ ने बड़ी भारी तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें दर्शन दिया तथा कहा कि गंगा का वेग पृथ्वी नहीं सह सकती, इसलिए शंकर को प्रसन्न करो। राजा भगीरथ की आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने गंगा जी को अपने मस्तक पर धारण करने का वचन दिया।

गंगा के अवतरण की कथा बहुत अलौकिक है। मान्यता है कि शिव की जटा से गंगा का प्रवाह पृथ्वी पर आया था।

इतिहास-पुराण-कथाएं : समुद्र-मंथन और इन्द्र-दिति-कथा।

अगले दिन जब महामुनि विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण की यात्रा प्रारम्भ हुई तो उन्हें मार्ग में विशाला नामक पुरी दिखाई पड़ी। राम की जिज्ञासा पर महामुनि ने बताया कि इसी

पुरी में सत्ययुग में दिति के पुत्र दैत्य और अदिति के पुत्र देव रहते थे। उन लोगों ने निश्चय किया कि हम लोग क्षीरसागर का मन्थन करके अमृतमय रस प्राप्त करें। वासुकि नाग की रस्सी और मन्दराचल को मथानी बनाकर क्षीरसागर को मथना आरम्भ किया। प्रारम्भ में हालाहल नामक महाभंयकर विष मिला। उसकी दहकता से व्यथित होकर सबने भगवान् शंकर से प्रार्थना की तथा उन्होंने प्रकट होकर उस विष का पान कर लिया। मन्दराचल को स्थिर नहीं रख पा रहे थे, इसलिए भगवान् विष्णु ने कच्छप का रूप धारण करके पर्वत को आधार दिया तथा मन्थन क्रिया चलने लगी। तदनंतर धन्वन्तरि आयुर्वेदमय धर्मात्मा पुरुष के रूप में प्रकट हुए। उनके प्राकट्य के बाद बहुत सी अप्सराएं प्रकट हुईं। अप (जल) में मन्थन से प्रकट होने के कारण वे अप्सराएं कहलायीं। देव और दानव उन्हें पत्नी के रूप में ग्रहण न कर सकें, इसलिए वे साधारणा (सामान्या) मानी गयीं। तदनन्तर वरुण की कन्या वारुणी, जो सुरा की अभिमानिनी देवी थी प्रकट हुई और अपने को स्वीकार करने वाले पुरुष की खोज करने लगी। दैत्यों ने उस वरुण-कन्या सुरा को नहीं ग्रहण किया, परन्तु अदिति के पुत्रों ने इस सुन्दरी को ग्रहण कर लिया। सुरा-सेवन के कारण ही अदिति के पुत्रों की सुर संज्ञा हुई। वारुणी को ग्रहण करने से देवगण आनन्द-मग्न हो गये। इसके बाद घोड़ों में उत्तम उच्चैःश्रवा, मणिरत्न कौस्तुभ तथा परम उत्तम अमृत का प्राकट्य हुआ। भगवान् विष्णु ने मोहिनी माया का आश्रय लेकर तुरंत ही अमृत का अपहरण कर लिया तथा जो दैत्य छीन लाने के लिए भगवान् विष्णु के पास गये उन्हें भगवान् विष्णु ने मार डाला। देवगण प्रभावी हुए तथा देवराज इन्द्र त्रिलोकी का राज्य पाकर बड़े प्रसन्न हुए। अपने पुत्रों के मारे जाने पर दिति को बड़ा दुःख हुआ। वे अपने पति कश्यप के पास जाकर बोलीं–"भगवन् ! आपके पुत्र देवों ने मेरे पुत्रों को मार डाला, अतः मैं एक ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इन्द्र का वध करने में समर्थ हो। कश्यप ने कहा– तुम शौचाचार का पालन करो, यदि एक सहस्र वर्ष तक पवित्रतापूर्वक रह सकोगी तो तुम इन्द्र का वध करने में समर्थ पुत्र प्राप्त करोगी। दिति हर्ष और उत्साह में भरकर कठोर तपस्या करने लगी। दिति की तपस्या के समय इन्द्र विनयसहित उनकी सेवा-टहल करने लगे। जब तपस्या को केवल दस वर्ष शेष रह गये तब इन्द्र की सेवा से प्रसन्न होकर दिति ने कहा–मैंने तुम्हारे विनाश के लिए पुत्र की याचना की थी, परन्तु जब वह तुम्हें जीतने के लिए उत्सुक होगा उस समय मैं उसे शान्त कर दूंगी तथा भ्रातृ-स्नेह से युक्त बना दूंगी। ऐसा कहकर दिति नींद से अचेत हो गयी। दोपहर का समय था। दिति आसन पर बैठी-बैठी झपकी लेने लगी थी। निद्रावस्था में उन्होंने पैरों को सिर से लगा लिया। दिति को अपवित्र हुई जान इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए तथा माता दिति के उदर में प्रविष्ट हो गये और गर्भ के सात टुकड़े कर डाले। गर्भस्थ बालक ऊँचे स्वर में रोने लगा। इससे दिति जागकर उठ बैठी। उस समय दिति ने कहा–इन्द्र! बच्चों को न मारो, न मारो। माता का वचन सुनकर इन्द्र उदर से निकल आये तथा हाथ जोड़ कर माता दिति से कहा–देवि! तुम अपवित्र सोयी थी, इसलिए यही छिद्र पाकर मैंने इस इन्द्रहन्ता बालक के सात टुकड़े कर डाले

हैं। तुम मेरे इस अपराध को क्षमा करो। दिति को बड़ा दुःख हुआ, वे इन्द्र से बोलीं–मेरे ही अपराध से इस गर्भ के सात टुकड़े हुए हैं। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। इस गर्भ को नष्ट करने के निमित्त तुमने जो क्रूरतापूर्ण कर्म किया है वह तुम्हारे और मेरे लिए सुखद हो जाय, वैसा उपाय मैं करना चाहती हूँ। मेरे गर्भ के वे सातों खण्ड सात व्यक्ति होकर सातों मरुद्गणों के स्थानों का पालन करने वाले हो जायें। ये आकाश में मारुत नाम से प्रसिद्ध होकर जो सात वातस्कन्ध हैं उनमें विचरें। जो प्रथम मारुत है वह ब्रह्मलोक में, दूसरा इन्द्रलोक में, तीसरा मारुत दिव्य वायु के नाम से विख्यात हो अन्तरिक्ष में बहा करे। शेष चार पुत्रों के गण तुम्हारी आज्ञा से समयानुसार सम्पूर्ण दिशाओं में संचार करेंगे। मारुत नाम से उनकी प्रसिद्धि होगी। इन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा–माँ! तुमने जैसा कहा है, वैसा ही होगा। ऐसा निश्चय करके दिति और इन्द्र स्वर्गलोक को चले गये।

पूर्वकाल में महाराज इक्ष्वाकु के एक विशाल नाम से प्रसिद्ध धर्मात्मा पुत्र हुए। उन्होंने इस स्थान पर विशाला नाम की पुरी बसायी थी। उन्हीं के वंशधर सुमति नाम से प्रसिद्ध हैं, वे इस समय इस पुरी में निवास करते हैं। महामुनि विश्वामित्र को अपनी पुरी के समीप आया हुआ सुनकर राजा सुमति ने उनकी अगवानी की तथा श्री राम व लक्ष्मण के विषय में जानकर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। रात्रि में वहाँ निवास करके प्रातःकाल ये मिथिला की ओर चल दिये।

अहल्योद्धार; वसिष्ठ-विश्वामित्र प्रकरण।

आगे यात्रा करने पर एक निर्जन आश्रम दिखाई दिया। राम के पूछने पर महामुनि विश्वामित्र ने महर्षि गौतम तथा उनकी पत्नी अहल्या की कथा सुनायी। इन्द्र ने अहल्या से एकान्त में सम्पर्क किया, इससे महर्षि ने दोनों को शाप दे दिया। इन्द्र को मुनि का वेश धारण किये देखकर मुनिवर गौतम ने कहा–दुर्मते! तूने मेरा रूप धारण करके यह न करने योग्य पाप कर्म किया है, इसलिए तू विफल (वृषणरहित) हो जायेगा। ऐसा कहते ही इन्द्र के दोनों वृषण (अण्डकोष) पृथ्वी पर गिर पड़े। इस प्रकार इन्द्र को शाप देने के बाद अपनी पत्नी को शाप दिया–दुराचारिणी! तू भी यहाँ सहस्रों वर्षों तक केवल वायु पीकर या उपवास करके कष्ट उठाती हुई राख में पड़ी रहेगी। समस्त प्राणियों से अदृश्य रहकर इस आश्रम में निवास करेगी। जब राम इस घोर वन में पदार्पण करेंगे, उस समय तू पवित्र होगी।

वृषणरहित हो जाने के कारण इन्द्र बहुत डर गये तथा सभी देवों से सहायता की प्रार्थना की। इन्द्र का वचन सुनकर मरुद्गणों सहित अग्नि आदि समस्त देव कव्यवाहन आदि पितृदेवताओं के पास आकर बोले– आपका मेष (भेड़ा) वृषण से युक्त है, इस भेड़े के दोनों

वृषण आप इन्द्र को अर्पित कर दें। अग्नि की बात सुनकर पितृदेवताओ ने मेष के वृषण उखाड़कर इन्द्र के शरीर में उचित स्थान पर जोड़ दिये। अहल्या उसी आश्रम में अदृश्य रह कर शिलाखण्ड के रूप में निवास करने लगी। राम के दर्शन करने से अहल्या प्रकट हो गयी तथा उन्होंने राम-लक्ष्मण का बहुत सत्कार किया तथा पुनः उनके पति महर्षि गौतम ने उन्हें स्वीकार कर लिया।

अहल्या-उद्धार के बाद महामुनि राम-लक्ष्मण के साथ जनकपुरी पहुँच गये। जनक के पूछने पर राम-लक्ष्मण का पूरा परिचय जनक को दिया। जनक के पुरोहित शतानन्द अहल्या के पुत्र थे। अपनी माता के उद्धार से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी अवसर पर उन्होंने राम-लक्ष्मण को महामुनि विश्वामित्र का सम्पूर्ण जीवन-वृत्तांत बताते हुए कहा–विश्वामित्र महान् पराक्रमी राजा थे। उन्होंने वसिष्ठ मुनि के आश्रम पर कामधेनु द्वारा सत्कार पाने के कारण उस गाय को ही माँग लिया तथा न देने पर बलपूर्वक ले जाने का प्रयास किया। कामधेनु सबला गो ने वसिष्ठ से आज्ञा लेकर शत्रु-सेना को नष्ट करने वाले सैनिकों की सृष्टि की। विश्वामित्र हार गये तथा एक पुत्र को छोड़कर उनके पक्ष के सभी मारे गये। उसी पुत्र को राज्य देकर वे तपस्या करने लगे तथा पुनः अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह किया और वसिष्ठ पर आक्रमण किया। फिर भी उन्हें सफलता नहीं मिली तथा परास्त हो गये। पराजय से उद्विग्न होकर विश्वामित्र ने कहा–

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ।। ५६/२३।।

(क्षत्रिय के बल को धिक्कार है। ब्रह्मतेज से प्राप्त होने वाला बल ही वास्तव में बल है, क्योंकि एक ब्रह्मदण्ड ने मेरे सभी अस्त्र नष्ट कर दिये।)

तदेतत् प्रसमीक्ष्याह प्रसन्नेन्द्रियमानसः ।
तपो महत् समास्थास्ये यद् वै ब्रह्मत्वकारणम् ।। ५६/२४।।

(इस घटना को प्रत्यक्ष देखकर अब मैं अपने मन और इन्द्रियों को निर्मल करके उस महान् तप का अनुष्ठान करूंगा, जो मेरे लिए ब्राह्मणत्व की प्राप्ति का कारण होगा।)

महात्मा वसिष्ठ के साथ वैर ठान कर विश्वामित्र अत्यन्त उत्कृष्ट एवं भयंकर तपस्या करने लगे। उनके तप से संतुष्ट होकर ब्रह्मा जी ने कहा कि हम तुम्हें सच्चा राजर्षि समझते हैं। विश्वामित्र को तो ब्राह्मणत्व की आकांक्षा थी, परन्तु ब्रह्मा जी ने जब उन्हें 'राजर्षि' कहा तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे पुनः तपस्या में लीन हो गये। उसी समय इक्ष्वाकु कुल में सत्यवादी व जितेन्द्रिय राजा त्रिशंकु का विचार हुआ कि मैं ऐसा यज्ञ करूँ कि इस शरीर के साथ स्वर्गलोक जा पहुँचूं तथा अपने पुरोहित वसिष्ठ जी से यज्ञ-सम्पादन कराना चाहा, परन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया। तब वे उनके पुत्रों के पास गये, परन्तु वे भी सहमत नहीं हुए और विवाद होने पर त्रिशंकु को चाण्डाल होने का शाप दे दिया। इसी अवस्था में वे विश्वामित्र

की शरण में गये। उन्होंने उत्कृष्ट यज्ञ के द्वारा त्रिशंकु को सदेह स्वर्गलोक भेज दिया। परन्तु देवताओं ने उन्हें उल्टा लौटा दिया। इससे कुपित होकर विश्वामित्र ने नये लोकों की सृष्टि की तथा त्रिशंकु को सदेह अपने द्वारा रचित स्वर्गलोक में भेजा। इसी बीच राजर्षि अम्बरीष के यज्ञपशु को इन्द्र ने चुरा लिया। उसके स्थान पर उन्होंने ऋचीक मुनि की सहमति से उनके पुत्र शुनःशेप को बलि के लिए चुना। परन्तु विश्वामित्र ने अपने भाञ्जे शुनःशेप को बलि होने से बचाया तथा राजा को यज्ञ के फल का पूरा भाग मिला। उसके बाद विश्वामित्र ने पुष्कर तीर्थ में तपस्या की।

जब विश्वामित्र ने एक सहस्र (हजार) वर्ष की तपस्या के व्रत की समाप्ति का स्नान किया, उस समय सब देवता तपस्या का फल देने की इच्छा से आये। ब्रह्मा जी ने कहा–तुम अपने द्वारा उपार्जित शुभ कर्मों के प्रभाव से ऋषि हो गये। ब्रह्मा जी पुनः स्वर्ग को चले गये और विश्वामित्र पुनः बड़ी भारी तपस्या में लग गये। बहुत समय व्यतीत होने पर सुन्दरी अप्सरा मेनका पुष्कर में आयी। उसे देखकर विश्वामित्र काम के अधीन हो गये और उससे बोले–अप्सरा! तेरा स्वागत है, तू मेरे आश्रम में निवास कर। मेनका के साथ विश्वामित्र के दस वर्ष बड़े सुख से बीते। इतना समय बीत जाने पर विश्वामित्र लज्जित हुए और यह विचार मन में आया कि यह देवगणों की हमारी तपस्या का अपहरण करने के लिए करतूत है। मेनका को उन्होंने विदा कर दिया तथा हिमालय पर चले गये और घोर तपस्या में संलग्न हो गये। उन्हें इस प्रकार तपस्या करते देखकर इन्द्र और अन्य देवों के मन में बड़ा भारी संताप हुआ।

इन्द्र ने अप्सरा रम्भा को बुलाकर कहा कि तू महर्षि विश्वामित्र को इस प्रकार लुभा जिससे वे काम और मोह के वशीभूत हो जायें। रम्भा यह सुनकर बहुत भयकंपित हुई। उसने कहा–विश्वामित्र बड़े भयंकर हैं, वे मुझ पर भयानक क्रोध का प्रयोग करेंगे। इन्द्र ने कहा–तू भय न कर, मेरी आज्ञा मान ले। देवराज की बात सुनकर रम्भा ने विश्वामित्र को लुभाना आरम्भ किया। ऋषि के मन में संदेह हो गया। उन्होंने समझ लिया कि यह देवराज का कुचक्र है, तो ऋषिवर विश्वामित्र ने क्रोध में भरकर कहा–दुर्भगे रम्भे! तू दस सहस्र (१०,०००) वर्षों तक पत्थर की प्रतिमा बनकर खड़ी रहेगी। शाप का समय पूरा होने पर एक तपोबल-सम्पन्न ब्राह्मण मेरे क्रोध से कलुषित तेरा उद्धार करेंगे। रम्भा तत्काल पत्थर की प्रतिमा बन गयी, किन्तु क्रोध से विश्वामित्र की तपस्या का क्षय हो गया। तब उन्होंने निश्चय किया कि अब से न तो क्रोध करूंगा और न किसी अवस्था में मुँह से बोलूंगा। जब तक तपस्या से उपार्जित ब्राह्मणत्व मुझे प्राप्त नहीं होगा, तब तक मैं बिना खाये-पिये खड़ा रहूंगा। ऐसा कह कर महातपस्वी विश्वामित्र ने फिर तपस्या की दीक्षा ग्रहण की।

एक सहस्र वर्ष पूर्ण होने तक वे काष्ठ की भाँति निश्चेष्ट बने रहे। बीच-बीच में उन पर बहुत से विघ्नों का आक्रमण हुआ, परन्तु क्रोध उनके भीतर नहीं घुसने पाया। महान् व्रत

समाप्त करके वे अन्न ग्रहण करने को तैयार हुए कि उसी समय इन्द्र ने ब्राह्मण के वेश में आकर उनसे तैयार अन्न की याचना की। विश्वामित्र ने अन्न ब्राह्मण को दे डाला और वे बिना खाये-पाये ही रह गये, फिर भी उन्होंने ब्राह्मण से कुछ नहीं कहा और पुनः व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। एक हजार वर्ष तक साँस तक नहीं लिया। उनके मस्तक से धुआँ उठने लगा। उससे सभी प्राणी घबरा उठे तथा वे सब व्याकुल हो ब्रह्मा जी से बोले–विश्वामित्र जी अपनी तपस्या के प्रभाव से आगे बढ़ते जा रहे हैं, हमें उनमें छोटा-सा भी दोष नहीं दिखाई देता। इसलिए उनके मन में जो भी अभिलाषा हो, उसे पूर्ण किया जाय। तदनन्तर ब्रह्मा जी ने कहा–कुशिकनन्दन! तुमने अपनी उग्र तपस्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया। ब्रह्मा जी की बात सुनकर विश्वामित्र ने प्रणाम किया और कहा–वे ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ स्वयं आकर मुझसे ऐसा कहें, तभी आप जा सकते हैं। तब देवताओं ने वसिष्ठ जी को प्रसन्न किया और उन्होंने आकर 'एवमस्तु' कहा तथा विश्वामित्र से मित्रता स्थापित कर ली।

तदनन्तर विदेहराज जनक अपने पुरोहित शतानन्द के साथ विश्वामित्र को प्रणाम करके वहाँ से चल दिये तथा विश्वामित्र जी भी राम-लक्ष्मण के साथ विश्राम-स्थान पर लौट आये।

१२
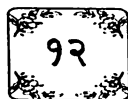
शिवधनुष और सीता-जन्म का वृत्तान्त; श्री राम द्वारा धनुर्भंग।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा जनक ने मुनि विश्वामित्र को राम-लक्ष्मण सहित अपने यहाँ आमन्त्रित कर पूजन किया तथा पूछा–मैं आपकी क्या सेवा करूँ? विश्वामित्र ने कहा–राजा दशरथ के ये दोनों पुत्र आपका श्रेष्ठ धनुष देखना चाहते हैं। मुनि के ऐसा कहने पर राजा जनक ने कहा–मुनिवर! इस धनुष का वृत्तान्त सुनिये तथा जिस उद्देश्य से इसे यहाँ रक्खा गया है वह बताता हूँ। यह भगवान् शंकर का धनुष है, जो मेरे पूर्वज महाराज देवरात के पास धरोहर के रूप में रक्खा गया था। एक दिन यज्ञ के लिए भूमिशोधन करते समय भूमि से एक कन्या प्रकट हुई। सीता (हल द्वारा खींची गयी रेखा) से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता रखा गया। इस अयोनिजा कन्या के बड़ी होने पर मैंने निश्चय किया कि जो अपने पराक्रम से इस धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, उसी के साथ मैं इस का विवाह करूंगा। मेरे निश्चय को जानकर सीता को प्राप्त करने के लिए अनेक राजा आये, परन्तु वे लोग उसे उठाने या हिलाने में भी समर्थ न हो सके। मैं उसे श्री राम और लक्ष्मण को दिखाऊंगा, यदि राम उस धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा दें तो सीता को मैं इन्हें दे दूंगा।

यह सुनकर विश्वामित्र जी ने कहा–आप राम को धनुष दिखाइये। राजा जनक की आज्ञा पाकर पाँच हजार मनुष्य किसी प्रकार ठेलकर उसे वहाँ तक ला सके। तब जनक ने कहा–मुनिप्रवर! यह श्रेष्ठ धनुष यहाँ लाया गया है। यह कथन सुनकर महामुनि ने श्रीराम से कहा–वत्स! इस धनुष को देखो। मुनि की आज्ञा से श्रीराम ने उस धनुष को बीच से

पकड़कर उठा लिया और उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी तथा ज्यों ही कान तक खींचा, त्यों ही वह बीच से ही टूट गया। बड़ी भारी ध्वनि (आवाज) हुई। यह देखकर राजा जनक ने कहा–मैंने श्रीराम का पराक्रम आज देख लिया। मेरी पुत्री सीता श्री राम को पति रूप में प्राप्त करके जनक कुल की कीर्ति का विस्तार करेगी। मैं यह पुत्री श्रीराम को समर्पित करता हूँ। महामुनि! यदि आपकी आज्ञा हो तो मेरे दूत जाकर महाराज दशरथ को यहाँ लिवा लायें। विश्वामित्र के तथास्तु कहने पर जनक ने दूतों को अयोध्या भेज दिया।
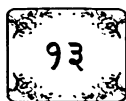
अयोध्या से बरात का आगमन और चारों भाइयों का विवाह।

दूत अयोध्या को चल दिये तथा चौथे दिन अयोध्यापुरी पहुँच गये। पहुँचकर उन्होंने राजा दशरथ को श्रीराम के पराक्रम तथा धनुष-भंग का समाचार दिया और बताया कि राजा जनक ने श्रीराम को अपनी पुत्री समर्पित करने का निश्चय किया है। आप जनकपुरी पधारें, इसका अनुरोध भी किया है। महाराज दशरथ बहुत प्रसन्न हुए तथा मन्त्रियों एवं पुरोहित तथा सभी आत्मीय जनों को समाचार सुनाया और तुरन्त यात्रा का निश्चय किया।

राजा की आज्ञा से सेना तैयार हो गयी और ऋषियों के साथ यात्रा करते हुए महाराज दशरथ चार दिन में विदेह देश में पहुँच गये। राजा जनक ने स्वागत-सत्कार किया। इधर श्री राम विश्वामित्र को आगे करके लक्ष्मण के साथ पिता जी के पास गये।

राजा जनक ने अपने भाई कुशध्वज को, जो सांकाश्यानगरी में निवास करते थे, तुरन्त बुलवा लिया। तन्दनन्तर जनक का संदेश पाकर महाराज दशरथ उनके यहाँ गये और जनक से बोले कि महर्षि वसिष्ठ हमारे कुल के देवता हैं, ये महात्मा पहले मेरी कुल-परम्परा का परिचय देंगे। तब वसिष्ठ मुनि बोले : ब्रह्मा जी की उत्पत्ति का कारण अव्यक्त है–वे स्वयम्भू हैं। उनसे मरीचि की उत्पत्ति हुई। मरीचि के पुत्र कश्यप, उनके पुत्र विवस्वान्, तथा उनसे वैवस्वत मनु का जन्म हुआ। मनु प्रथम प्रजापति थे, उनसे इक्ष्वाकु नामक पुत्र हुआ। इक्ष्वाकु ही अयोध्या के प्रथम राजा थे। तत्पश्चात् वसिष्ठ जी ने क्रमशः परिचय दिया और बताया कि इसी कुल में महाराज दशरथ का जन्म हुआ जिनके ये दोनों राम व लक्ष्मण पुत्र हैं। इनके लिए आपकी दो कन्याओं का मैं वरण करता हूँ।

महर्षि वसिष्ठ से इस प्रकार सुनकर राजा जनक ने अपने वंश का परिचय दिया। प्राचीन काल में निमि नामक एक राजा हुए। उनके मिथि नामक पुत्र हुआ और मिथि के पुत्र का नाम जनक हुआ। ये हमारे कुल में प्रथम जनक हुए हैं। क्रमशः वंश-परम्परा बताते हुए उन्होंने कहा कि मैं राजा ह्रस्वरोमा का ज्येष्ठ पुत्र हूँ तथा कुशध्वज मेरा छोटा भाई है। मैं सीता को श्रीराम के लिए और उर्मिला को लक्ष्मण के लिए समर्पित करता हूँ।

जनक की बात समाप्त होने के बाद वसिष्ठ सहित महामुनि विश्वामित्र ने जनक से कहा कि हम आपके छोटे भाई कुशध्वज की दोनों कन्याओं का वरण भरत और शत्रुघ्न के लिए कर रहे हैं। यह सुनकर राजा जनक ने हाथ जोड़कर मुनिवरों से कहा कि मैं अपने इस कुल को धन्य मानता हूँ। आप जैसा कहते हैं, ऐसा ही हो। ये चारों राजकुमार एक ही दिन पाणिग्रहण करें।

तत्पश्चात् राजा जनक ने यज्ञ-वेदी के पास बैठी अपनी कन्याओं को क्रमशः सौंप दिया। श्रीराम का सीता के साथ, लक्ष्मण का उर्मिला के साथ, भरत का माण्डवी के साथ, तथा श्रुतकीर्ति का शत्रुघ्न के साथ विवाह सम्पन्न हो गया। तदनन्तर राजा दशरथ पुत्रों तथा बन्धुओं के साथ जनवासे आये।
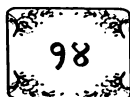
श्रीराम की परीक्षा लेने परशुराम का आगमन और उन्हें विष्णु अवतार जानकर सन्तुष्ट होकर प्रस्थान।

दूसरे दिन प्रातः महामुनि विश्वामित्र राजा जनक और महाराज दशरथ से पूछकर अपने आश्रम चले गये। महाराज दशरथ भी अपनी पुरी जाने को तैयार हो गये। राजा जनक ने भेंट के निमित्त बहुत सामग्री दी। उन सब को लेकर दशरथ ने प्रस्थान किया। उसी समय महाराज दशरथ के चारों ओर भयंकर बोली बोलने वाले पक्षी चहचहाने लगे और भूमि पर विचरने वाले समस्त मृग उन्हें दाहिने रखकर जाने लगे। उन सबको देखकर दशरथ ने वसिष्ठ जी से पूछा–मुनिवर! यह अशुभ और शुभ, दो प्रकार का शकुन कैसा? यह मेरे हृदय को कम्पित किये देता है। राजा दशरथ का यह वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठ ने कहा–राजन्! आकाश में पक्षियों के मुख से जो बात निकल रही है वह बताती है कि इस समय कोई घोर भय उपस्थित होने वाला है, परन्तु दाहिने रखकर जाने वाले ये मृग उस भय के शान्त हो जाने की सूचना दे रहे हैं; इसलिए आप यह चिन्ता छोड़िये।

इस प्रकार की बातें हो ही रही थीं कि वहाँ बड़े वेग से आँधी उठी। सूर्य देव अन्धकार से आच्छन्न हो गये। धूल से ढक जाने के कारण वह सारी सेना मूर्च्छित सी हो गयी। उस समय केवल वसिष्ठ मुनि, अंन्यान्य ऋषियों, तथा पुत्रों सहित राजा दशरथ को ही चेत रह गया था। राजा दशरथ ने देखा कि क्षत्रिय राजाओं का मान-मर्दन करने वाले परशुराम सामने से आ रहे हैं। भयंकर दिखाई देने वाले भृगुनन्दन परशुराम को ऋषियों ने अर्घ्य लेकर दिया और राम! राम! कहकर उनसे मधुर वाणी में बातचीत की। ऋषियों की दी हुई पूजा को स्वीकार करके प्रतापी परशुराम ने दशरथनन्दन श्रीराम से कहा–वीर! सुना जाता है कि तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है। तुम्हारे द्वारा शिव-धनुष तोड़े जाने का सारा समाचार

भी मेरे कानों में पड़ चुका है। मैं दूसरा उत्तम धनुष लेकर आया हूँ। तुम इसे खींचकर वाण चढ़ाओ और अपना बल दिखाओ। यह देखकर मैं तुम्हें ऐसा द्वन्द्व-युद्ध प्रदान करूंगा जो तुम्हारे पराक्रम के लिए स्पृहणीय होगा। परशुराम का वचन सुनकर राजा दशरथ के मुख पर विषाद छा गया तथा वे प्रार्थना करने लगे कि मेरे बालक पुत्र को आप अभयदान देने की कृपा करें, इसके बिना तो हम सभी मर जायेंगे। राजा दशरथ ऐसा कहते ही रहे, परन्तु परशुराम ने राम से ही बातचीत करते हुए कहा–राम! तुमने भगवान् शंकर के धनुष को तोड़ डाला। यह दूसरा वैष्णव धनुष है। यह उससे भी दिव्य धनुष है। इसे लेकर क्षात्रधर्म का पालन करो और इस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाओ।

पिता के कारण राम मौन थे, परन्तु अब उन्होंने कहा–भार्गव! मैं क्षत्रिय धर्म से युक्त हूँ। आप मेरे तेज को कम जानकर ऐसा कह रहे हैं। अब आप मेरा पराक्रम देखिये। यह कहकर श्रीराम ने परशुराम के हाथ से धनुष और वाण ले लिया। उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उस पर वाण रक्खा और परशुराम से कहा–राम! आप ब्राह्मण होने के नाते पूज्य हैं, इस कारण मैं इस वाण को आपके शरीर पर नहीं छोड़ सकता। मेरा विचार है कि इन लोकों में या तपस्या से जिन अनुपम अदृश्य पुण्यलोकों को आपने प्राप्त किया है, उनमें आपकी गति को नष्ट कर डालूँ, क्योंकि इस वैष्णव धनुष का दिव्य वाण व्यर्थ जा ही नहीं सकता। परशुराम ने श्रीराम से कहा–पूर्वकाल में मैंने कश्यप ऋषि को यह पृथ्वी दान में दे दी थी, तब उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हें मेरे राज्य में नहीं रहना चाहिये। मैंने अपने गुरु कश्यप जी के सामने रात को पृथ्वी पर न रहने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है। इसलिए आप मेरी गमन-शक्ति को नष्ट करने के अधिकारी नहीं हैं (अर्थात् ऐसा करना उचित नहीं होगा)। मैं मन के समान वेग से अभी महेन्द्र नामक पर्वत पर चला जाऊंगा। मैंने अपनी तपस्या से जिन अदृश्य अनुपम लोकों पर विजय पायी है, उन्हीं को आप इस श्रेष्ठ वाण से नष्ट कर दें। इस धनुष के द्वारा मुझे निश्चित रूप से ज्ञात हो गया कि आप देवेश्वर विष्णु हैं। आपका कल्याण हो! तदनन्तर श्रीराम ने उस वाण को छोड़ दिया तथा परशुराम तुरन्त ही श्रीराम की परिक्रमा करके अपने स्थान को चले गये।

परशुराम के चले जाने के बाद श्रीराम ने वह धनुष वरुण के हाथ में दे दिया। तत्पश्चात् वसिष्ठ आदि ऋषियों को प्रणाम किया तथा पिता को विकल देखकर कहा–पिताजी! परशुराम जी चले गये। अब आप अयोध्या की ओर प्रस्थान करें।

पुत्रों और वधुओं सहित दशरथ का अयोध्या आगमन।

परशुराम चले गये, यह सुनकर राजा दशरथ को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने राम को छाती से लगा लिया तथा उस समय अपना और अपने पुत्र का पुनर्जन्म माना। तदनन्तर वे सेना सहित शीघ्र अयोध्यापुरी पहुँच गये।

उस समय उस पुरी में सब ओर ध्वज-पताकाएं फहरा रही थीं। सड़कों पर जल का छिड़काव हुआ था, जिससे पुरी की सुरम्य शोभा बढ़ गयी थी। सजावट से नगर की रमणीयता बढ़ी हुई थी और भाँति-भाँति के वाद्यों की ध्वनि से सारी अयोध्या गूँज उठी थी। पुरवासी मनुष्य हाथों में माङ्गलिक वस्तुऐं लेकर राजा के प्रवेश-मार्ग पर प्रसन्नमुख होकर खड़े थे। नागरिकों तथा पुरवासी ब्राह्मणों ने दूर तक आगे जाकर महाराज की अगवानी की। इन सब से भरी-पूरी तथा भारी जन-समुदाय से अलंकृत हुई अयोध्यापुरी में राजा ने प्रवेश किया तथा हिमालय के समान सुन्दर एवं गगनचुम्बी अपने प्रिय राजभवन के प्रांगण में राजा दशरथ ने अपने पुत्रों सहित पदार्पण किया।

राजा दशरथ अपने राजभवन में प्रविष्ट हुए। रानियाँ और अन्य राजपुरुषों की पत्नियाँ बहुओं को उतारने के कार्य में जुट गयीं। मंगलगीत गाती हुई वे सब वधुओं को घर में ले गयीं और देवताओं का पूजन कराया। अपने-अपने पति के साथ रहकर वे सब की सब वधुएं बड़े आनन्द से समय व्यतीत करने लगीं। श्रीराम आदि चारों भाई अस्त्र-विद्या में निपुण होकर पिता की सेवा करने लगे।

कुछ काल के बाद दशरथ ने भरत से कहा कि तुम्हारे मामा युधाजित तुम्हें लेने के लिए आये हैं। यह सुनकर भरत ने मामा के यहाँ जाने का विचार किया और प्रस्थान कर दिया।

श्री राम के उत्तम शील और सद्व्यवहार से उस राज्य के सभी निवासी बहुत संतुष्ट रहते थे।

(बालकाण्ड सम्पूर्ण)

अयोध्या-काण्ड

प्रथम सर्ग

राजा दशरथ का श्री राम को युवराज बनाने का विचार; निश्चय के बाद श्री राम को हितकर राजनीति की बातें बताना।

भरत अपने मामा के यहाँ जाते समय शत्रुघ्न को भी साथ ले गये थे। राजा दशरथ उन दोनों पुत्रों का सदा स्मरण किया करते थे। सभी पुत्र उन्हें बहुत प्रिय थे, परन्तु उनमें श्री राम अधिक गुणवान् होने के कारण पिता के लिए विशेष प्रीतिवर्धक थे। श्रीराम बड़े रूपवान् और पराक्रमी थे। वे किसी के दोष नहीं देखते थे। सदा शान्तचित्त रहते और मीठे वचन बोलते थे। वे विद्वान् थे और वृद्ध पुरुषों का सदा सम्मान किया करते थे। श्री राम का प्रजा के प्रति बड़ा अनुराग था। उनके मन में दीन-दुःखियों के प्रति बड़ी दया थी। वाण-विद्या में तो वे अपने पिता से भी बढ़कर थे। अपने पुत्र राम को अनेक अनुपम गुणों से युक्त देखकर राजा दशरथ ने मन-ही-मन में विचार करना आरम्भ किया कि राम राजा हो जायें। इस प्रकार विचार कर तँथा श्रीराम को दुर्लभ गुणों से विभूषित देख राजा दशरथ ने अपने मंत्रियों से मन्त्रणा (सलाह) करके उन्हें युवराज बनाने का निश्चय किया। उन भूपाल ने प्रधान-प्रधान पुरुषों तथा अन्य जनपदों के राजाओं को भी अयोध्या में बुला लिया। शीघ्रता के कारण दशरथ ने केकय-नरेश तथा जनक को नहीं बुलाया।

राजसभा में बैठे हुए सभी लोगों को सम्बोधित करते हुए राजा ने कहा कि अनेक सहस्र वर्षों की आयु पाकर अपने इस जराजीर्ण शरीर को अब में विश्राम देना चाहता हूँ। मैं अपने पुत्र राम को राजकार्य में नियुक्त करके अब इस (राज-) कार्य से विश्राम लेना चाहता हूँ। मेरा पुत्र राम मेरी अपेक्षा सभी गुणों में श्रेष्ठ है। मैं कल प्रातःकाल पुष्य नक्षत्र में राम को युवराज के पद पर नियुक्त करने का इच्छुक हूँ। यदि मेरा यह प्रस्ताव आप लोगों को अनुकूल जान पड़े तो आप मुझे सहर्ष अनुमति दें अथवा यह बतायें कि मैं किस प्रकार से कार्य करूँ। उनकी बात सुन कर सभी ने कहा कि आप अपने पुत्र श्री राम का अवश्य ही युवराज के पद पर अभिषेक कीजिये। फिर सभी ने श्रीराम के गुणों की विस्तृत रूप से चर्चा की और कहा कि इसी में हम लोगों का हित है।

सभासदों के समर्थन को देखकर राजा दशरथ ने कहा कि आप लोग राम को युवराज के पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वामदेव और वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों से कहा कि श्रीराम का युवराज पद पर अभिषेक करने के लिए आप लोग सब सामग्री एकत्र कराइये। महाराज का वचन सुनकर वसिष्ठ ने सेवकों को समस्त सामग्री बतायी तथा कहा कि उन सब को एकत्र करके प्रातःकाल महाराज की अग्निशाला में पहुँचा

दो। तदनन्तर अन्य आवश्यक सामग्री तथा नगर की सजावट इत्यादि की भी आज्ञा दे दी गयी। इसके बाद राजा दशरथ ने सुमन्त्र को बुलाकर कहा कि राम को शीघ्र बुला लाओ। सुमन्त्र श्री राम को लेकर तुरन्त राजभवन में आ गये। श्रीराम ने पिता को प्रणाम किया, तभी दशरथ ने उन्हें छाती से लगा लिया तथा एक परम सुन्दर सिंहासन पर बैठने की आज्ञा दी। तदनन्तर श्रीराम को सम्बोधित करके कहा–पुत्र! तुम गुणों में मुझसे बढ़ कर हो। तुमने अपने गुणों से इन समस्त प्रजाओं को प्रसन्न कर लिया है, इसलिए कल पुष्य नक्षत्र के योग में युवराज का पद ग्रहण करो।

वत्स! यद्यपि तुम स्वभाव से ही गुणवान् हो और तुम्हारे विषय में यही सबका निर्णय है, तथापि सद्‌गुणसम्पन्न होने पर भी मैं स्नेहवश तुम्हें कुछ हित की बातें बताता हूँ। तुम और भी अधिक विनय का आश्रय लेकर सदा जितेन्द्रिय बने रहो। काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले दुर्व्यसनों का सर्वथा त्याग कर दो। परोक्षवृत्ति से (अर्थात् गुप्तचरों द्वारा यथार्थ बातों का पता लगाकर) तथा प्रत्यक्षवृत्ति से (अर्थात् राजसभा में सामने आकर कहने वालों के मुख से उनके वृत्तान्तों को प्रत्यक्ष देख-सुनकर) ठीक-ठीक न्याय-विचार में तत्पर रहो। मन्त्री, सेनापति आदि समस्त अधिकारियों तथा प्रजाननों को सदा प्रसन्न रखना। इसलिए, पुत्र! तुम अपने चित्त को वश में रखकर इस प्रकार के उत्तम आचरण का पालन करते रहो।

राजा की ये बातें सुनकर श्री राम के सुहृदों ने तुरंत माता कौसल्या के पास जाकर यह शुभ समाचार बताया। कौसल्या ने सभी सृहृदों को पुरस्कार बाँटा। श्रीराम राजा को प्रणाम करके अपने भवन को चले गये। नगरवासियों ने यह शुभ समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हो गये तथा देवताओं की पूजा करने लगे।

राम के राज्याभिषेक की सूचना सभा में देने के बाद राजा दशरथ अंतःपुर में गये। उन्होंने फिर से राम को बुलाने के लिए सुमंत्र को भेजा। उनका आगमन सुनते ही श्रीराम के मन में संदेह हुआ। उन्होंने पूछा कि आपको पुनः आने की क्या आवश्यकता पड़ गयी? यह जानने पर कि महाराज मिलना चाहते हैं, वे तुरंत उनके पास चले गये। उस अवसर पर राजा दशरथ ने कहा कि मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। आजकल बड़े बुरे सपने दिखाई देते हैं। दिन में वज्रपात के साथ-साथ बड़ा भयंकर शब्द करने वाली उल्काऐं गिर रही हैं। मेरे जन्म-नक्षत्र को भयंकर ग्रहों ने आक्रान्त कर लिया है। जब तक मेरे चित्त में मोह नहीं छा जाता, तुम युवराज पद पर अपना अभिषेक करा लो। इसी प्रसंग में राजा दशरथ ने भरत के गुणों का वर्णन किया, परन्तु शंका प्रकट की कि मनुष्यों का चित्त प्रायः स्थिर नहीं रहता है। फिर राम को व्रत-पालन की आज्ञा देकर विदा किया।

श्री राम का राज्याभिषेक देखने के लिए अयोध्या में बड़ा उत्साह प्रकट होने लगा।
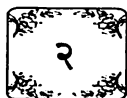
राम के अभिषेक का समाचार पाकर मन्थरा का कैकेयी को उभाड़ना; कुब्जा के कुचक्र से कैकेयी का कोप-भवन में प्रवेश।

रानी कैकेयी की एक दासी मन्थरा ने अपने भवन की छत से अयोध्या की साज-सज्जा को देखा तथा रानी कौसल्या को लोगों को धन बाँटते देखा तो उसने श्रीराम की धाय से कारण पूछा। और यह पता चलने पर कि कल राम का राज्याभिषेक होगा, वह सुनते ही छत से नीचे उतरी तथा रानी कैकेयी के पास जाकर कहा कि तुम पर बड़ी भारी विपत्ति आ रही है और बताया कि राम का कल युवराज-पद पर राज्याभिषेक होगा। मन्थरा ने कैकेयी को बहुत भड़काया, परन्तु कैकेयी ने इसे प्रिय समाचार मानकर कहा कि मैं राम और भरत में भेद नहीं समझती तथा इस समाचार से बढ़कर दूसरा कोई प्रिय एवं अमृत के समान मधुर वचन नहीं कहा जा सकता। इसलिए वह मंथरा को श्रेष्ठ वर व उपहार देने की बात करने लगी।

किंतु मंथरा ने अनेक तर्क देकर कैकेयी के मन में शंका उत्पन्न कर दी। तब कैकेयी का मुख क्रोध से तमतमा उठा और उसने कहा कि मैं शीघ्र ही राम को वन भेजूंगी तथा भरत का अभिषेक कराऊंगी। दोनों ने मंत्रणा की कि इसका क्या मार्ग होना चाहिये। एक बार देवासुर-संग्राम के अवसर पर कैकेयी ने महाराज दशरथ के प्राण बचाये थे और उसी अवसर पर दशरथ ने कैकेयी को दो वर देने का वचन दिया था। इस समय उसी वचन का लाभ उठाने का उन्होंने निश्चय किया तथा कैकेयी ने कोप-भवन में प्रवेश कर लिया।
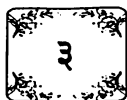
राजा दशरथ का कैकेयी के भवन में जाना; राजा को प्रतिज्ञाबद्ध करके कैकेयी का भरत के लिए अभिषेक और राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास माँगना।

राज्याभिषेक की तैयारी का आदेश देकर राजा दशरथ ने अपनी सबसे प्रिय रानी कैकेयी के भवन में संवाद बताने के लिए प्रवेश किया। राजा के आगमन के समय कैकेयी सदा उपस्थित रहती थी, परन्तु आज कैकेयी को न देखकर उन्हें विषाद हुआ तथा उसके विषय में वे पूछताछ करने लगे। प्रतिहारी ने बताया कि वे कोप-भवन गयी हैं। राजा ने वहाँ कैकेयी को भूमि पर पड़ी देखा। उन्होंने उससे इस अवस्था का कारण पूछा और उसे विश्वास दिलाया कि मैं तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकता हूँ। राजा के ऐसा कहने पर कैकेयी को कुछ सान्त्वना हुई।

कैकेयी ने राजा दशरथ को स्मरण दिलाया कि पूर्वकाल में उन्होंने उसे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी, अब उसकी पूर्ति का समय आया है। राजा दोनों वर देने के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध

हो गये। कैकेयी ने एक वर से भरत के राज्याभिषेक की माँग की तथा दूसरे वर द्वारा राम को तपस्वी के वेश में चौदह वर्ष तक दण्डकारण्य वन में रहने का आदेश देने की माँग की। कैकेयी के दोनों वरों को सुनकर राजा दशरथ व्याकुल हो गये।

राजा ने रानी को बहुत समझाया, परन्तु वह नहीं मानी। अनेक प्रकार से अनुनय-विनय की तथा कठोरता के साथ कैकेयी को धिक्कारा भी, परन्तु वह टस से मस नहीं हुई।

राजा दशरथ की वह रात्रि कैकेयी को समझाने में ही व्यतीत हो गयी, परन्तु उसने अपना निश्चय नहीं छोड़ा। प्रातः राजा को जगाने के लिए जब मंगलगान होने लगा तब राजा ने उसे तत्काल बंद करा दिया।

राजा दशरथ कैकेयी के प्रति रोषजनित अनेक बातें कहने लगे तथा कहा कि मैं तेरा तथा भरत का त्याग करता हूँ। कैकेयी ने कहा कि आप विष और शूल के समान कष्ट देने वाले वचन क्यों बोल रहे हैं? इन बातों से कुछ होने वाला नहीं है। आप तुरन्त राम को यहाँ बुलाइये तथा मेरे पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित कीजिये। आप राम को वन में भेजकर मुझे निष्कण्टक बनाइये, तभी आप कृत-कृत्य हो सकेंगे। व्यथित हुए राजा दशरथ ने कहा कि मैं धर्म के बन्धन में बँधा हुआ हूँ। मेरी चेतना लुप्त होती जा रही है, इसलिए इस समय मैं अपने धर्मपरायण पुत्र राम को देखना चाहता हूँ। उसी समय राज्याभिषेक के कार्य-सम्पादन के लिए महर्षि वसिष्ठ आये तथा सुमन्त्र से कहा कि तुम महाराज को मेरे आगमन की सूचना दो। सुमन्त्र राजा के पास गये तथा सर्वदा की भाँति महाराज की स्तुति करने लगे। महाराज दशरथ ने एक बार दृष्टि उठाकर सुमन्त्र की ओर देखा तथा कहा कि तुम ऐसी बातें सुनाकर मेरे मर्म-स्थानों पर आघात क्यों कर रहे हो? उनकी बातें सुनकर सुमन्त्र उस स्थान से कुछ पीछे हट गये तथा कैकेयी ने कहा कि श्रीराम के राज्याभिषेकजनित हर्ष के कारण राजा रात भर जागते रहे, इस समय इन्हें नींद आ गयी है। तुम तुरन्त जाओ और राम को यहाँ बुला लाओ। सुमन्त्र ने कहा कि बिना राजा की आज्ञा सुने कैसे जा सकता हूँ? इस पर राजा दशरथ ने राम को शीघ्र बुलाने का आदेश दिया।

सुमन्त्र द्वारा राजा दशरथ की आज्ञा पाकर श्रीराम का पिता के भवन में प्रवेश; पिता के चिन्तित होने का कारण पूछना; कैकेयी द्वारा वरों का वृत्तान्त बताया जाना।

सुमन्त्र ने श्रीराम को दशरथ का सन्देश सुनाया। श्रीराम तैयार होकर सीता जी से विदा लेकर दशरथ के प्रासाद की ओर चले। मार्ग भर नागरिक उनका जय-जयकार करते रहे।

सर्वेषु स हि धर्मात्मा वर्णानां कुरुते दयाम् ।
चतुर्णां हि वयःस्थानां तेन ते तमनुव्रताः।।

धर्मात्मा श्री राम चारों वर्णों के सभी मनुष्यों पर उनकी अवस्था के अनुरूप दया करते थे, इसलिए वे सभी उनके भक्त थे।

श्रीराम ने प्रासाद में प्रवेश किया तथा पिता को कैकेयी के साथ एक सुन्दर आसन पर बैठे देखा। वे विषाद में डूबे थे तथा उनका मुँह सूख गया था, बड़े दयनीय दिखाई देते थे। राजा दशरथ के मुँह से एक बार 'राम' शब्द निकला और चुप हो गये। जब वे नहीं बोले तो श्री राम ने कैकेयी से पूछा–माता! क्या बात है? और दिनों तो पिताजी कुपित होने पर भी मुझे देखते ही प्रसन्न हो जाते थे, आज मेरी ओर देखकर इन्हें क्लेश क्यों हो रहा है? मुझसे अनूजान में कोई अपराध तो नहीं हो गया, जिससे पिता जी मुझ पर रुष्ट हो गये हैं! महाराज को असंतुष्ट करके अथवा इनकी आज्ञा न मानकर इन्हें कुपित कर देने पर मैं दो घड़ी भी जीवित रहना नहीं चाहूंगा.......।

कैकेयी ने कहा कि महाराज कुपित नहीं हैं। तुम इनके प्रिय हो, तुमसे कोई अप्रिय बात कहने के लिए इनकी वाणी नहीं फूटती। राजा जिस बात को कहना चाहते हैं वह शुभ हो या अशुभ, यदि तुम इनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन कर सको तो मैं तुमको सब कुछ स्पष्ट बता दूंगी, ये स्वयं तुमसे कुछ नहीं कहेंगे। कैकेयी की कही हुई यह बात सुनकर श्रीराम के मन में बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने राजा के समीप ही कैकेयी से इस प्रकार कहा–अहो, धिक्कार है! देवि! तुम्हें मेरे प्रति ऐसी बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिये। मैं महाराज के कहने से आग में भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष का भी भक्षण कर सकता हूँ और समुद्र में भी गिर सकता हूँ। महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं, मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता! इसलिए देवि! राजा को जो अभीष्ट है, वह मुझे बताओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसे पूर्ण करूंगा। राम दो प्रकार की बात नहीं करता (*रामो द्विर्नाभिभाषते*)। उनकी बात सुनकर अनार्या कैकेयी ने अत्यन्त दारुण वचन कहना आरम्भ किया–रघुनन्दन! देवासुर-संग्राम में तुम्हारे पिता की मैंने रक्षा की थी। उससे प्रसन्न होकर इन्होंने मुझे दो वर दिये थे। उन्हीं की पूर्ति के लिए मैंने महाराज से याचना की है।... ये प्रतिज्ञा करके मुझे वर दे चुके हैं। यदि तुम अपेन पिता को सत्यप्रतिज्ञ बनाना चाहते हो तो उसके अनुसार तुम्हें चौदह वर्षों के लिए वन में प्रवेश करना चाहिये तथा तुम्हारे लिए जो अभिषेक का सामान जुटाया गया है उसके द्वारा भरत का अभिषेक किया जाय। कैकेयी के कठोर वचन सुनकर श्रीराम को शोक नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि पिता जी की आज्ञा होने पर कौन-सा ऐसा प्रिय कार्य है जिसे मैं निःशंक होकर न कर सकूँ! स्वयं महाराज ने भरत के अभिषेक की बात नहीं कही, फिर भी मैं केवल तुम्हारे कहने से भी अपने भाई भरत के लिए इस राज्य को, सीता को, प्राणों को तथा सारी सम्पत्ति को भी प्रसन्नतापूर्वक दे सकता हूँ।

नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे ।
विद्धिमामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम् ।। (१६/२०)

देवी! मैं धन का उपासक होकर संसार में नहीं रहना चाहता। तुम विश्वास रखो। मैंने भी ऋषियों की ही भाँति निर्मल धर्म का आश्रय ले रखा है।

न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।।२२।।

पिता की सेवा अथवा उनकी आज्ञा का पालन करने से बड़ा धर्माचरण और कोई नहीं है।

अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम् ।
वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश।।२३।।

यद्यपि पूज्य पिता जी ने स्वयं मुझसे नहीं कहा है, तथापि मैं तुम्हारे ही कहने से चौदह वर्षों तक इस भूतल पर निर्जन वन में निवास करूंगा।

न न्यूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान् ।
यद् राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती।।२४।।

कैकेयी! तुम मेरे लिए माँ से किसी प्रकार कम नहीं हो। (तुम्हारा मुझ पर पूरा अधिकार है। मैं तुम्हारी प्रत्येक आज्ञा का पालन कर सकता हूँ।) फिर भी तुमने स्वयं मुझसे न कहकर महाराज से कहा, इनको कष्ट दिया। इससे जान पड़ता है कि तुम मुझ में कोई गुण नहीं देखती हो।

श्रीराम पिता व माता कैकेयी को प्रणाम करके माता कौसल्या से आज्ञा लेने चले गये। राजा दशरथ फूट-फूट कर रोने लगे। लौटते समय श्रीराम ने छत्र लगाने का निषेध (मनाही) कर दिया तथा कौसल्या के भवन में गये।

५
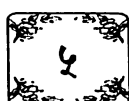
श्रीराम का माता कौसल्या को वनवास की बात बताना; लक्ष्मण का रोष;
श्रीराम का पिता की आज्ञा के पालन को ही धर्म बताकर
माता और लक्ष्मण को समझाना।

श्री रघुनाथ जी ने माता के चरणों में प्रणाम किया और माता कौसल्या ने उन्हें दोनों भुजाओं से कसकर छाती से लगा लिया तथा बड़े प्यार से उनका मस्तक सूंघा। उस समय माता कौसल्या ने प्रिय एवं हितकर बात कही—वत्स! तुम धर्मशील, वृद्ध एवं महात्मा राजर्षियों के समान आयु, कीर्ति और कुलोचित धर्म प्राप्त करो। अब तुम जाकर अपने पिता राजा का दर्शन करो। वे धर्मात्मा नरेश आज ही तुम्हारा युवराज के पद पर अभिषेक करेंगे। यह कहकर माता ने उन्हें बैठने के लिए आसन दिया और भोजन करने को कहा। श्रीराम को वन के लिए प्रस्थान करना था, अतः आज्ञा लेने के उपक्रम में श्रीराम ने कहा—

देवि नूनं न जानीषे महद् भयमुपस्थितम् ।
इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च।।

देवी! निश्चय ही तुम नहीं जानती कि तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा भय उपस्थित हो गया है। इस समय जो बात मैं कहने जा रहा हूँ उससे तुम को, सीता को और लक्ष्मण को भी दुःख होगा। अब मैं चौदह वर्ष के लिए वन में जाऊंगा और भरत युवराज का पद प्राप्त करेगा।

इसे सुनकर माता कौसल्या पृथ्वी पर गिर पड़ीं तथा श्रीराम ने सहारा देकर उठाया।

माता कौसल्या विलाप करने लगीं और कहा कि तुम्हारे निकट रहने पर भी मैं सौतों से तिरस्कृत रही हूँ। पति से भी सदा तिरस्कार अथवा फटकार ही मिली है। जो कोई मेरी सेवा में रहता है वह भी कैकेयी के वैर को देखकर चुप हो जाता है। कटुवचन बोलने वाली उस कैकेयी के मुख को कैसे मैं देख सकूंगी?

विलाप करती हुई कौसल्या से लक्ष्मण ने कहा–बड़ी माँ! मुझे अच्छा नहीं लगता कि राज्यलक्ष्मी का परित्याग करके राम वन जायें। राजा तो विवेक-शून्यता को प्राप्त हो गये हैं। ऐसे राजा के वचन को राजनीति का ध्यान रखने वाला कौन पुत्र अपने हृदय में स्थान दे सकता है? श्री राम! जब तक कोई भी मनुष्य आपके वनवास की बात नहीं जानता है, आप मेरी सहायता से इस राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लीजिये।

माता कौसल्या ने भी लक्ष्मण की बात का समर्थन करते हुए कहा कि यदि तुम वन को गये तो मैं प्राण त्याग दूंगी।

माता को विलाप करती देखी धर्मात्मा श्रीराम ने कहा–

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ।।

माता! मैं तुम्हारे चरणों में सिर झुकाकर तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ। मुझमें पिता जी की आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति नहीं है। अतः मैं वन को ही जाना चाहता हूँ। तुम मुझे आज्ञा दो और स्वस्तिवाचन कराओ।

श्रीराम की बात सुनकर कौसल्या ने कहा कि जैसे तुम्हारे पिता आदरणीय गुरुजन हैं, वैसे ही मैं भी हूँ। मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती, और विलाप करने लगीं। इसे स्वधर्म-पालन में बाधा मान कर राम आवेश में भर गये तथा वन जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया और लक्ष्मण को भी कहा कि माताजी के साथ तुम भी मुझे पीड़ा दे रहे हो।

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके, समीक्षिता धर्मफलोदयेषु।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे, भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा।।

इस जीव-जगत् में पूर्वकृत धर्म के फल की प्राप्ति के अवसरों पर जो धर्म, अर्थ और काम तीनों देखे गये हैं वे सब के सब जहाँ धर्म है वहाँ अवश्य प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है, ठीक उसी प्रकार जैसे भार्या धर्म, अर्थ और काम तीनों का साधन होती है–पति के अनुकूल रहकर अतिथि-सत्कार आदि धर्म के पालन में सहायक होती है, प्रेयसी रूप में काम का साधन बनती है और पुत्रवती होकर उत्तमलोकप्राप्ति रूप अर्थ की साधिका होती है। इस प्रकार अनेक प्रकार से समझाते हुए माता से आज्ञा माँगी। फिर बोले– लक्ष्मण! मेरे इस

प्रवास में तथा पिता द्वारा दिये राज्य के हाथ से निकल जाने में दैव को ही कारण समझना चाहिये। जिसके विषय में कभी कुछ सोचा न गया हो, वही दैव का विधान है। प्राणियों तथा अधिष्ठाता देवताओं में भी ऐसा कोई नहीं है जो इस दैव के विधान को मेट सके।

सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ ।
यस्य किंचित् तथाभूत ननु दैवस्य कर्म तत् ।।

सुख-दुःख, भय-क्रोध, लाभ-हानि, उत्पत्ति-विनाश तथा इस प्रकार के और भी जितने परिणाम प्राप्त होते हैं, जिनका कोई कारण समझ में नहीं आता, वे सब दैव के ही कर्म हैं।

श्री रामचन्द्र जी जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय लक्ष्मण सिर झुकाये कुछ सोचते रहे। फिर राम की ओर देख कर बोले—आप असमर्थ दैव नामक तुच्छ वस्तु को प्रबल बता रहे हैं! धर्मात्मन् ! आपको उन दोनों पापियों (दशरथ-कैकेयी) पर संदेह क्यों नहीं होता? वे दोनों अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए शठतावश धर्म के बहाने आप जैसे सच्चरित्र पुरुष का परित्याग करना चाहते हैं। गुणवान् ज्येष्ठ पुत्र के रहते हुए छोटे का अभिषेक करना लोकविरुद्ध अधर्म है। यह मुझसे सहन नहीं होने का। इसलिए आप मंगलमयी अभिषेक-सामग्री से अपना अभिषेक होने दीजिये। इस अभिषेक के कार्य में आप तत्पर हो जाइये। मैं अकेला ही बलपूर्वक समस्त विरोधी भूपालों को रोक रखने में समर्थ हूँ।

श्री राम ने लक्ष्मण की ये बातें सुनकर उन्हें बार-बार सान्त्वना देते हुए कहा—सौम्य! मुझे तो तुम माता-पिता की आज्ञा के पालन में ही दृढ़तापूर्वक स्थित समझो। यह सत्पुरुषों का मार्ग है।

कौसल्या ने जब देखा कि श्री राम ने पिता की आज्ञा पालने का ही दृढ़ निश्चय कर लिया है, तब वे आँसुओं से रुँधी हुई गह्वरवाणी में श्रीराम से इस प्रकार बोलीं—जिसने कभी दुःख नहीं देखा, वह वन में कैसे जीवन-निर्वाह कर सकेगा? वत्स! तुमसे बिछुड़ जाने पर मुझे शोक की बढ़ी हुई आग जलाकर भस्म कर डालेगी। मैं भी, तुम जहाँ जाओगे, तुम्हारे पीछे-पीछे चली चलूंगी। इस वचन को सुनकर श्रीराम ने कहा—माँ! कैकेयी ने राजा के साथ छल किया है। इधर मैं वन को जा रहा हूँ। इस दशा में यदि तुम भी उनका परित्याग कर दोगी तो निश्चय ही वे जीवित नहीं रह सकेंगे। मेरे पिता जब तक जीवित हैं, तब तक तुम उन्हीं की सेवा करो। पति की सेवा ही स्त्री के लिए सनातन धर्म है। श्रीराम के ऐसा कहने पर कौसल्या ने कहा—अच्छा, पुत्र! ऐसा ही करूंगी।

तदनन्तर उस क्लेशजनक शोक को मन से निकालकर श्रीराम की माता ने पवित्र जल से आचमन किया। फिर वे यात्राकालिक मंगल-कृत्यों का अनुष्ठान करने लगीं और श्रीराम को अनेक प्रकार के उपदेश दिये तथा विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन-कार्य पूर्ण किया। फिर श्रीराम की परिक्रमा की और बारंबार उनकी ओर देखकर उन्हें छाती से लगाया। तब रघुनाथ जी ने माता के चरणों को स्पर्श कर प्रणाम किया तथा सीता जी के भवन की ओर चल दिये।
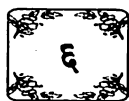
श्रीराम का वन जाने का निश्चय बताते हुए सीता को घर में रहने के लिए समझाना; सीता का वन चलने के लिए अधिक आग्रह; श्रीराम और लक्ष्मण का संवाद, सीता और लक्ष्मण को साथ चलने की अनुमति देना।

सीता जी ने राम के वन-गमन का समाचार अभी तक नहीं सुना था। श्री राम को शोक-संतप्त स्थिति में देखकर वे काँपने लगीं। श्रीराम सीता को देखकर अपने मानसिक शोक का वेग सहन न कर सके, अतः उनका वह शोक प्रकट हो गया। सीता ने पूछा–प्रभो! इस समय यह आपकी कैसी दशा है? ऐसे समय में, जब कि आपको प्रसन्न होना चाहिये था, आपका मन इतना उदास क्यों है? इस प्रकार विलाप करती हुई सीता से श्रीराम ने कहा–सीते! आज पूज्य पिताजी मुझे वन में भेज रहे हैं। फिर सब बात बतायी, साथ ही कहा कि तुम्हें यहीं निवास करना होगा।

श्रीराम की बात सुनकर सीताजी ने कहा–आर्यपुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू, ये सब पुण्यादि कर्मों का फल भोगते हुए अपने-अपने भाग्य के अनुसार जीवन-निर्वाह करते हैं। पुरुषप्रवर! केवल पत्नी ही अपने पति के भाग्य का अनुसरण करती है, अतः आपके साथ ही मुझे भी वन में रहने की आज्ञा मिली है। इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी राम ने वनवास के कष्ट का वर्णन करते हुए सीता को वहाँ चलने से मना किया। सीताजी ने अनेक तर्कों द्वारा साथ चलने का औचित्य बताया तथा कहा कि यदि आप नहीं ले जायेंगे तो मैं विष खा लूंगी, आग में कूद पड़ूंगी अथवा जल में डूब जाऊंगी। श्रीराम के आज्ञा न देने पर वे रामचन्द्र जी पर आक्षेप-सा करती हुई कहने लगीं कि क्या मेरे पिता ने आपको जामाता के रूप में पाकर कभी यह भी समझा था कि आप केवल शरीर से ही पुरुष हैं, कार्यकलाप से स्त्री ही हैं! आप जिसके अनुकूल चलने की शिक्षा दे रहे हैं और जिसके लिए आपका राज्याभिषेक रोक दिया गया है, उस भरत के सदा ही वशवर्ती और आज्ञापालक बनकर आप ही रहिये, में नहीं रहूंगी। आपके विरह का शोक में दो घड़ी भी नहीं सह सकूंगी। इस प्रकार शोक से संतप्त हुई सीता अपने पति को कस कर पकड़ कर गाढ़ आलिंगन करके फूट-फूट कर रोने लगीं। सीता जी दुःख के मारे अचेत-सी हो रही थीं। श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया तथा सान्त्वना देते हुए कहा कि तुम्हें दुःख देकर मुझे स्वर्ग का सुख मिलता है तो उसे भी लेना नहीं चाहूंगा। तुम्हारे हार्दिक अभिप्राय को जाने बिना तुम को वनवासिनी बनाना मैं उचित नहीं समझता था। जब तुम मेरे साथ वन में रहने के लिए ही हो तो मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। अब मैं तुम्हें वन में चलने के लिए अनुज्ञा देता हूँ। तुम मेरे साथ रहकर धर्म का आचरण करो। अब तुम वनवास के योग्य दान आदि कर्म प्रारम्भ करो। शीघ्रता करो, विलम्ब नहीं होना चाहिये। तुम्हारे पास जितने भी

मूल्यवान् आभूषण हैं, जो-जो अच्छे वस्त्र हैं, मनोरंजन की जो सुन्दर सामग्रियाँ हों, उत्तमोत्तम शय्याऐं, वाहन तथा अन्य वस्तुऐं ब्राह्मणों को दान करने के बाद शेष सबको अपने सेवकों में बाँट दो। सीता जी तुरन्त इस कार्य में जुट गयीं।

श्रीराम व सीता जी में जब बातचीत हो रही थी उस समय लक्ष्मण वहाँ उपस्थित थे। उनका मुखमण्डल आँसुओं से भीग गया तथा भाई के विरह का शोक अब उनके लिए असह्य हो उठा और वे साथ चलने का आग्रह करने लगे। श्रीराम ने उन्हें समझाया कि तुम्हारे जाने के बाद पिता तथा माताओं की देखभाल कौन करेगा? लक्ष्मण ने कहा कि आपके ही तेज से भरत माताओं का पवित्र भाव से पूजन करेंगे। श्रीराम ने लक्ष्मण को भी साथ चलने की आज्ञा दे दी। श्रीराम ने अनेक उत्तम वस्तुऐं ब्राह्मणों को दान में दीं तथा सेवकों में बाँटीं। उसी समय उनके पास त्रिजट नाम वाले एक गर्ग गोत्रीय ब्राह्मण, जिनके पास जीविका का कोई साधन नहीं था, आये और कहा कि मैं निर्धन हूँ, जीविका नष्ट हो जाने से सदा वन में रहता हूँ, आप मुझ पर कृपा-दृष्टि कीजिये। श्रीराम ने विनोदपूर्वक कहा कि हे ब्राह्मण! मेरे पास असंख्य गायें हैं। उनमें से एक सहस्र का भी मैंने अभी तक किसी को दान नहीं दिया है। आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकते हैं, वहाँ तक की सारी गायें आपको मिल जायेंगी। त्रिजट ने अपनी सारी शक्ति लगाकर डंडे को बड़े वेग से घुमाकर फैंका। वह डंडा सरयू के उस पार जाकर हजारों गायों से भरे हुए गोष्ठ में एक सांड के पास गिरा। श्रीराम ने त्रिजट को छाती से लगा लिया और सभी गायों को त्रिजट के आश्रम पर भेज दिया और कहा कि मैंने यह विनोद में कहा था, यदि आप और कुछ चाहते हों, तो माँगिये। मुनि त्रिजट को बड़ी प्रसन्नता हुई तथा आशीर्वाद देने लगे।

७
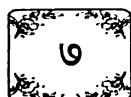
सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का पिता के दर्शन के लिए जाना और वनवास के लिए विदा माँगना।

तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण सीता जी के साथ दान इत्यादि कर्म सम्पन्न करने के बाद वन जाने के पूर्व पिता के दर्शन करने के लिए आये। उस समय पथ (सड़कें) मनुष्यों की भीड़ से भरे थे तथा सभी दुःखी होकर श्री रामचन्द्र जी की ओर देख रहे थे। श्रीराम अपने भाई तथा पत्नी के साथ पैदल ही जा रहे थे।

नागरिक दुःखी होकर कह रहे थे कि राजा दशरथ किसी पिशाच के आवेश में पड़कर अनुचित बात कर रहे हैं। हम लोग भी सब छोड़कर श्रीराम का अनुगमन करें। यहाँ से सारी वस्तुएं हटा लें। यह नगर धूल से भर जाये और जहाँ श्रीराम जा रहे हैं वह वन ही नगर हो जाये। मनुष्यों के मुँह से निकली भाँति-भाँति की बातें सुनते हुए श्रीराम कैकेयी के भवन पर पहुँचे। उन्होंने सुमंत्र को दुःखी अवस्था में खड़े देखा। बिना किसी व्यथा के श्रीराम ने

सुमंत्र से कहा कि आप महाराज को मेरे आगमन की सूचना दें।

सुमन्त्र ने दशरथ को राम के आगमन की सूचना दी। यह सुनकर सत्यवादी महाराज दशरथ ने उनसे कहा कि मेरी स्त्रियों को बुलाओ, मैं उन सब के साथ राम को देखना चाहता हूँ। साढ़े तीन सौ व्रतवती युवती स्त्रियाँ महारानी कौसल्या को सब ओर से घेरकर उस भवन में गयीं। फिर दशरथ ने राम को लाने की आज्ञा सुमन्त्र को दी। राम को देखते ही वे आसन से उठ खड़े हुए, किन्तु उनके पास पहुँचने के पूर्व ही दुःख से व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। सहस्रों स्त्रियों का 'हा राम! हा राम!' आर्तनाद गूँज उठा। अचेत हुए शोकमग्न महाराज के पास राम लक्ष्मण के साथ शीघ्र पहुँच गये और उन्हें पलंग पर बैठा दिया। जब दशरथ को चेत हुआ तो श्रीराम ने हाथ जोड़ कर कहा कि अब आप से आज्ञा लेने आया हूँ, आप कल्याणमयी दृष्टि से मेरी ओर देखिये, साथ ही आप लक्ष्मण तथा सीता को भी मेरे साथ जाने की आज्ञा दीजिये। महाराज ने कहा–राम! मैं कैकेयी को दिये वर के कारण मोह में पड़ गया हूँ। तुम मुझे बन्दी बना कर स्वयं ही अब अयोध्या के राजा बन जाओ। राम ने उत्तर दिया कि आप सहस्रों वर्षों तक इस पृथ्वी के अधिपति रहें। मैं तो अब वन में निवास करूंगा तथा १४ वर्षों के पश्चात् आपके चरणों में मस्तक झुकाऊंगा। कैकेयी पर दोषारोपण करते हुए महाराज ने कहा कि मेरे द्वारा सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओं से तृप्त होकर कल प्रातःकाल यहाँ से जाना। राम ने कहा कि सम्पूर्ण कामनाओं के बदले आज यहाँ से निकल जाना ही अच्छा समझता हूँ! मुझे न तो राज्य, न सुख, न पृथ्वी, न स्वर्ग और न जीवन की ही इच्छा है; मेरी केवल यही इच्छा है कि आप सत्यवादी बने रहें। अब मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकता हूँ। श्रीराम की सभी बातें सुनकर महाराज फिर अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देखकर कैकेयी को छोड़ सभी स्त्रियाँ रो पड़ीं। सुमन्त्र भी मूर्च्छित हो गये।

चेतना आने पर सुमन्त्र के मन में बड़ा संताप हुआ और वे क्रोध के मारे काँपने लगे। कैकेयी के प्रति कठोरतम शब्दों का प्रयोग करते हुए सुमन्त्र ने उससे कहा कि तुम्हारी माता का अपने कुल के अनुरूप जैसा स्वभाव था, वैसा ही तुम्हारा भी है। तुम्हारी माता के दुराग्रह की बात भी हम जानते हैं। किसी साधु के वर के प्रभाव से तुम्हारे पिता केकय-नरेश समस्त प्राणियों की बातें समझ लेते थे। एक दिन वे शय्या पर लेटे हुए थे, उसी समय जृन्म नामक पक्षी की आवाज उनके कानों में पड़ी। उसे सुनते हुए उसका अभिप्राय समझ कर बीच-बीच में वे अनेक बार हँसे। तुम्हारी माँ ने समझा कि राजा मेरी हँसी उड़ा रहे हैं और कहा कि आप हँसने का कारण बताइये। राजा ने रानी से कहा कि यदि मैं हँसने का कारण बता दूँ तो उसी क्षण मेरी मृत्यु हो जायेगी। यह सुनकर रानी ने कहा कि तुम जीओ या मरो, मुझे तो हँसने का कारण बताओ। भविष्य में तुम मेरी हँसी नहीं उड़ा सकोगे। रानी के ऐसा कहने पर राजा ने वर देने वाले साधु को सब बात बतायी। साधु ने कहा कि रानी मरे या घर से निकल जाये, तुम कदापि यह बात उसे न बताना। और हठ करने पर नरेश ने तुम्हारी

माता को घर से निकाल दिया। सुमन्त्र ने कहा कि तुम ऐसी मत बनो, राम का राज्याभिषेक होने दो। परन्तु कैकेयी टस से मस न हुई।

तब राजा दशरथ ने अपनी प्रतिज्ञा से पीड़ित हो आँसू बहाते हुए सुमंत्र से कहा कि तुम शीघ्र ही रत्नों और सुख-साधनों से युक्त रथों से भरी, पूरी सेना को श्रीराम के पीछे-पीछे जाने की आज्ञा दो। उसी समय कैकेयी ने राजा से कहा कि इस धनहीन सूने राज्य को भरत कदापि नहीं ग्रहण करेंगे। दशरथ के आदेश का रोष के साथ कैकेयी प्रतिवाद करने लगी। उस समय राजा दशरथ ने कहा कि तुझे मेरे या अपने हित का भी बिल्कुल ज्ञान नहीं है। अब मैं राज्य, धन और सुख छोड़कर श्रीराम के पीछे चला जाऊंगा। उस समय श्रीराम ने राजा दशरथ से विनीत होकर कहा–राजन् ! मैं भोगों का परित्याग कर चुका हूँ। मैं ये सारी वस्तुएं भरत को अर्पित करने की अनुमति देता हूँ। मेरे लिए तो माता कैकेयी की दासियाँ चीर ला दें। कैकेयी लाज छोड़ चुकी थी। वह स्वयं ही जाकर चीर ले आयी तथा श्रीराम से कहा–"लो, पहन लो।" राम ने उन्हें लेकर मुनियों के-से वस्त्र धारण कर लिये। लक्ष्मण ने भी अनुसरण किया। सीता ने कैकेयी के हाथ से वस्त्र लेकर राम से पूछा–नाथ! वनवासी मुनि लोग चीर कैसे बाँधते हैं? श्रीराम स्वयं ही सीता के वल्कल वस्त्र बाँधने लगे। रनिवास की स्त्रियों ने आँसू बहाते हुए श्रीराम की ओर देखकर कहा कि सीता को इस प्रकार वनवास की आज्ञा नहीं दी गयी है, तुम सीता को यहीं रहने दो। यही अब राम की ओर से राज्य करेंगी। यदि ये गयीं तो हम सब चले जायेंगे तथा भरत भी राज्य लेना कभी स्वीकार नहीं करेगा। कैकेयी की ओर देखकर वे बोलीं–तूने पुत्र का प्रिय करने की इच्छा से वास्तव में उसका अप्रिय किया है, क्योंकि संसार में कोई ऐसा पुरुष है ही नहीं जो श्रीराम का भक्त न हो। इस अवसर पर मुनि वसिष्ठ ने जानकी को चीर पहनने से मना किया, परन्तु सीता पति के समान ही वेशभूषा धारण करने की इच्छा रखकर विरत नहीं हुईं। राजा दशरथ ने भी विरोध किया। उसी समय राम ने कहा–राजन्! मेरी माता अब आप वृद्धा हो चली हैं; अतः अब आप सदा उनका सम्मान करते रहें।

राजा दशरथ श्रीराम को मुनि वेश में देखकर बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे। उन्होंने सुमन्त्र से कहा कि तुम एक रथ ले आओ तथा राम को उस पर बैठाकर जनपद के बाहर पहुँचा आओ। फिर राजा दशरथ ने कोषाध्यक्ष को बुलाया और कहा कि तुम सीता के पहनने योग्य वस्त्र एवं आभूषण ले आओ। रथ भी आ गया तथा सीता के वस्त्र व आभूषण भी आ गये। सीता ने वस्त्र और आभूषण धारण कर लिये। उस समय सीता की सास कौसल्या ने सीता को अपनी दोनों भुजाओं से कसकर छाती से लगा लिया और उनके मस्तक को सूँघकर कहा–पुत्री! जो स्त्रियाँ अपने प्रियतम पति के द्वारा सम्मानित होकर भी संकट में पड़ने पर उसका आदर नहीं करती हैं, वे इस सम्पूर्ण जगत् में असती (दुष्टा) के नाम से पुकारी जाती हैं। दुष्टा स्त्रियों का यह स्वभाव होता है कि पहले तो वे पति के द्वारा यथेष्ट सुख भोगती

हैं, परन्तु जब वह थोड़ी भी विपत्ति में पड़ता है तब उस पर दोषारोपण करती हैं और उसका साथ छोड़ देती हैं। जो झूठ बोलने वाली, विकृत चेष्टा करने वाली, दुष्ट पुरुषों से संसर्ग रखने वाली, पति के प्रति सदा हृदय-हीनता का परिचय देने वाली, कुलटा, छोटी-सी बात के लिए भी क्षणमात्र में पति की ओर से विरक्त हो जाने वाली हैं, वे सब की सब असती या दुष्टा कही गयी हैं। उत्तम कुल, किया हुआ उपकार, विद्या, भूषण आदि का दान और संग्रह–यह सब कुछ दुष्टा स्त्रियों के हृदय को वश में नहीं कर पाता, क्योंकि उनका चित्त अव्यवस्थित होता है। इसके विपरीत जो सत्य, सदाचार, शास्त्रों की आज्ञा और कुलोचित मर्यादाओं में स्थित रहती हैं, उन साध्वी स्त्रियों के लिए एकमात्र पति ही परम पवित्र सर्वश्रेष्ठ देवता है इसलिए तुम मेरे पुत्र राम का, जिसे वनवास की आज्ञा मिली है, कभी अनादर न करना। वे तुम्हारे लिए देवता के तुल्य हैं।

सास के वचनों का तात्पर्य समझकर सीता ने हाथ जोड़कर कहा–आर्ये! आप मुझे जो कुछ उपदेश दे रही हैं, मैं उसका पूर्णरूप से पालन करूंगी। जैसे प्रभा चन्द्रमा से दूर नहीं हो सकती, उसी प्रकार मैं पतिव्रत-धर्म से विचलित नहीं हो सकती। जैसे बिना तार की वीणा नहीं बज सकती और बिना पहिये का रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार नारी सौ पुत्रों की माता होने पर भी बिना पति के सुखी नहीं हो सकती। पिता, भ्राता और पुत्र, ये परिमित सुख प्रदान करते हैं, परन्तु पति अपरिमित सुख का दाता है। अतः ऐसी कौन-सी स्त्री है जो अपने पति का सत्कार नहीं करेगी? मैं जानती हूँ कि पति ही स्त्री का देवता है।
फिर श्री राम ने माँ को सान्त्वना दी और माँ सहित सभी माताओं को प्रणाम किया। वहाँ पर बड़ा भारी विलाप होने लगा।

सीता सहित श्रीराम और लक्ष्मण का रथ में बैठकर वन को प्रस्थान, पुरवासियों तथा रानियों सहित दशरथ की शोकाकुल अवस्था।

तदनन्तर श्री राम ने पिता और सभी माताओं की चरण-वन्दना की। सुमित्रा ने अपने पुत्र लक्ष्मण से कहा कि तुम उनकी सेवा में कभी प्रमाद न करना। इसके बाद सीता तथा राम व लक्ष्मण रथ पर आरूढ़ हो गये। उस समय अयोध्या में महान् कोलाहल मच गया तथा बहुतों को मूर्च्छा आ गयी। अयोध्या के आबाल-वृद्ध सभी श्री राम के पीछे दौड़े। राम सुमन्त्र को शीघ्र रथ हाँकने के लिए कहते थे, परन्तु जन-समुदाय उन्हें ठहर जाने को कहता था, इसलिए रथ आगे नहीं बढ़ पा रहा था। दशरथ तथा रानियाँ करुण क्रंदन करने लगीं। राम ने पीछे घूमकर देखा तो दशरथ तथा कौसल्या पीछे आते हुए दिखाई दिये। राम ने सारथी को शीघ्र रथ हाँकने के लिए प्रेरित किया। कौसल्या 'हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' की रट लगाती और रोती हुई रथ के पीछे दौड़ रही थीं। राजा दशरथ सुमंत्र को ठहरने के लिए

कहते थे, परन्तु राम कहते शीघ्र आगे बढ़ो। रथ का पीछा करने में राजा व रानी असमर्थ हो गये, परन्तु नागरिक श्री राम के पीछे-पीछे दौड़े चले गये। अयोध्या का सब काम रुक गया।

राजा दशरथ आर्त और विषादग्रस्त हो पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय उनको सहारा देने कौसल्या उनके दाहिने बाहु के पास आयी तथा कैकेयी उनके वाम भाग में। कैकेयी को देखकर राजा बोले–'तू मेरे अंगों का स्पर्श न कर। तू मेरी भार्या नहीं है। तेरा पुत्र भरत भी यदि राज्य पाकर प्रसन्न हो तो वह मेरे लिए श्राद्ध में जो कुछ पिण्ड या जल दान करे, मुझे प्राप्त न हो।' कौसल्या राजा को उठाकर राजभवन की ओर लौटीं। राजा दशरथ विलाप करने लगे तथा भवन के पास पहुँचने पर द्वारपालों से कहा कि मुझे शीघ्र ही राम की माता कौसल्या के घर में पहुँचा दो। द्वारपालों ने उन्हें कौसल्या के भवन में पहुँचाया जहाँ वे लगातार विलाप करते रहे। आधी रात के समय उन्होंने कौसल्या से कहा कि मेरी दृष्टि राम के साथ चली गयी, मैं अब देख नहीं सकता; एक बार अपने हाथ से मेरे शरीर का स्पर्श तो करो। कौसल्या भी विलाप करने लगीं।

महारानी कौसल्या ने अनेक प्रकार का विलाप किया तथा कैकेयी व राजा के बारे में अनेक बातें कहीं। उस समय लक्ष्मण की माँ सुमित्रा ने कौसल्या से कहा कि आर्ये! तुम्हारा पुत्र राम उत्तम गुणों से युक्त और पुरुषों में श्रेष्ठ है, उसके लिए इस प्रकार विलाप करना और रोना व्यर्थ है।

श्रीराम के पीछे जो प्रजाजन जा रहे थे, उन्होंने राम से लौट चलने के लिए बहुत प्रार्थना की। श्रीराम ने कहा कि आप लोगों को जो प्रेम और आदर मेरे प्रति है वह मेरी ही प्रसन्नता के लिए भरत के प्रति और अधिक रूप में होना चाहिये। फिर उन्होंने भरत के अनेक गुण बताये। पुरवासियों में बहुत से ब्राह्मण थे जो ज्ञान, अवस्था और तपोबल में बड़े थे, उन्होंने कहा कि तुम्हें वन नहीं जाना चाहिये। वृद्ध ब्राह्मणों को इस प्रकार आर्तभाव से प्रलाप करते हुए देखकर श्रीराम रथ से नीचे आ गये तथा उनके साथ ही चलने लगे। ब्राह्मणों ने कहा कि राम! तुम ब्राह्मण-हितैषी हो, इससे सारा ब्राह्मण समाज तुम्हारे पीछे चल रहा है। हम सब तुम्हारे साथ चलेंगे। फिर भी जब श्री राम नहीं रुके तो वे ब्राह्मण बोले कि बहुत से ब्राह्मणों ने यज्ञ आरम्भ कर दिया है, अब इनके यज्ञों की समाप्ति तुम्हारे लौटने पर ही निर्भर है। राम और आगे बढ़ते गये तथा तमसा नदी का तट आ गया। सुमंत्र ने घोड़ों को रथ से मुक्त कर टहलने के लिए छोड़ दिया।

रात्रि में तमसा-तट पर निवास; पुरवासियों को सोते छोड़कर राम-लक्ष्मण-सीता का वन की ओर जाना; प्रातः पुरवासियों का विलाप; श्रीराम का कोशल जनपद लांघना, शृंगवेरपुर में गंगा-तट पर रात्रि में निवास; निषादराज गुह द्वारा सत्कार।

रात्रि में श्री राम ने तमसा नदी के तट पर विश्राम किया। उन्होंने लक्ष्मण से राजा दशरथ तथा कौसल्या के प्रति दुःख प्रकट किया तथा शंका की कि वे रोते-रोते अंधे न हो जायें। फिर भी श्री राम ने भरत के गुणों की प्रशंसा की। रात्रि बीतने के कुछ समय पूर्व राम उठे तथा लक्ष्मण से कहा कि सभी नगर-निवासी सो रहे हैं, इसलिए इनके उठने के पूर्व ही हम लोग दूर चले जायें। हमारा कर्तव्य हे कि इन्हें दुःखों से मुक्त करें। लक्ष्मण ने सुमंत्र से रथ तैयार करने को कहा तथा उसके तैयार होते ही श्री राम लक्ष्मण व सीता के साथ तमसा नदी पार कर गये। तदनन्तर उन्होंने सुमंत्र से कहा कि रथ को इस प्रकार घुमाकर लाइये ताकि पुरवासी यह न जान सकें कि हम किधर गये।

प्रातः उठने पर अयोध्यावासी श्री राम को न देखकर अचेत हो गये। फिर खिन्न होकर विलाप करने लगे। इधर-उधर भागकर खोजने लगे कि राम किधर गये हैं। परन्तु पता नहीं लगा। अन्त में विलाप करते हुए उन्होंने उसी मार्ग से लौटकर अयोध्या में प्रवेश किया। श्री राम के बिना लौट आये थे, इसलिए उनका चित्त ठिकाने नहीं था। सभी ओर दुःख का ही वातावरण छाया था।

श्री राम शेष रात्रि में ही बहुत दूर निकल गये। मार्ग में पड़ने वाले जनपदों के नागरिक राजा दशरथ तथा कैकेयी के प्रति धिक्कारयुक्त वाणी कहने लगे। श्री राम वह सब सुनते हुए वेदश्रुति नदी पार करके अगस्त्य-सेवित दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। फिर उन्होंने गोमती नदी को पार किया और तदनन्तर स्यन्दिका नदी को भी पार किया। वे जनपद धनधान्य से सम्पन्न थे।

तत्पश्चात् श्री राम ने कोशल देश की सीमा पार करने के बाद अयोध्या की ओर हाथ जोड़कर कहा कि अयोध्ये! तुमसे तथा जो देवता तुम्हारी रक्षा करते हैं उनसे मैं वन जाने की आज्ञा माँगता हूँ।

तदनन्तर इस जनपद के नागरिकों से कहा कि आप लोगों ने हमारे लिए बहुत कष्ट उठाया, अब आप अपने काम पर जायें। वे सब विलाप करने लगे। राम आगे बढ़े तथा दिव्य नदी गंगा का दर्शन किया और शृंगवेरपुर पहुँच गये। उस रात्रि वहीं विश्राम करने का निश्चय किया।

शृंगवेरपुर में गुह नाम का राजा राज्य करता था। वह श्री राम का प्रिय मित्र था। श्री राम को वल्कल आदि धारण किये देखकर निषादराज गुह ने उन्हें हृदय से लगा लिया तथा कहा कि जैसे अयोध्या आपका राज्य है, उसी प्रकार यह राज्य भी आपका है। वह अनेक प्रकार से स्वागत करने लगा। श्री राम ने कहा–सखे! तुम्हारे स्नेह प्रकट करने से ही मेरा स्वागत-सत्कार हो गया है, मैं इस समय दूसरों की दी हुई कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करता। फल-मूल ही मेरा आधार है। इसके उपरान्त श्री राम ने रात्रि में वहीं विश्राम किया। लक्ष्मण के साथ निषादराज गुह भी श्री राम की सुरक्षा के लिए रात भर जागता रहा।

निषादराज गुह से भेंट

अयोध्या की अवस्था तथा राजा दशरथ व कौसल्या के शोक का स्मरण करते हुए लक्ष्मण ने कहा कि वे लोग शोक में अपने प्राण बचा पायेंगे इसमें मुझे शंका है। गुह के आग्रह पर भी लक्ष्मण ने शय्या पर विश्राम नहीं किया।

श्री राम की आज्ञा से गुह का नाव मँगाना। सुमंत्र को अयोध्यापुरी लौट जाने की आज्ञा देना। नाव में पार उतरना। रात्रि में एक वृक्ष के नीचे विश्राम। प्रयाग में भरद्वाज आश्रम में जाना।

प्रभात होने पर श्री राम ने लक्ष्मण से कहा कि अब हमें गंगा पार करनी चाहिये। उनके अभिप्राय को जानकर निषादराज ने एक सुन्दर-सी नाव का प्रबन्ध किया। उसी समय सुमन्त्र ने पूछा–प्रभु! अब मुझे क्या आज्ञा है? राम ने कहा कि अब आप अयोध्या लौट जायें तथा पिताजी की देखभाल करें। पिता के साथ उचित व्यवहार के लिए उन्होंने अनेक परामर्श

सुमन्त्र को दिये। अपनी सब माताओं को कुशल-समाचार कहने के लिए कहा और परामर्श दिया कि राजा दशरथ तुरन्त ही भरत को बुला लें। साथ ही कहा कि भरत को भी परामर्श देना कि वह समान रूप से सभी माताओं के प्रति व्यवहार करें। सुमन्त्र अनेक प्रकार से विलाप करने लगे परन्तु श्री राम ने उन्हें लौटने की ही आज्ञा दी तथा गुह से बड़ (वट) का दूध मँगवाकर केशों को जटा रूप दे दिया। राम लक्ष्मण तथा सीता के साथ नाव पर आरूढ़ (सवार) हो गये। गंगा जी को तीनों ने प्रणाम किया और नाविक को नाव चलाने का आदेश दिया। बीच धार में पहुँचने पर सीता ने हाथ जोड़कर गंगा जी से प्रार्थना की कि आप ऐसी कृपा कीजिये ताकि आपसे सुरक्षित होकर दशरथ के पुत्र पिता की आज्ञा का पालन कर सकें। वनवास का समय पूर्ण होने के बाद मैं आपकी पूजा करूंगी। किनारे पहुँचने पर श्रीराम ने नाव छोड़ दी तथा आगे को प्रस्थान किया। उन्होंनें लक्ष्मण से कहा कि निर्जन वन में सीता की रक्षा के लिए सावधान रहो। तुम आगे चलो, सीता तुम्हारे पीछे तथा मैं सबसे पीछे रहकर सब की रक्षा करूंगा। सुमन्त्र, जब तक राम दिखाई पड़ते रहे, उस समय तक उन्हीं की ओर दृष्टि लगाये रहे; जब वे ओझल हो गये तो उन्हें बड़ी व्यथा हुई। आगे बढ़ते हुए श्री राम वत्सदेश (प्रयाग) जा पहुँचे। तत्पश्चात् जब उन्हें भूख लगी तो कन्द-मूल आदि लेकर सायंकाल ठहरने के लिए एक वृक्ष के नीचे चले गये।

श्री राम ने कहा कि अपने जनपद से बाहर हमारी यह पहली रात है, यह रात हम लोग किस प्रकार बितायेंगे! फिर लक्ष्मण से कहने लगे कि महाराज निश्चय ही बड़े दुःखी होंगे तथा कैकेयी सफल-मनोरथ होने के कारण बहुत संतुष्ट होगी। कहीं ऐसा न हो कि कैकेयी भरत को आया देखकर महाराज को प्राणों से भी वियुक्त कर दे। अपने ऊपर आये हुए संकट और राजा की मति-भ्रान्ति को देखकर श्री राम ने कहा कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अर्थ और धर्म की अपेक्षा काम का ही वर्चस्व अधिक है। भरत ही सुखी और सौभाग्यवती स्त्री का पति है जो कोशल देश का सम्राट् की भाँति पालन करेगा। पिताजी वृद्ध हैं, कैकेयी कुछ भी अनर्थ कर सकती है। हम लोगों के कारण माता सुमित्रा देवी को भी दुःख के साथ रहना पड़ेगा। अतः लक्ष्मण! तुम कल प्रातः अयोध्या लौट जाओ। फिर उन्होंने अपनी माता के दुःखों का वर्णन किया तथा कहा कि यदि मैं कुपित हो जाऊँ तो अकेला ही अयोध्यापुरी तथा समस्त भूमण्डल को निष्कण्टक बनाकर अपने अधिकार में ले सकता हूँ, परन्तु पारलौकिक हितसाधन में बल-पराक्रम कारण नहीं होता। मैं अधर्म और परलोक के हेतु से डरता हूँ। इस प्रकार की बातें कहते हुए उन्होंने करुणाजनक विलाप किया। उस समय लक्ष्मण ने कहा कि आप जो इस प्रकार संतप्त हो रहे हैं वह आप के लिए कदापि उचित नहीं है। आप मुझे तथा सीता को खेद में डाल रहे हैं। आपके बिना सीता और मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकते। तदनन्तर श्री राम ने लक्ष्मण को वनवास के सम्पूर्ण वर्षों तक वन में रहने की अनुमति दे दी।

रात्रि व्यतीत होने पर वे उस स्थान से आगे को प्रस्थित हुए। गंगा में जहाँ यमुना मिलती है, वहाँ जाने के लिए यात्रा प्रारम्भ की। जब दिन प्रायः समाप्त हो चला तो श्रीराम ने कहा—लक्ष्मण! वह देखो, प्रयाग के पास भगवान् अग्निदेव की ध्वजा रूप उत्तम धूम उठ रहा है। इससे विदित होता है कि मुनिवर भरद्वाज यहीं हैं। इस प्रकार बात करते हुए वे भरद्वाज मुनि के आश्रम पर जा पहुँचे। महर्षि के दर्शन की इच्छा से वे कुछ दूर पर खड़े हो गये। इसके उपरान्त आगमन की सूचना दिलाने के बाद वे महर्षि के पास पहुँचे तथा हाथ जोड़कर उनके चरणों में प्रणाम किया। फिर अपना परिचय दिया। धर्मात्मा भरद्वाज ने आतिथ्य-सत्कार के रूप में अर्घ्य-जल तथा आसन समर्पित किये तथा नाना प्रकार के अन्न-रस एवं जंगली फल-मूल प्रदान किये, साथ ही ठहरने के लिए स्थान की व्यवस्था की। सत्कार-ग्रहण के पश्चात् जब श्रीराम आसन पर विराजमान हुए तो मुनि ने कहा—हे राम! मैं इस आश्रम पर दीर्घ काल से तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। यह स्थान पवित्र और एकान्त है, यहाँ की छटा भी मनोरम है, अतः तुम यहीं सुखपूर्वक निवास करो। श्री राम ने कहा—भगवन् ! मेरे नगर और जनपद से यह स्थान बहुत निकट है, इसलिए यहाँ निवास करना ठीक नहीं जान पड़ता। आप अन्य एकान्त प्रदेश में आश्रम के योग्य उत्तम स्थान बताइये। राम की यह बात सुनकर भरद्वाज ने कहा कि यहाँ से दस कोस की दूरी पर एक सुन्दर और महर्षियों द्वारा सेवित परम पवित्र पर्वत है जिस पर तुम्हें निवास करना होगा। उसका नाम चित्रकूट है। रात्रि का आगमन होने पर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण ने वहाँ सुखपूर्वक वह रात्रि व्यतीत की। प्रातः होने पर गन्तव्य स्थान पर जाने के लिए आज्ञा माँगी।

११

भरद्वाज जी का श्रीराम को चित्रकूट का मार्ग बताना; यमुना पार करके उनका चित्रकूट में पहुँचना, वाल्मीकि जी का दर्शन, पर्णशाला का निर्माण तथा निवास।

तदनन्तर मुनि भरद्वाज ने उन्हें मार्ग बताते हुए कहा कि जहाँ गंगा-यमुना मिलती हैं वहाँ यमुना के निकट जाना और घाट देखकर एक बेड़ा बनाकर यमुना के उस पर उतर जाना। आगे एक पेड़ मिलेगा जिसके पत्ते गहरे हरे रंग के हैं। उस वृक्ष का नाम श्याम वट है। उससे आशीर्वाद लेना, फिर आगे बढ़ना। उसके आगे नील वन मिलेगा। वहीं से चित्रकूट का मार्ग जाता है। भरद्वाज के बताये अनुसार उन्होंने यमुना पार की। बीचधारा में सीता ने यमुना को प्रणाम किया तथा आशीर्वाद माँगा और कहा कि लौटने पर आपकी पूजा करूंगी। पार उतरने के बाद पुनः यात्रा प्रारम्भ की। मार्ग में हिंसक पशुओं का वध करते हुए वे विचरने लगे तथा रात्रि होने पर यमुना नदी के तट पर निवास किया। प्रातः श्रीराम ने लक्ष्मण

को जगाया तथा वे लोग चित्रकूट के मार्ग पर चल दिये। मार्ग में उन्होंने कहा कि यहाँ बहुत से फल और फूल हैं तथा मधु के छत्ते लटक रहे हैं। यह स्थान बहुत रमणीक है। और वह देखो, चित्रकूट पर्वत है। भूमि जहाँ की समतल हो, वहीं हम लोग आनन्द से विचरेंगे। आगे बढ़ते हुए वे चित्रकूट पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर श्रीराम ने कहा कि इस पर्वत पर बहुत से महात्मा मुनि निवास करते हैं, हम यहीं निवास करेंगे। ऐसा निश्चय करके उन्होंने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश किया और उनके चरणों में मस्तक झुकाया। महर्षि बड़े प्रसन्न हुए तथा उनका स्वागत किया। श्रीराम ने अपना परिचय दिया और लक्ष्मण से कहा कि तुम सुदृढ़ लकड़ियाँ ले आओ और रहने के लिए कुटी तैयार करो। लक्ष्मण ने कुटी बना ली। वह देखने में बड़ी सुन्दर लगती थी। उसे तैयार हुई देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा–सुमित्राकुमार! हम गजकन्द का गूदा लेकर उसी से पर्णशाला के अधिष्ठातृ देवताओं का पूजन करेंगे, क्योंकि दीर्घ जीवन की इच्छा करने वाले पुरुषों को वास्तु-शान्ति अवश्य करनी चाहिये। भाई की इस बात को समझकर लक्ष्मण ने उनके कथनानुसार कार्य किया। तब श्री राम ने कहा–लक्ष्मण! इस गजकन्द को पकाओ। पर्णशाला के अधिष्ठाता देवताओं का पूजन करेंगे। शीघ्रता करो। यह सोम्य मुहूर्त है और यह दिन भी ध्रुव संज्ञक है। लक्ष्मण ने गजकंद को प्रज्वलित आग में डाल दिया। रक्त-विकार का नाश करने वाले उस गजकन्द को पका हुआ जानकर लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा–मेरे द्वारा यह सम्पूर्णतः पका दिया गया है। अब आप वास्तु देवताओं का यजन कीजिये, क्योंकि आप इस कर्म में कुशल हैं। श्री राम ने संक्षेप से उन सभी मन्त्रों का पाठ एवं जप किया जिनसे वास्तुयज्ञ की पूर्ति हो जाती है। समस्त देवताओं का पूजन करके पवित्र भाव से श्रीराम ने पर्णकुटी में प्रवेश किया।

१२
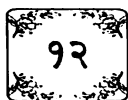
सुमन्त्र का अयोध्या लौटना, पुरवासियों का विलाप; राजा दशरथ को श्रीराम और लक्ष्मण का संदेश सुनाना, राजा दशरथ का विलाप।

श्रीराम के गंगा पार करने के बाद सुमन्त्र कुछ देर गुह के साथ रहकर वापस अयोध्या पहुँचे। सुमन्त्र को देखकर पुरवासी पूछने लगे–श्रीराम कहाँ हैं? सुमन्त्र ने कहा कि श्रीराम के साथ मैं गंगाजी के किनारे तक गया था, उसके बाद मैं लौट आया। उनकी बात सुनकर 'हा राम! हा राम!' की पुकार मचाते हुए करुण क्रन्दन होने लगा। सुमन्त्र ने राज-भवन में प्रवेश किया। राजा के पास जाकर उन्होंने प्रणाम किया और श्रीराम की कही हुई बातें ज्यों की त्यों सुना दीं। राजा ने चुपचाप सुन लिया और शोक से पीड़ित हो मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। सभी शोकमग्न हो गये। कौसल्या ने सुमित्रा की सहायता से पति को उठाया और कहा कि आप सुमन्त्र से बात क्यों नहीं कर रहे हैं? आपको अपने सत्य-पालन का पुण्य प्राप्त है, फिर आप लज्जित क्यों हो रहे हैं? आप भय मत करिये,

कैकेयी यहाँ नहीं है। कौसल्या भी इतना कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। मूर्च्छा दूर होने पर दशरथ ने श्रीराम तथा लक्ष्मण का सँन्देश सुनाने के लिए सुमन्त्र को समीप बुलाया। राजा ने अत्यन्त आर्त होकर उनसे पूछा–सुमन्त्र! वन में पहुँच कर श्रीराम ने तुमसे क्या कहा? लक्ष्मण ने क्या कहा तथा सीता ने क्या संदेश दिया? महाराज के इस प्रकार पूछने पर सारथी सुमन्त्र ने आँसुओं से रुँधी हुई भर्रायी वाणी द्वारा उनसे कहा–महाराज! श्रीराम ने दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक झुकाकर कहा कि मेरे महात्मा पिता के दोनों चरणों में प्रणाम कहना तथा सभी माताओं को मेरे आरोग्य का समाचार देते हुए, मेरा यथोचित प्रणाम निवेदन करना। इसके बाद मेरी माता कौसल्या को मेरा प्रणाम कहकर बताना कि मैं कुशल से हूँ और धर्मपालन में सावधान रहता हूँ। फिर उनको मेरा यह संदेश सुनाना कि माँ! तुम सदा धर्म में तत्पर रहकर महाराज को देवता के समान मानते हुए उनके चरणों की सेवा करना। जिसमें राजा का अनुराग है, उस कैकेयी को भी श्रेष्ठ मानकर उसका सत्कार करना। कुमार भरत के प्रति राजोचित बर्ताव करना। राजा छोटी आयु के हों, तो भी वे आदरणीय ही होते हैं। इस राजधर्म को स्मरण रखना। कुमार भरत से कहना–भैया! तुम सभी माताओं के प्रति न्यायोचित बर्ताव करते रहना। पिता जी की रक्षा एवं सेवा में संलग्न रहना। फिर उन्होंने नेत्रों से आँसू बहाते हुए संदेश दिया–भरत! मेरी पुत्रवत्सला माता को अपनी ही माता के समान समझना। परन्तु लक्ष्मण उस समय कुपित होकर बोले–सुमन्त्र जी! किस अपराध के कारण महाराज ने इन राजकुमार श्रीराम को देशनिकाला दिया है? श्रीराम को वनवास देना कैकेयी के लोभ के कारण हुआ है अथवा राजा के दिये हुए वरदान के कारण, मेरी दृष्टि में यह सर्वथा पाप ही किया गया है। मुझे इस समय महाराज में पिता का भाव नहीं दिखाई देता। जिनमें समस्त प्रजा का मन रमता है, उन धर्मात्मा श्री राम को देश-निर्वासन देकर समस्त लोकों का विरोध करने के कारण अब वे कैसे राजा हो सकेंगे? सीता तो लंबी साँस खींचती हुई इस प्रकार निश्चेष्ट खड़ी थीं मानो उनमें किसी भूत-प्रेत का आवेश हो गया हो। वे पति के ही दुःख से दुःखी होकर रो रही थीं। उन्होंने मुझसे कुछ भी नहीं कहा। सुमन्त्र ने कहा–जब श्री रामचन्द्र जी वन की ओर प्रस्थित हुए तब मैंने उन दोनों राजकुमारों को प्रणाम किया और उनके वियोग के दुःख को हृदय में धारण करके रथ पर आरूढ़ हो उधर से लौटा। लौटते समय मेरे अश्व गरम-गरम आँसू बहाने लगे। महाराज! आप के राज्य में फूल मुरझा गये हैं, नदियों के जल गरम हो गये हैं, जीव-जन्तु भी जहाँ के तहाँ पड़े हैं। श्री राम के शोक से यह सारा वन नीरव-सा हो गया है। अयोध्या में प्रवेश करते समय मुझसे किसी ने प्रसन्न होकर बात नहीं की। महाराज! अयोध्या के मनुष्यों का हर्ष छिन गया है। सारी पुरी आर्तनाद से मलिन दिखाई देती है। सुमन्त्र के वचन सुनकर राजा ने दीन वाणी में कहा– सूत! सुहृदों, मन्त्रियों और वेदवेत्ताओं से परामर्श लिये बिना ही मैंने मोहवश केवल एक स्त्री की इच्छा पूर्ण करने के लिए सहसा यह अनर्थमय कार्य कर डाला है। सारथी! तुम

मुझे शीघ्र ही राम के पास पहुँचा दो। मेरे प्राण मुझे राम के दर्शन के लिए शीघ्रता की प्रेरणा दे रहे हैं। देवि कौसल्ये! मैं राम के बिना जिस शोक-समुद्र में डूबा हुआ हूँ, उसे जीते जी पार करना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है। राम का शोक ही उस समुद्र का महान् वेग है। सीता का विछोह ही उसका दूसरा छोर है। लम्बी-लम्बी साँसें उसकी लहरें और बड़े-बड़े भँवर हैं। आँसुओं का वेगपूर्वक उमड़ा हुआ प्रवाह उसका मलिन जल है। मेरा हाथ पटकना ही उसमें मछलियों का विलास है। करुण-क्रन्दन उसकी महान् गर्जना है। ये बिखरे हुए केश उसमें उपलब्ध होने वाले शैवाल हैं। कैकेयी बड़वानल है। वह शोक-समुद्र मेरी वेगपूर्वक होने वाली अश्रुवर्षा की उत्पत्ति का मूल कारण है। मन्थरा के कुटिलतापूर्ण वचन उस समुद्र के बड़े-बड़े ग्राह हैं। क्रूर कैकेयी के माँगे हुए दो वर ही उसके दो तट हैं तथा श्री राम का वनवास ही उस शोक-सागर का महान् विस्तार है। इस प्रकार विलाप करते हुए राजा दशरथ मूर्च्छित होकर शय्या पर गिर पड़े। राजा दशरथ के उन करुणाजनक वचनों को सुनकर तथा उनके मूर्च्छित हो जाने पर देवी कौसल्या को पुनः दुगुना भय हो गया।
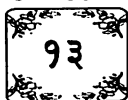
कौसल्या का विलाप तथा राजा दशरथ को उपालम्भ देना; राजा दशरथ का कौसल्या को मनाना और मुनिकुमार के मारे जाने का प्रसंग सुनाना तथा प्राण-त्याग।

उसी अवस्था में कौसल्या ने सारथी से कहा—सुमन्त्र! जहाँ राम है, जहाँ सीता और लक्ष्मण हैं, वहीं मुझे भी पहुँचा दो। मैं उनके बिना अब एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। देवी कौसल्या की बात सुनकर सुमन्त्र ने कहा—महारानी! यह शोक, मोह और व्याकुलता छोड़िये। श्री रामचन्द्र इस समय सारा संताप भूलकर वन में निवास कर रहे हैं। लक्ष्मण भी उस वन में श्रीराम के चरणों की सेवा करते हुए अपना परलोक बना रहे हैं। सीता का मन भगवान् श्रीराम में ही लगा है। अतः आप श्री राम, लक्ष्मण अथवा सीता के लिए शोक न करें, अपने और महाराज के लिए भी चिन्ता छोड़ें। श्रीराम का यह पावन चरित्र संसार में सदा स्थिर रहेगा। इस प्रकार युक्तियुक्त वचन सुनकर भी देवी कौसल्या विलाप से विरत न हुईं। वे 'हा प्रिय पुत्र!' और 'हा रघुनन्दन!' की रट लगाती हुई करुण क्रन्दन करती ही रहीं। कौसल्या ने अपने पति से कहा—'महाराज! सभी लोग जानते हैं कि दशरथ बड़े दयालु, उदार, और प्रिय वचन बोलने वाले हैं, तथापि आपने इस बात का विचार नहीं किया कि सुख में पले हुए आपके ये दोनों पुत्र सीता के साथ वनवास का कष्ट कैसे सहन करेंगे! आपने यह बड़ा ही निर्दयतापूर्ण कर्म किया है। आपने श्रीराम को वन में भेजकर इस राष्ट्र का तथा आस-पास के अन्य राज्यों का भी नाश कर डाला। मन्त्रियों सहित सारी प्रजा का वध कर डाला। आपके द्वारा पुत्र सहित मैं भी मारी गयी और इस नगर के निवासी भी नष्टप्राय हो गये। केवल आपका पुत्र भरत और पत्नी कैकेयी, दो ही प्रसन्न हुए हैं।' कौसल्या की यह

कठोर वाणी सुनकर राजा दशरथ को बड़ा दुःख हुआ।

राजा दशरथ नीचे मुँह किये कौसल्या को मनाने के लिए हाथ जोड़कर बोले—तुम तो दूसरों पर सदा वात्सल्य दिखाती हो, फिर मेरे प्रति क्यों कठोर हो गयी? यद्यपि तुम दुःखित हो, तथापि मैं भी महान् दुःख में पड़ा हूँ। अतः तुम्हें मेरे प्रति कटोर वचन नहीं कहने चाहिये। राजा दशरथ के करुणाजनक वचन सुनकर कौसल्या रोने लगी और बोली—'देव! मैं आपके सामने पृथ्वी पर पड़ी हूँ। आपके चरणों में मस्तक रखकर याचना करती हूँ, आप प्रसन्न हों। मुझसे अपराध हुआ। आप क्षमा करें। शोक धैर्य का नाश कर देता है। राम को वन गये पाँच रातें बीत गयीं। पुत्र-वियोग ने मेरे हर्ष को नष्ट कर दिया।' देवी कौसल्या की बातें सुनकर राजा दशरथ को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हें हर्ष व शोक की अवस्था में नींद आ गयी।

राजा दशरथ कुछ देर के बाद फिर जाग गये। कौसल्या से वे फिर कहने लगे—मनुष्य शुभ या अशुभ जो भी कर्म करता है, अपने उसी कर्म का फल उसे प्राप्त होता है। पिता के जीवनकाल में जब मैं राजकुमार था तो सब लोग कहते थे कि राजकुमार दशरथ शब्द-वेधी वाण चलाना जानते हैं। इस ख्याति के मोह में पड़कर मैंने पाप कर डाला। एक दिन मैं आखेट (शिकार) खेलने के लिए सरयू नदी के तट पर गया। उस समय वहाँ सब ओर अन्धकार छा रहा था। मुझे अकस्मात् पानी में घड़ा भरने की आवाज सुनाई पड़ी, किन्तु वह आवाज मुझे हाथी के पानी पीते समय होने वाले शब्द के समान जान पड़ी। मैंने तूणीर से एक वाण निकाला और उस शब्द को लक्ष्य करके चला दिया। उस तीखे वाण को मैंने ज्यों ही छोड़ा, त्यों ही वहाँ पानी में गिरते हुए किसी वनवासी का हाहाकार मुझे स्पष्ट रूप से सुनाई दिया : 'आह! किसने मुझे वाण मारा है? इस हत्यारे को संसार में कहीं भी कोई अच्छा नहीं समझेगा। मुझे अपने जीवन की उतनी चिन्ता नहीं है, किन्तु मेरे मारे जाने से मेरे माता-पिता को बहुत कष्ट होगा। घातक ने एक ही वाण से मुझे और मेरे बूढ़े माता-पिता को भी मृत्यु के मुख में डाल दिया।' ये करुण वचन सुनकर मुझे बड़ी व्यथा हुई। उस स्थान पर जाकर मैंने देखा कि एक तपस्वी वाण से घायल होकर पड़े हैं। उनकी अवस्था देखकर मैं डर गया। वे कठोर वाणी में बोले—राजन् ! मैंने तुम्हारा कौन-सा अपराध किया था जिससे तुमने मुझे वाण मारा? मैं तो अपने माता-पिता के लिए पानी लेने की इच्छा से यहाँ आया था। वे दोनों बहुत दुर्बल और अन्धे हैं। निश्चय ही प्यास से पीड़ित होकर वे मेरी प्रतीक्षा में बैठे होंगे। अतः उन्हें प्रसन्न करो, जिससे वे कुपित होकर तुम्हें शाप न दें। राजन् ! मेरे शरीर से इस वाण को निकाल दो। यह सुनकर मेरे मन में चिन्ता समायी कि यदि वाण नहीं निकालता हूँ तो इन्हें क्लेश होता है और निकाल देता हूँ तो ये प्राणों से भी हाथ धो बैठते हैं। मेरी चिन्ता को तपस्वीकुमार ने लक्ष्य किया और बोले—'राजन् ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, इसलिए तुम्हारे मन में ब्रह्महत्या को लेकर कोई व्यथा नहीं होनी चाहिये। मैं वैश्य

पिता द्वारा शूद्रजातीय माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ।' वाण से मर्म में आघात पहुँचने के कारण वे बड़े कष्ट से इतना ही कह सके। इस अवस्था में मैंने उनके शरीर से वाण को निकाल दिया और वनवासीकुमार ने प्राण त्याग दिये। मेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही थीं। उस घड़े को जल से भरकर तपस्वीकुमार के बताये हुए मार्ग से उनके माता-पिता के पास गया। वहाँ पहुँच कर उनके अन्धे और बूढ़े माता-पिता को देखा। मेरे पैरों की आहट सुनकर वे बोले–'पुत्र! देर क्यों लगा रहे हो? शीघ्र पानी ले आओ।' भयभीत होकर लड़खड़ाती वाणी से मैं बोला–'महात्मन् ! मैं आपका पुत्र नहीं, दशरथ नाम का एक क्षत्रिय हूँ। अनूजान में मेरे हाथ से आपके पुत्र का वध हो गया है। ऐसी अवस्था में आप का शोक जैसे दूर हो, वैसा करके मुझ पर प्रसन्न हों।' उस समय उन तपस्वी ने कहा–'राजन् ! यदि यह अपना पापकर्म तुम स्वयं न बताते तो तुम्हारे मस्तक के सैकड़ों टुकड़े हो जाते। नरेश्वर! तुम हम दोनों को उस स्थान पर ले चलो, जहाँ हमारा पुत्र मरा पड़ा है।' मैं उन दम्पति को उस स्थान पर ले गया। पत्नी सहित वृद्ध तपस्वी को उनके पुत्र के शरीर का स्पर्श कराया। वे दोनों पुत्र का स्पर्श करके उसके शरीर पर गिर पड़े। फिर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। तत्पश्चात् वे पुत्र को जलांजलि देने के कार्य में प्रवृत्त हुए। इसी समय वह तापसकुमार अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से दिव्य रूप धारण करके इन्द्र के साथ स्वर्ग को जाने लगा और अपने पिता से बोला–'मैं आप दोनों की सेवा से महान् स्थान को प्राप्त हुआ हूँ। अब आप लोग भी शीघ्र ही मेरे पास आइयेगा।' तदनन्तर तपस्वी ने कहा–'राजन् ! मेरा एक ही पुत्र था, तुमने मुझे पुत्रहीन कर दिया। इस समय पुत्र के वियोग से मुझे जैसा कष्ट हो रहा है, ऐसा ही तुम्हें भी होगा। तुम भी पुत्रशोक से ही काल के गाल में जाओगे।' इस प्रकार शाप देकर वे करुणाजनक विलाप करते रहे। फिर वे दोनों अपने शरीरों को जलती आग में डालकर स्वर्ग चले गये। वे बूढ़े तपस्वी वैश्यजातीय थे तथा उनकी पत्नी शूद्रा थी, इसलिए मुझे ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगा और अपने पापकृत कार्य का वर्णन मैंने स्वयं किया था, इसलिए मैं नष्ट होने से बच गया, परन्तु उन्होंने शाप दिया था कि जिस प्रकार पुत्रशोक में हम प्राण छोड़ रहे हैं वैसी ही अवस्था में तुम्हारी मृत्यु होगी। श्रवणकुमार की यह कथा बताकर राजा दशरथ ने कौसल्या से कहा कि यमदूत आ गये, मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा है और अन्ततः अर्द्धरात्रि में उन्होंने प्राण त्याग दिये।

१४
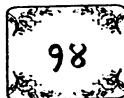
राजा दशरथ को दिवगंत हुआ जान कौसल्या आदि रानियों का विलाप; शव को तेल से भरे कड़ाह में सुलाना; दूतों का भरत को बुलाने जाना; भरत का अयोध्या को प्रस्थान तथा नगर में प्रवेश।

सबेरे ही बन्दीजन ने महाराज की स्तुति करने के लिए राजप्रासाद में प्रवेश किया। स्तुति होने लगी, परन्तु सूर्योदय तक राजा बाहर नहीं निकले। तब दशरथ के समीप रहने

वाली स्त्रियाँ शय्या के पास जाकर उन्हें जगाने लगीं। किन्तु फिर भी कोई हलचल न देखकर उन्हें राजा के प्राण निकल जाने की आशंका हुई। कौसल्या और सुमित्रा उस समय वहीं पर मरी हुई के समान सो रही थीं। सभी ने समझ लिया कि इनके सोये रहने के समय ही राजा के प्राण निकल गये। फिर वे आर्तनाद करने लगीं तथा उनके रोने की आवाज से कौसल्या और सुमित्रा की नींद टूट गयी। जब उन्होंने राजा को देखा तो 'हा नाथ!' कहकर रानियाँ शोक-संतप्त होकर रोने लगीं।

कौसल्या राजा के मस्तक को गोद में लेकर बोली—कैकेयी! क्रूर कैकेयी! ले, तेरी कामना पूरी हुई। ऐसे ही अनेक प्रकार से कैकेयी को प्रताड़ित किया।

रोते-बिलखते रात्रि आग गयी तथा रात्रि बीतने के बाद सभी राज्य का प्रबन्ध करने वाले ब्राह्मण लोग राजसदन में आये। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम, जाबालि आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण राजपुरोहित वसिष्ठ के सामने बैठकर अपना परामर्श देने लगे। दशरथ के किसी पुत्र के वहाँ न रहने के कारण राजाहीन राज्य की किस प्रकार की अवस्था होती है इसका सब वर्णन करने लगे और वसिष्ठ से कहा कि आप ही किसी इक्ष्वाकुवंशी राजकुमार को अथवा किसी योग्य पुरुष को राजपद दीजिये।

समस्त श्रेष्ठ ब्राह्मणों की बात सुनकर वसिष्ठ ने कहा कि राजा दशरथ ने भरत को राज्य दिया है। उनको बुलाने के लिए तीव्रगामी अश्वों (घोड़ों) पर दूत भेजे जायें। इसके अतिरिक्त हम क्या कर सकते हैं? इसके बाद सबकी सम्मति से तुरन्त ५ दूत भेज दिये गये। वसिष्ठ ने दूतों से कहा कि भरत से केवल इतना कहना कि पुरोहित तथा मंत्रियों ने आपको शीघ्र चलने के लिए कहा है, अयोध्या में आपसे अत्यन्त आवश्यक कार्य है। राम के वनवास और पिता की मृत्यु का समाचार मत देना।

दूतों के पहुँचने के पूर्व भरत ने एक अप्रिय स्वप्न देखा जो उनके पिता की दुरवस्था के सम्बन्ध में ही था। अपने मित्रों को अत्यन्त चिन्तित होकर भरत ने यह बात बतायी। जिस समय भरत अपने स्वप्न की बात मित्रों को बता रहे थे, उसी समय दूतों ने नगर में प्रवेश किया। वे राजा एवं राजकुमार से मिले तथा भरत के चरणों का स्पर्श किया और कहा कि पुरोहित जी तथा समस्त मंत्रियों ने आपसे शीघ्र अयोध्या चले आने के लिए कहा है। आवश्यक कार्य है। भरत ने अपने नाना से आज्ञा प्राप्त की तथा अनेक उपहार प्राप्त करके अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। राजगृह से निकल कर भरत पूर्व दिशा की ओर चले। सुदामा नदी पार की तथा शतद्रु नदी (सतलज) को पार करके ऐलधान नामक गाँव के पास की नदी को भी पार किया और अपर पर्वत नामक जनपद में गये। वहाँ शिला नाम की नदी बहती थी जो अपने भीतर पड़ी वस्तु को शिलास्वरूप बना देती थी। उसे पार करने के बाद आग्नेय कोण में स्थित शल्यकर्षण नामक देश में गये जहाँ शरीर से काँटे निकालने में सहायता करने वाली ओषधि होती थी। तदनन्तर शिलावहा नदी का दर्शन किया और पर्वतों

को लांघ कर चैत्ररथ नामक स्थान पर पहुँचे। उसके बाद पश्चिमवाहिनी सरस्वती तथा गंगा के संगम से होते हुए वीरमत्स्य देश के उत्तरवर्ती प्रदेश में प्रवेश करके भारुण्ड वन के भीतर गये और पर्वतों से घिरी कुलिंगा नदी को पारकर यमुना के तट पर पहुँच कर सेना को विश्राम कराया। विश्राम के पश्चात् भरत ने एक विशाल वन को पार किया और फिर अंशुधान ग्राम के पास गंगा में अधिक जल होने के कारण प्राग्वट नगर के पास से पार किया। उसके बाद कुटिकोष्टि को पार कर धर्मवर्धन नामक ग्राम में आये। यहाँ से तोरण ग्राम के दक्षिणार्ध में जम्बूप्रस्थ तथा वरूथ गये। इसके बाद वे उज्जिहाना नगर के पास पहुँचे। यहाँ से सेना को धीरे-धीरे आने की आज्ञा देकर भरत तीव्र गति से चल दिये। सर्वतीर्थ ग्राम से उत्तानिका नदी को पार करके हस्तिपृष्ठक ग्राम पहुँचे, फिर कुटिक नदी पार की तथा लोहित्य ग्राम पहुँच कर कपीवती नदी को पार किया। फिर एकसाल नगर के पास स्थाणुमती और विनत ग्राम के निकट गोमती नदी को पार कर कलिंग नगर के पास सालवन जा पहुँचे। रात्रि-विश्राम के बाद प्रातः उन्होंने अयोध्या पुरी का दर्शन किया। नगर की विचित्र अवस्था का अनुभव करके सारथी से उस बारे में बात करते हुए वैजयन्त द्वार से भरत ने नगर में प्रवेश किया।

भरत का कैकेयी के भवन में जाना, पिता के परलोकवास का समाचार पाकर दुःखी हो विलाप करना; श्री राम के वनगमन के वृत्तान्त से अवगत होना; भरत का कैकेयी को धिक्कारना और फिर कौसल्या के पास जाना; राजा दशरथ का अत्येष्टि संस्कार।

सर्वप्रथम भरत ने पिता के भवन में प्रवेश किया, परन्तु उन्हें वहाँ न देखकर अपनी माता कैकेयी के भवन में गये। माता ने बड़े प्रेम से स्वागत किया तथा अपने पिता, भाई इत्यादि का समाचार पूछने लगी। भरत ने मामा के घर का समाचार बताने के बाद पूछा कि पिता कहाँ हैं? कैकेयी ने अप्रिय समाचार को प्रिय-सा समझते हुए बताया कि वे अब नहीं हैं। भरत को महान् शोक हुआ। वे अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। उन्होंने पूछा—महाराज को ऐसा कौन-सा रोग हो गया था? मैं उनके अन्त्येष्टि संस्कार में न रहकर अभागा रहा। फिर भरत ने कहा कि श्रीराम को मेरे आने की सूचना दे दो। कैकेयी ने कहा कि 'तुम्हारे पिता ने "हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण" कहते हुए परलोक-यात्रा की थी। अन्तिम वचन इस प्रकार कहा कि जो लोग सीता के साथ पुनः लौटकर आये हुए राम व लक्ष्मण को देखेंगे, वे ही कृतार्थ होंगे।' भरत को विषाद छा गया और पूछा—माँ! श्रीराम सीता और लक्ष्मण के साथ कहाँ गये हैं? कैकेयी ने कहा कि राम वल्कल वस्त्र धारण कर सीता के साथ वन को गये तथा लक्ष्मण ने उनका अनुगमन किया। यह सुनकर उनके मन में शंका हुई कि राम ने ऐसा क्या अपराध किया, और माँ से पूछने लगे। तब कैकेयी ने कहा— जब मैंने सुना

कि राम का राज्याभिषेक होने जा रहा है तो मैंने तुम्हारे लिए पिता से तुम्हारे राज्य और राम के लिए वनवास माँग लिया। अब तुम राजपद स्वीकार करके राज्य करो।

माता की यह बात सुनकर भरत दुःख से संतप्त हो उठे और बोले कि हाय! तूने मुझे मार डाला। मुझे यहाँ राज्य लेकर क्या करना है! उन्होंने कैकेयी के प्रति महान् रोष प्रकट किया और कठोर वाणी में कहा कि दुष्टतापूर्वक बर्ताव करने वाली क्रूरहृदया कैकेयी! तू राज्य से भ्रष्ट हो जा। धर्म ने तेरा परित्याग कर दिया है। मुझे मरा हुआ समझकर जीवन भर पुत्र के लिए रोया कर। राज्य के लोभ में पड़कर क्रूरतापूर्ण कर्म करने वाली पतिघातिनि! तू माता के रूप में मेरी शत्रु है। तू मुझसे बात मत कर। पुत्र से बढ़कर कोई नहीं और तूने माता कौसल्या को पुत्र से वंचित कर दिया। इस अवसर पर भरत ने दृष्टान्त देकर कहा कि हल जोतते-जोतते अचेत दो बैलों को देखकर उनकी जननी सुरभि (कामधेनु) के आँसू गिर गये। वे आँसू इन्द्र के ऊपर गिरे तो उन्होंने कारण पूछा और जानने पर कहा कि पुत्र से बढ़कर कोई नहीं। कामधेनु के तो सहस्रों पुत्र हैं, फिर भी वह उनका कष्ट नहीं देख सकती, फिर कौसल्या माता का तो एक ही पुत्र है। तूने उसका विछोह कराया, तू इस लोक और परलोक में भी दुःख ही पायेगी। मैं तो यह राज्य लौटाकर भाई की पूजा करूंगा और मैं वही कर्म करूंगा जो यश को बढ़ाने वाला हो। श्रीराम को लौटाकर लाने के लिए मैं वन में प्रवेश करूंगा। मैं तेरे किये पाप का बोझ ढोता रहूँ, यह नहीं हो सकता। श्री राम जब अयोध्या की भूमि पर पदार्पण करेंगे, तभी मेरा कलंक दूर होगा और मैं कृतकृत्य होऊंगा। इतना कह कर भरत मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

चेतना आपने पर जब भरत उठे, उन्होंने कैकेयी की निन्दा करते हुए मन्त्रियों से कहा कि मैं राज्य नहीं चाहता और न कभी माता से इसके लिए बात की है। श्री राम के वनवास का मुझे ज्ञान नहीं था। भरत की आवाज सुनकर कौसल्या ने सुमित्रा से कहा कि मैं उसे देखना चाहती हूँ। उसी समय भरत भी माता कौसल्या के भवन की ओर चल दिये। भरत से मिलते ही वे फूट-फूट कर रोने लगीं तथा कहा कि पुत्र! तुम राज्य चाहते थे न? वह तुम्हें प्राप्त हो गया। परन्तु कैकेयी ने बड़े क्रूर कर्म के द्वारा वह पाया है। मेरे पुत्र को वनवासी बना दिया। तुम मुझे भी शीघ्र वहीं भेज दो जहाँ राम है। अब तुम राज्य करो। कौसल्या की बात सुनकर भरत को बहुत पीड़ा हुई तथा उन्होंने से हाथ जोड़कर कहा कि आर्ये! जो कुछ हुआ है, इसकी मुझे बिल्कुल जानकारी नहीं थी। मैं सर्वथा निरपराध हूँ। आप मुझे क्यों दोष दे रही हैं? श्रीराम को वन जाने का परामर्श जिसने दिया हो, वह अनेक प्रकार की हीनता और पाप से ग्रस्त हो। इस प्रकार के अनेकानेक शब्द भरत कहने लगे। कौसल्या को शपथ के द्वारा आश्वासन देते हुए भरत दुःख से व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। कौसल्या ने उस समय भरत से कहा—वत्स! तुम अनेकानेक शपथ खाकर जो मेरे प्राणों को पीड़ा दे रहे हो, उससे मेरा दुःख अधिक बढ़ता जा रहा है। सौभाग्य की बात है कि शुभ लक्षणों से

सम्पन्न तुम्हारा मन धर्म से विचलित नहीं हुआ है। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, इसलिए तुम्हें सत्पुरुषों के लोक प्राप्त होंगे। इतना कहकर भरत को गले से लगाकर वे फूट-फूट कर रोने लगीं।

शोक-संतप्त भरत से महर्षि वसिष्ठ ने कहा कि शोक छोड़ो, इससे कुछ नहीं होने वाला है। समयोचित कर्तव्य पर ध्यान दो। राजा दशरथ के शव को दाह-संस्कार के लिए ले चलने का उत्तम प्रबन्ध करो। भरत ने वसिष्ठ को प्रणाम किया तथा मन्त्रियों द्वारा सम्पूर्ण प्रेतकर्म का प्रबन्ध कराया। शव को उत्तम शय्या पर सुलाने के बाद भरत फिर विलाप करने लगे। वसिष्ठ ने कहा—महाबाहो! जो कुछ भी प्रेतकर्म करने हैं, उन्हें बिना शोक किये, शान्तचित्त होकर करो। दाहकर्म के पश्चात् भरत के साथ रानियों, मंत्रियों और पुरोहितों ने भी सरयू के तट पर राजा के लिए जलाञ्जलि दी। फिर नगर में आये और दस दिनों तक भूमि पर शयन किया। दशाह व्यतीत होने पर ग्यारहवें दिन आत्मशुद्धि के लिए स्नान और एकादशाह श्राद्ध का अनुष्ठान किया। फिर बारहवें दिन मासिक और सपिण्डीकरण श्राद्ध किया। तदनन्तर तेरहवें दिन भरत पिता के चितास्थान पर अस्थि-संचय के लिए गये और विलाप करने लगे—श्रीराम वन में हैं, आप ने मुझे सूने में छोड़ दिया। तदनन्तर सर्वज्ञ वसिष्ठ जी ने भरत को उठाकर कहा कि शेष कार्य में तुम क्यों विलम्ब कर रहे हो? भूख-प्यास, शोक-मोह, जरा-मृत्यु, ये तीन द्वन्द्व सभी प्राणियों में समान रूप से उपलब्ध हैं। इन्हें रोकना असम्भव है। ऐसी स्थिति में शोकाकुल नहीं होना चाहिये। सुमन्त्र ने शत्रुघ्न को उठाकर उनका चित्त शान्त किया तथा समस्त प्राणियों के जन्म और मरण की अनिवार्यता का उपदेश सुनाया तथा अन्यान्य क्रियाएं शीघ्र करने के लिए प्रेरित किया।

शत्रुघ्न को रोष, उनका कुब्जा को घसीटना; भरत से राज्य-ग्रहण का प्रस्ताव, भरत का श्रीराम को ही राज्य का अधिकारी बताकर श्रीराम को लौटाने की व्यवस्था करना।

तेरहवें दिन का कार्य पूर्ण करके श्रीराम के पास जाने का विचार करते हुए शत्रुघ्न ने भरत से कहा कि पिता ने ऐसा क्यों किया? लक्ष्मण नामी शूरवीर हैं, उन्होंने नारी के वश में हुए राजा को निरुद्ध कर लेना चाहिये था। जब वे इस प्रकार बोल रहे थे, उसी समय कुब्जा समस्त आभूषणों से विभूषित होकर राजभवन के पूर्व-द्वार पर आ खड़ी हुई। उसे देखते ही द्वारपाल ने उसे पकड़ कर शत्रुघ्न के हाथ में देते हुए कहा कि जिसके कारण राम का वनवास हुआ, वह यही पापिनी है। शत्रुघ्न रोष में भरकर कुब्जा को धरती पर घसीटने लगे। जिस समय मन्थरा घसीटी जा रही थी, कैकेयी उसे बचाने आयी। शत्रुघ्न ने रोषपूर्ण शब्दों में ऐसी बड़ी कठोर वाणी कैकेयी को कही कि वह भय से थर्रा गयी तथा पुत्र की शरण में आयी। भरत ने शत्रुघ्न से कहा कि इन्हें क्षमा करो। स्त्रियाँ सभी के लिए अवध्या हैं।

श्री राम को यदि यह पता चलेगा कि हमने कैकेयी और मन्थरा को मारा है तो वे हमसे बोलना छोड़ देंगे।

चौदहवें दिन समस्त राजकर्मचारी भरत से बोले कि इस राज्य का कोई स्वामी नहीं है, इसलिए अब आप राजा बनें। भरत ने अभिषेक के लिए रखी हुई कलश आदि सभी सामग्री की प्रदक्षिणा की और कहा कि हमारे कुल में सदा ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता आया है, इसलिए आप सेना तैयार करिये, मैं भाई को वन से लौटा लाऊंगा। उनके बदले मैं ही चौदह वर्ष वन में निवास करूंगा। भरत की यह बात सुनकर सभी लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे मार्ग आदि ठीक करने लगे।

अयोध्या से गंगा-तट तक सुरम्य शिविर और कूप आदि के निर्माण में कर्मकर जुट गये तथा सुखद राजमार्ग का निर्माण किया जाने लगा। अनेक स्थानों पर ठहरने के लिए छावनियाँ बनायी गयीं तथा जल व खाद्य फल-फूल इत्यादि का प्रबन्ध किया गया।

प्रातः होने पर सैकड़ों बाजे बजने लगे। भरत को इससे अधिक शोक हुआ। उन्होंने कहा–मैं राजा नहीं हूँ, और बाजों को बजाना बन्द करा दिया। उसी समय महर्षि वसिष्ठ ने दशरथ के सभा-भवन में प्रवेश किया और आसन ग्रहण करने के बाद दूतों से ब्राह्मणों, क्षत्रपों, योद्धाओं, अमात्यों, सेनापतियों, राजकुमार भरत व शत्रुघ्न तथा अमात्य युधाजित व सुमंत्र को शीघ्र बुलाने के लिए आज्ञा दी। भरत जब आये तो उनका राजा दशरथ की ही भाँति अभिनन्दन किया गया।

श्री वसिष्ठ जी ने मधुर वचन से भरत को कहा कि राजा दशरथ यह पृथ्वी तुम्हें देकर स्वर्गवासी हुए हैं। उनकी आज्ञा मानकर अपना अभिषेक करा लो। भरत ने मन ही मन श्रीराम की शरण ली तथा पुरोहित जी को उपालम्भ देने लगे कि गुरुदेव! श्रीराम के राज्य का मेरे जैसा कौन पुरुष अपहरण कर सकता है? यह राज्य और मैं दोनों ही श्री राम के हैं, यह समझ कर आपको धर्मसंगत बात कहनी चाहिये। मैं श्रीराम का ही अनुसरण करूंगा। वे तीनों लोकों के राजा होने योग्य हैं। यदि मैं श्रीराम को वन से नहीं लौटा सकूंगा तो स्वयं भी लक्ष्मण की भाँति वहीं निवास करूंगा। मार्ग-शोधन में कुशल कार्यकर्ताओं को भेज दिया गया है, अतः श्रीराम जी के पास चलना ही अच्छा जान पड़ता है। इसके बाद उन्होंने सुमंत्र से कहा कि आप सबको वन चलने की सूचना दीजिये और सेना को शीघ्र बुलाइये। यह सुनकर सभी सभासद, प्रजाजन तथा सेनापतिगण प्रसन्न हुए। इसके बाद चलने की तैयारी होने लगी।

भरत की वन-यात्रा; शृंगवेरपुर में निवास; गुह और भरत की बातचीत; गंगा-पार करके भरद्वाज-आश्रम जाना।

प्रातःकाल उठकर भरत ने रथ पर आरूढ़ हो, श्रीराम के दर्शन की इच्छा से प्रस्थान किया। उनके आगे सभी मंत्री और पुरोहित रथों द्वारा यात्रा कर रहे थे। कैकेयी, सुमित्रा और कौसल्या देवी ने भी रथ के द्वारा प्रस्थान किया। समस्त सेना, राजकोष, अभिषेक की सामग्री, इत्यादि साथ में थी। इस प्रकार मार्गक्रमण कर वे सब लोग शृंगवेरपुर में गंगा जी के तट पर पहुँचे। उसी स्थान पर निषादराज गुह उस प्रदेश की रक्षा करते हुए रहता था। भरत के साथ सभी सेना गंगातट पर ठहर गयी।

निषादराज गुह ने विशाल सेना को देखकर अपने भाई-बन्धुओं से कहा कि यह दुर्बुद्धि भरत की सेना है। वह हम लोगों को तथा श्रीराम को मार डालेगा। राजलक्ष्मी को अकेला ही हड़प जाना चाहता है। श्रीराम मेरे स्वामी और सखा हैं, अतः अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर गंगा-तट पर उपस्थित रहो। फिर कहा कि यदि भरत का भाव श्री राम के प्रति संतोषजनक होगा, तभी उनकी सेना कुशलपूर्वक गंगा पार कर पायेगी। यह कहकर निषादराज भेंट-सामग्री लेकर भरत के पास गया। उसे आते देख कर सुमंत्र ने भरत से कहा कि निषाद-राज श्री राम का सखा है, इसे पता होगा कि श्रीराम कहाँ हैं। इसको मिलने का अवसर दें। भरत ने तुरन्त आज्ञा दी। गुह ने सब सामग्री भरत को भेंट में दी और समस्त सेना के स्वागत की इच्छा प्रकट की। भरत ने कहा—भय्या! तुम मेरे बड़े भाई श्रीराम के सखा हो। मेरी इतनी बड़ी सेना का सत्कार करना चाहते हो। तुम्हारी श्रद्धा से ही सब लोगों का सत्कार हो गया। फिर गुह से पूछा कि भरद्वाज मुनि का आश्रम किस ओर है? गुह ने कहा—मार्गदर्शन तो हो जायेगा, परन्तु एक बात बताइये कि आप श्रीराम के प्रति कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं जा रहे हैं? इसको सुनकर भरत ने मधुर वाणी में कहा—निषादराज! ऐसा समय कभी न आये। श्रीराम मेरे बड़े भाई हैं। मैं उन्हें पिता के समान मानता हूँ। मैं उन्हें लौटा लाने के लिए जा रहा हूँ। गुह प्रसन्न हुआ और उसने भरत से कहा कि आपके समान धर्मात्मा मुझे इस भूमण्डल में कोई नहीं दिखाई देता। गुह के बर्ताव से भरत को बड़ा संतोष हुआ और सेना को विश्राम की आज्ञा देकर शत्रुघ्न के साथ शयन के लिए गये। उस समय उन्हें फिर महान् शोक व्याप्त हो गया। उस अवसर पर गुह ने भरत को पुनः आश्वासन दिया।

वनचारी गुह ने भरत से लक्ष्मण के सद्भाव का वर्णन किया : वे अपने भाई की रक्षा के लिए धनुष-वाण धारण करके अधिक समय तक जागते रहे तो मैंने श्रीराम की रक्षा का भरोसा देकर उन्हें शयन के लिए कहा, परन्तु लक्ष्मण ने कहा—निषादराज! जब श्रीराम देवी सीता के साथ भूमि पर शयन कर रहे हैं, तब मैं उत्तम शय्या पर कैसे सो सकता हूँ? राम के वियोग में राजा दशरथ भी अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकेंगे। इस प्रकार विलाप करते हुए लक्ष्मण ने समस्त रात्रि बितायी। फिर श्री राम व लक्ष्मण प्रातः होने पर केशों को वट के दूध से जटा रूप देकर गंगा पार की ओर चल दिये।

गुह से यह सुनने के बाद कि राम ने जटा धारण की है, भरत बहुत चिन्तामग्न हो गये और उन्हें चिन्ता हुई कि अब राम शायद ही लौटें। अत्यन्त व्यथित होकर वे मूर्च्छित हो गये। शत्रुघ्न भी रोने लगे। सभी माताएं भी आ गयीं। कौसल्या ने भरत को गोद में ले लिया। सब अनेक प्रकार की सान्त्वनायुक्त बाते कहने लगे। दो घड़ी बाद जब भरत का चित्त स्वस्थ हुआ तो उन्होंने कहा कि मैंने कोई अप्रिय बात नहीं सुनी है। फिर गुह से पूछा कि मेरे भाई कहाँ ठहरे थे, कैसा बिछौना था? निषादराज ने सब बातें बतायीं और वे स्थान बताये जहाँ राम-सीता ने शयन किया था।

भरत ने उस स्थान का निरीक्षण किया और कहने लगे कि कैसे राम-सीता ने इस स्थान पर शयन किया होगा! हाय, मैं मारा गया! मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं बड़ा क्रूर हूँ जिसके कारण राम-सीता को इस स्थान पर सोना पड़ा। आज से मैं पृथ्वी पर अथवा तिनकों पर ही सोऊंगा। फल-मूल का ही भोजन करूंगा और सदा वल्कल और जटा धारण करूंगा। श्रीराम लक्ष्मण को लेकर अयोध्या का पालन करें और मैं वन में रहूंगा।

प्रातः उठने पर भरत ने शत्रुघ्न से कहा कि निषादराज गुह को बुला लाओ, वह हमें गंगा पार करायेगा। गुह समय से आ गया तथा भरत के कहने पर उनके गंगा-पार जाने का सब प्रबन्ध किया। नाविकों की सहायता से समस्त सेना सहित भरत पार उतर गये तथा प्रयागवन की ओर प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर भरत ने सेना को विश्राम की आज्ञा दी तथा स्वयं सभी प्रमुख सदस्यों के साथ ऋषिश्रेष्ठ भरद्वाज के दर्शन के लिए गये।
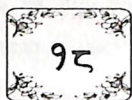
भरत और भरद्वाज मुनि की भेंट, भरत का दिव्य सत्कार; चित्रकूट-यात्रा का वर्णन; श्रीराम का सीता को चित्रकूट की शोभा दिखाना।

भरत महर्षि वसिष्ठ के साथ मुनिवर भरद्वाज के पास गये। वसिष्ठ को देखकर भरद्वाज ने उनका स्वागत किया तथा वे स्वयं ही भरत को पहिचान गये। उन्होंने शंका प्रकट करते हुए कहा कि तुम तो राज्य पा चुके हो, फिर तुम्हें यहाँ आने की आवश्यकता क्यों पड़ी? तुम पर विश्वास नहीं जमता है। मुनिश्रेष्ठ की बात सुनकर भरत बहुत दुःखी हुए तथा कहा कि श्रीराम के वनवास में मेरा कोई अपराध नहीं रहा है। आप ऐसी कठोर बात न कहें। मैं श्रीराम को अयोध्या लौटा लाने और उनके चरणों की वन्दना करने के लिए जा रहा हूँ। आप यह बतायें कि राम कहाँ हैं। भरद्वाज ने कहा कि मैं तुम्हारे भाव को जानता हूँ, परन्तु मैंने तुम्हारी परीक्षा लेने तथा तुम्हारा संकल्प अधिक दृढ़ करने के लिए यह बात कही। राम चित्रकूट में रहते हैं।

मुनिवर भरद्वाज ने भरत और उनकी सेना के अतिथि-सत्कार की इच्छा प्रकट की तथा उनका अनुरोध भरत को मानना पड़ा। भरद्वाज ने विश्वकर्मा त्वष्टा देवता का आह्वान कर आतिथ्य-सत्कार के लिए आवश्यक प्रबन्ध करने की बात कही। साथ ही उन्होंने इसी निमित्त इन्द्र सहित यम, वरुण और कुबेर देवताओं का भी आवाहन किया। सभी नदियों का आवाहन किया कि वे यहाँ पधारें, कुछ नदियाँ उत्तम पेय प्रस्तुत करें तथा अन्य नदियाँ मीठे व शीतल जल तैयार करें। फिर उन्होंने विश्वावसु, हाहा, हूहू आदि देव-गन्धर्वों के साथ समस्त अप्सराओं का आवाहन किया। वृक्षों से तुरन्त चुने गये नाना प्रकार के पुष्प, मधु और फल प्रस्तुत करने को कहा। इस प्रकार आवाहन करके मुनि पूर्वाभिमुख हो हाथ जोड़े मन ही मन ध्यान करने लगे। उसी समय सभी देव-देवता आ गये। प्रिय एवं सुखदायिनी वायु चलने लगी, सुगन्धित पुष्पों की वर्षा होने लगी, अप्सराओं का समुदाय नृत्य करने लगा। चारों ओर पाँच योजन तक भूमि समतल हो गयी। उस पर कोमल घास छा गयी तथा सुन्दर वृक्ष सुशोभित हो गये। सुन्दर भवन बन गये। अनन्त प्रकार की सुख-सामग्री प्रस्तुत हो गयी। सभी सैनिक पूर्णतः मस्त हो गये तथा अयोध्या व चित्रकूट भी जाने की इच्छा समाप्त हो गयी। रात्रि बीतने पर वे सभी साधन जैसे आये थे, उसी प्रकार वापस लौट गये।

रात्रि बीतने पर भरत ने महर्षि भरद्वाज से आगे जाने की आज्ञा माँगी। भरद्वाज के पास प्रणाम करने और दर्शनार्थ आयी भरत की माताओं का मुनिवर ने परिचय पूछा। भरत ने कौसल्या और सुमित्रा का यथोचित परिचय देकर अपनी माँ का परिचय बड़े रोष के साथ दिया। उनकी बात सुनकर मुनिवर ने कहा–भरत! तुम कैकेयी के प्रति दोष-दृष्टि न करो। श्री राम का यह वनवास भविष्य में बड़ा ही सुखद सिद्ध होगा। तदनन्तर भरत ने मुनि के बताये मार्ग से चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। विशाल सेना के साथ भरत यात्रा कर रहे थे। अश्वों के समूहों तथा महाबली हाथियों से भरी और दूर तक फैली हुई वह सेना उस समय दृष्टि में समा ही नहीं पाती थी। दूर तक का मार्ग चल लेने पर जब भरत के वाहन बहुत थक गये, तब भरत ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी से कहा–ब्रह्मन् ! मैंने जैसा सुन रखा था और जैसा इस देश का स्वरूप दिखाई देता है, इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि भरद्वाज जी ने जहाँ पहुँचने का आदेश दिया था उस देश में हम लोग आ पहुँचे हैं। जान पड़ता है यही चित्रकूट पर्वत है तथा वह मन्दाकिनी नदी बह रही है। यह देश मुझे बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता है। तपस्वी जनों का यह निवास-स्थान वास्तव में स्वर्गीय पथ है। फिर भरत ने अपने सैनिकों से कहा कि वे यथोचित रूप से आगे बढ़ें और वन में सब ओर खोजें जिससे श्रीराम और लक्ष्मण का पता लग जाय।

आगे जाने पर भरत को कुछ दूर पर धुआँ उठता दिखाई दिया। अतः उन्होंने अनुमान लगाया कि श्रीराम और लक्ष्मण यहाँ अवश्य होंगे। यह समझकर भरत ने सैनिकों को वहीं ठहरने का आदेश दिया तथा सुमन्त्र और धृति के साथ स्वयं ही खोजने का निश्चय किया।

जब भरत श्रीराम के आश्रम के निकट पहुँच रहे थे, उस समय श्रीराम सीताजी को चित्रकूट का भ्रमण करा रहे थे। उस समय उन्होंने कहा–प्रिये! इस वनवास से मुझे दो लाभ मिले, प्रथम–पिता की आज्ञा का पालन, और दूसरा– भरत का प्रिय हुआ। सीते! उत्तम नियमों का पालन करते हुए यह चौदह वर्ष का समय मैं सानन्द व्यतीत कर लूंगा तो मुझे जो सुख प्राप्त होगा वह कुल-धर्म को बढ़ाने वाला होगा।
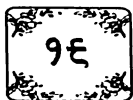
श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण का शाल-वृक्ष पर चढ़कर भरत की सेना देखना और रोषपूर्ण उद्गार प्रकट करना; श्रीराम का लक्ष्मण के रोष को शान्त करना; भरत का शत्रुघ्न आदि के साथ श्रीराम के आश्रम पर जाना तथा मिलना।

सीता जी को मन्दाकिनी का दर्शन कराकर श्रीराम वहीं बैठ गये और फल-मूल खाने लगे। उसी समय भरत की सेना के चलने से उठने वाली धूल और कोलाहल प्रकट होने लगे। वे उस समय लक्ष्मण से बोले–लक्ष्मण! पता तो लगाओ कि इस विशाल वन में हाथियों के झुंड, भैंसे और मृग सभी दिशाओं में क्यों भाग रहे हैं। लक्ष्मण एक वृक्ष पर चढ़कर देखने लगे तथा अश्वों और रथों से भरी एवं ध्वजाओं से विभूषित उस सेना की सूचना राम को दी तथा कहा कि आप आग बुझा दें और देवी सीता गुफा में जा बैठें। राम ने पूछा–यह किसकी सेना है ? तो लक्ष्मण ने क्रोध में भरकर कहा कि यह भरत की सेना है और वह हमें मारने आया है। उन्होंने रोष प्रकट करते हुए कहा कि आज हम भरत को मार कर रहेंगे।

लक्ष्मण भरत के प्रति क्रोधवश अपना विवेक खो बैठे थे। उस अवस्था में श्रीराम ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और इस प्रकार कहा– लक्ष्मण! पिता के सत्य की रक्षा के लिए प्रतिज्ञा करके यदि मैं युद्ध में भरत को मारकर उसका राज्य छीन लूँ तो संसार में मेरी कितनी निन्दा होगी! फिर उस कलंकित राज्य को लेकर मैं क्या करूंगा? मैं भाइयों के संग्रह और सुख के लिए ही राज्य की भी इच्छा करता हूँ। भरत बड़ा भ्रातृभक्त है। वह मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय है। वह कुलधर्म का विचार करके हम लोगों से मिलने आया है। भरत का हम लोगों से मिलने के लिए आना सर्वथा समयोचित है। भरत ने तुम्हारे प्रति पहले कब कौन-सा अप्रिय बर्ताव किया है जिससे आज तुम्हें उससे ऐसी शंका हो रही है? भरत के आने पर तुम उससे कोई कठोर या अप्रिय वचन न बोलना। यदि तुमने उससे कोई प्रतिकूल बात कही तो मैं उसे अपने प्रति ही कही हुई समझूंगा। लक्ष्मण! कितनी ही बड़ी आपत्ति क्यों न आ जाय, पुत्र अपने पिता को कैसे मार सकता है? अथवा भाई अपने प्रिय भाई की हत्या कैसे कर सकता है? यदि तुम राज्य के लिए ऐसी कठोर बात कहते हो, तो मैं भरत से कह दूंगा कि यह राज्य लक्ष्मण को दे दो। वह 'बहुत अच्छा' कहकर अवश्य मेरी बात मान लेगा।

यह सुनकर लक्ष्मण लाज़ से गड़ गये। उधर भरत ने सेना को आज्ञा दी कि यहाँ किसी को हम लोगों के द्वारा बाधा नहीं पहुँचनी चाहिये। उनका आदेश पाकर सैनिक पर्वत के चारों ओर नीचे ही ठहर गये।

भरत ने अपने साथ आये निषादों को वन में राम का आश्रम खोजने की आज्ञा दी तथा स्वयं भी मन्त्रियों, पुरवासियों, गुरुजनों के साथ पैदल ही राम के आश्रम को खोजने लगे। श्रीराम से मिलने की उनकी उत्कण्ठा अपार थी। उसी समय वे शाल वृक्ष पर चढ़ गये तथा श्रीराम के आश्रम पर सुलगती हुई आग का ऊपर उठता हुआ धुआँ देखा तो उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई और कहा कि यहीं श्रीराम हैं। सब को वहीं ठहरा कर वे गुह के साथ श्रीराम के आश्रम की ओर चल दिये।

भरत अपने मन में दुःख का भाव लेकर आश्रम की ओर बढ़ रहे थे। उन्हें लग रहा था कि वन का कष्ट श्रीराम को मेरे ही कारण है। आश्रम के आस-पास का दृश्यावलोकन करते हुए भरत ने कुटिया में बैठे श्रीराम को देखा जो सिर पर जटाजूट धारण किये हुए थे। उनके साथ ही वेदी पर सीताजी तथा लक्ष्मण भी बैठे थे। श्रीराम को देखकर भरत आर्तभाव से विलाप करने लगे। श्रीराम के चरणों तक पहुँचने के पहले ही वे पृथ्वी पर गिर पड़े तथा दीन वाणी में 'आर्य!' कहकर पुकारा। शत्रुघ्न ने भी रोते-रोते श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया। श्रीराम ने दोनों को छाती से लगा लिया। इसके पश्चात् श्रीराम सुमन्त्र तथा गुह से मिले।

२०

श्रीराम का कुशल-प्रश्न के बहाने भरत को राजनीति का उपदेश; भरत से वन में आगमन का प्रयोजन पूछना; भरत का श्री राम से राज्य ग्रहण करने के लिए कहना और पिता की मृत्यु का समाचार बताना।

श्रीराम भरत से कहने लगे कि पिताजी कहाँ थे जो तुम इस वन में आये हो? भाई! महाराज जीवित तो हैं न? कहीं रोते-रोते वे सहसा परलोकवासी हो गये हों, इसलिए तुम्हें आना पड़ा हो! फिर श्रीराम सभी माताओं, गुरुजनों का हाल-चाल पूछने लगे। राज्य कैसे करना चाहिये, इस विषय पर बहुत-सी बातें बताने लगे। श्रीराम ने भरत से कहा–तात! क्या तुमने शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन की बात समझ लेने वाले सुयोग्य व्यक्तियों को ही मंत्री बनाया है? अच्छी मन्त्रणा ही राजाओं की विजय का मूल कारण है। गुप्त मन्त्रणा दो से चार कानों तक ही गुप्त रहती है, छः कानों में जाते ही फूट जाती है। रघुनन्दन! जिसका साधन बहुत छोटा और फल बहुत बड़ा हो, ऐसे कार्य का निश्चय करने के पश्चात् तुम उसे शीघ्र प्रारम्भ कर देते हो न? जो घूस न लेते हों, तथा

बाहर-भीतर से पवित्र एवं श्रेष्ठ हों, ऐसे अमात्यों को ही तुम उत्तम कार्यों में नियुक्त करते हो न? कैकेयीकुमार! तुम्हारे राज्य की प्रजा कठोर दण्ड और अधिक कर लेने के कारण अत्यन्त उद्विग्न होकर तिरस्कार तो नहीं करती? जो साम-दाम आदि उपायों के प्रयोग में कुशल, राजनीतिशास्त्र का ज्ञाता, विश्वासी भृत्यों को फोड़ने में लगा हुआ, शूर तथा राजा के राज्य को हड़प लेने की इच्छा रखने वाला है, ऐसे पुरुष को जो राजा नहीं मार डालता, वह स्वयं मारा जाता है। भरत! तुमने जिसे राजदूत के पद पर नियुक्त किया है, वह पुरुष अपने ही देश का निवासी, विद्वान्, कुशल, प्रतिभाशाली और जैसा कहा जाय वैसी ही बात दूसरे के सामने कहने वाला तथा सदसद्विवेकयुक्त है न? क्या तुम शत्रुपक्ष के अठारह (मंत्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तःपुराध्यक्ष, कारागाराध्यक्ष, धनाध्यक्ष, राजा की आज्ञा से सेवकों को काम बताने वाला, वादी-प्रतिवादी से विवाद की पूछताछ करने वाला, अधिवक्ता (वकील), न्यायाधीश, व्यवहार-निर्णेता सभ्य, सेनानायक, मुख्य प्रबन्धक, नगराध्यक्ष, राष्ट्र-सीमापाल तथा वनरक्षक) और अपने पक्ष के पंद्रह (उपर्युक्त अठारह में से आदि के तीन को छोड़कर अन्य सभी) की तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरों द्वारा देख-भाल या जाँच-पड़ताल करते रहते हो? तात! कृषि और गोरक्षा से आजीविका चलाने वाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीतिपात्र हैं न? क्योंकि कृषि और व्यापार आदि में संलग्न रहने पर ही यह लोक सुखी एवं उन्नतिशील होता है। रघुनन्दन! क्या तुम्हारी आय अधिक और व्यय बहुत कम है? तुम्हारे कोष (खजाने) का धन अपात्रों के हाथ में तो नहीं चला जाता? रघुनन्दन! निरपराध होने पर भी जिन्हें मिथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है, उन मनुष्यों की आँखों से जो आँसू गिरते हैं वे पक्षपातपूर्ण शासन करने वाले राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं। तुम अर्थ के द्वारा धर्म को अथवा धर्म के द्वारा अर्थ को हानि तो नहीं पहुँचाते? अथवा आसक्ति और लोभ रूप काम के द्वारा धर्म और अर्थ दोनों में बाधा तो नहीं आने देते? रघुनन्दन! मैंने जो कुछ कहा, तुम्हारी बुद्धि का भी ऐसा ही निश्चय है न? क्योंकि यह विचार आयु और यश को बढ़ाने वाला तथा धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि करने वाला है। रघुनन्दन! तुम स्वादिष्ट अन्न अकेले ही तो नहीं खा जाते? उसकी आशा रखने वाले मित्रों को भी देते हो न? इस प्रकार धर्म के अनुसार दण्ड धारण करने वाला विद्वान् राजा प्रजाओं का पालन करके समूची पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लेता है तथा देहत्याग के बाद स्वर्गलोक में जाता है।

सम्पूर्ण राज्य-पद्धति का वर्णन करने के बाद श्रीराम ने भरत से पूछा कि तुम राज्य छोड़कर यहाँ आये हो, इसका क्या कारण है? भरत ने पिता के स्वर्गलोकवासी होने की जानकारी दी तथा प्रार्थना की कि आप राज्य ग्रहण करने के लिए अपना अभिषेक कराइये। सभी प्रजा व विधवा माताएं यहाँ आयी हैं। श्रीराम ने कहा कि भाई! तुम्हीं बताओ, मेरे जैसा पुरुष राज्य के लिए पिताश्री की आज्ञा का उल्लंघनरूप पाप कैसे कर सकता है? मैं तुम्हारे

अन्दर थोड़ा-सा भी दोष नहीं देखता। पिता मुझे १४ वर्ष का वनवास तथा तुम्हें राज्य देकर स्वर्गवासी हो गये हैं, इसलिए उनकी ही आज्ञा माननी चाहिये।

श्रीराम की बात सुनकर भरत ने कहा–भैया! मैं नियमानुसार राज्य का अधिकारी नहीं, मुझे दिया गया राजधर्म का उपदेश किस काम आयेगा? आप मेरे साथ अयोध्या चलें तथा अभिषेक करायें। इसके बाद भरत ने कहा कि आप पिता को जलाञ्जलि दीजिये। आपका ही स्मरण करते हुए वे स्वर्ग को चले गये।

भरत की करुणाजनक बात सुनकर श्रीराम दुःख के कारण अचेत हो गये तथा वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े। सीता सहित तीनों भाई रोने लगे। चेतना आने के बाद पिता को स्मरण करके श्रीराम विलाप करने लगे। फिर वे भाइयों के साथ मन्दाकिनी के तट पर गये तथा राजा दशरथ के लिए जल दिया, फिर पिण्डदान किया। उसके बाद चित्रकूट पर्वत पर चढ़कर श्रीराम भरत व लक्ष्मण को पकड़ कर रोने लगे। सीता सहित सभी भाइयों के रुदन के शब्द से सिंहों के दहाड़ने के समान ध्वनि होने लगी। सैनिक आशंकित हो गये, परन्तु श्रीराम तथा अन्य भाइयों को देखकर सभी उस ओर दौड़ पड़े। श्रीराम वेदी पर विराजमान थे। सभी प्रजा रुदन करने लगी। राम ने सभी को हृदय से लगाया।

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के द्वारा माताओं की चरण-वन्दना, वसिष्ठ जी को प्रणाम; भरत का श्रीराम को राज्य ग्रहण करने के लिए कहना; श्रीराम का राज्य ग्रहण न करके वन में रहने का दृढ़ निश्चय बताना; भरत को चरण-पादुका देकर विदा करना।

महर्षि वसिष्ठ जी सभी रानियों को आगे करके राम को देखने के लिए आश्रम की ओर चले। माताओं को देखते ही श्री राम उठकर खड़े हो गये तथा चरण-वन्दन किया। सीता ने भी सासुओं के चरणों में प्रणाम किया। श्रीराम वसिष्ठ जी को प्रणाम करके उन्हीं के साथ पृथ्वी पर बैठ गये। उस समय लोगों के अन्दर यह कौतूहल-सा जाग उठा कि देखें भरत जी श्री राम से क्या चाहते हैं!

उस दिन पिता की मृत्यु का ही शोक छाया रहा तथा रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातःकाल स्नान इत्यादि के बाद श्री भरत ने राम जी से कहा–भय्या! पिताजी ने वरदान देकर मेरी माता को संतुष्ट किया और माता ने मुझे राज्य दिया। अब मैं इस राज्य को आपकी सेवा में अर्पित करता हूँ। ऐसी अनेक प्रकार की युक्तियों के द्वारा वे आग्रह करने लगे कि आपको ही राज्य ग्रहण करना चाहिये। भरत को इस प्रकार विलाप करते देखकर श्रीराम ने सान्त्वना देते हुए कहा–भाई! यह जीव ईश्वर के समान स्वतंत्र नहीं है, अतः कोई यहाँ अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता। काल इस पुरुष को इधर-उधर खींचता रहता है। संग्रह

का अन्त विनाश, लौकिक उन्नतियों का अन्त पतन, संयोग का अन्त वियोग, जीवन का अन्त मरण है। मृत्यु साथ हीं चलती है, साथ ही बैठती है और बहुत बड़े मार्ग की यात्रा में भी साथ ही जाकर मनुष्य के साथ ही लौटती है। झुर्रियाँ पड़ गयीं, बाल सफेद हो गये, जरावस्था से जीर्ण मनुष्य कौन से उपाय करके मृत्यु से बच सकता है? बहते हुए दो काठ कभी एक-दूसरे से मिलते हैं, कभी अलग होते हैं; उसी प्रकार स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और धन भी मिलकर बिछुड़ जाते हैं क्योंकि वियोग अवश्यम्भावी है। जैसे नदियों का प्रवाह पीछे नहीं लौटता, वैसे ही ढलती अवस्था भी फिर नहीं लौटती। यह सोचकर मनुष्य मन को आत्मा के कल्याण के साधनभूत धर्म में लगाये, क्योंकि सभी लोग अपना कल्याण चाहते हैं। अतः भरत! तुम स्वस्थचित्त हो जाओ। तुम्हें शोक नहीं होना चाहिये। अयोध्यापुरी में निवास करो, क्योंकि पिताजी ने यही आदेश तुम्हारे लिए दिया था। मैं भी पिता की आज्ञा का पालन करूंगा।

श्रीराम की बात सुनकर भरत ने कहा—रघुवीर! इस जगत् में जैसे आप हैं वैसा दूसरा कौन हो सकता है? लोक में एक किंवदन्ती है कि अन्त काल में प्राणी मोहित हो जाते हैं। बुद्धि नष्ट हो जाती है। राजा दशरथ ने ऐसा कठोर कर्म करके यह किंवदन्ती सत्य सिद्ध की है। उन्होंने धर्म का उल्लंघन किया है। आप इसे पलट दें। जो पिता की भूल को ठीक करती है, वह संतान उत्तम है। अतः आप पिता की योग्य संतान ही बने रहें। अनुचित कर्म का समर्थन न करें। आप कैकेयी की, मेरी, पिताश्री की, सुहृदगण की, पुरवासियों की, राष्ट्र की एवं प्रजा की रक्षा के लिए मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लें। आप मेरी माता के कलंक को पोंछ कर पिताश्री को भी निन्दा से बचाइये। मैं आपके चरणों में माथा टेककर याचना करता हूँ। अथवा, यदि आप मेरी प्रार्थना को ठुकरा कर यहाँ से वन को ही जायेंगे तो मैं भी आपके साथ जाऊंगा।

श्रीराम ने भरत को उत्तर दिया कि जो कुछ तुमने कहा, वह सर्वथा तुम्हारे योग्य है। पिताश्री का जब तुम्हारी माता के साथ विवाह हुआ था, तभी तुम्हारे नाना ने कैकेयी के पुत्र को राज्य देने की शर्त रखी थी। उसके बाद देवासुर-संग्राम में तुम्हारी माता ने महाराज की बड़ी सेवा की। उससे संतुष्ट होकर राजा ने उन्हें वर देने का वचन दिया। उसी वचन से प्रेरित होकर राजा ने दो वरदान दिये। पिता की आज्ञा मानकर तुम उन्हें सत्यवादी बनाओ। कैकेयी के ऋण से उन्हें मुक्त करो और नरक में गिरने से बचाओ तथा माता का भी आनन्द बढ़ाओ। तुम शीघ्र अयोध्या लौट जाओ और प्रजा को सुख दो। मैं भी सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में प्रवेश करूंगा।

जब श्रीराम भरत को समझा रहे थे, उसी समय ब्राह्मण-शिरोमणि जाबालि ने श्रीराम से धर्म-विरुद्ध बातें कहीं। वे बोले कि आप बुद्धिमान् होकर निरर्थक विचार मन में ला रहे हैं। संसार में कौन पुरुष किसका बन्धु है और किससे किसको क्या पाना है! जीव अकेला

आता, अकेला ही नष्ट होता है। जो किसी के प्रति आसक्त होता है, उसे पागल समझना चाहिये। अतः आपको पिता के राज्य को छोड़कर इस दुःखमय कुत्सित मार्ग पर नहीं चलना चाहिये। आप अपना अभिषेक कराइये और राज्यभोग करते हुए अयोध्या में विहार कीजिये। पिता जीव के जन्म में निमित्त कारण मात्र होता है। शुक्र और रज के परस्पर संयोग से ही पुरुष का जन्म होता है। राजा को जहाँ जाना था, वहाँ चले गये; आप क्यों कष्ट उठाते हैं? जो प्राप्त हुए अर्थ का परित्याग करके धर्मपरायण हुए हैं, मैं उन्हीं के लिए शोक करता हूँ। वे इस जगत् में धर्म के नाम पर केवल दुःख भोगकर मृत्यु के बाद नष्ट हो गये हैं। अष्टका आदि जितने श्राद्ध हैं, उनकी देवता पितर हैं। श्राद्ध का दान पितरों को मिलना है, यह सोचकर लोग श्राद्ध करते हैं। परन्तु मेरे विचार से इसमें अन्न का नाश ही होता है। मरा हुआ मनुष्य क्या खायेगा? यदि यहाँ खाया हुआ अन्न दूसरों के शरीर में चला जाता है तो परदेश जाने वाले के लिए श्राद्ध ही कर देना चाहिये, मार्ग के लिए भोजन देना उचित नहीं। देवताओं के लिए यज्ञ, पूजन, दान तथा यज्ञ की दीक्षा, तपस्या, संन्यासी बनना इत्यादि बताने वाले ग्रन्थ बुद्धिमान् मनुष्यों ने दान की ओर लोगों की प्रवृत्ति कराने के लिए ही बनाये हैं। आप अपने मन में यह निश्चय कीजिये कि इस लोक के अतिरिक्त कोई दूसरा लोक नहीं है। जो प्रत्यक्ष राज्य-लाभ है, उसका आश्रय लीजिये। भरत के अनुरोध से आप अयोध्या का राज्य ग्रहण कीजिये।

जाबालि की बात सुनकर श्रीराम ने कहा–विप्रवर! आपने जो बात कही है, वह कर्तव्य-सी दिखाई देती है, किन्तु वास्तव में करने योग्य नहीं है। पथ्य-सी दीखने पर भी अपथ्य है। जो पुरुष धर्म अथवा वेद की मर्यादा त्याग देता है, वह पाप कर्म में प्रवृत्त हो जाता है। उसके आचार और विचार दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं। वह कभी सम्मान नहीं पाता। आचार ही बताता है कि कौन पुरुष उत्तम है, कौन अधम; कौन वीर है और कौन व्यर्थ ही अपने को पुरुष मानता है; कौन पवित्र और कौन अपवित्र है। आपका उपदेश चोला तो धर्म का पहने है, किन्तु वास्तव में अधर्म है। आपकी बात स्वीकार करके वेदोक्त शुभ कर्मों का अनुष्ठान छोड़ दूँ तो मैं इस जगत् में दुराचारी तथा लोक को कलंकित करने वाला समझा जाऊंगा। जहाँ अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी जाती है, उस वृत्ति के अनुसार आचरण करने पर मैं किस साधन से स्वर्ग लोक प्राप्त करूंगा? आपके कथनानुसार में पिता आदि में से किसी का कुछ भी नहीं हूँ। आपके बताये मार्ग पर चलने पर पहले मैं स्वेच्छाचारी हूंगा, फिर सब लोक स्वेच्छाचारी होगा। सत्य का पालन ही राजाओं का दया-प्रधान धर्म है। सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है। झूठ बोलने वाले मनुष्य से सब लोग उसी प्रकार डरते हैं जैसे साँप से। जगत् में सत्य ही ईश्वर है। सत्य से बढ़कर कोई परम पद नहीं है। मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ, ऐसी दशा में मैं पिता के आदेश का किसलिए पालन नहीं करूंगा? मनुष्य अपने शरीर से जो पाप करता है उसे पहले मन के द्वारा निश्चित करता है, फिर वाणी द्वारा दूसरों से कहता है,

तब दूसरों के सहयोग से शरीर द्वारा सम्पन्न करता है। इस प्रकार एक ही पातक कायिक, वाचिक और मानसिक, तीन प्रकार का होता है। आप की बुद्धि विषय-मार्ग में स्थित है। आप ने वेदविरुद्ध मार्ग का आश्रय ले रक्खा है। आप घोर नास्तिक और धर्म के मार्ग से कोसों दूर हैं। पिता जी ने आपको अपना याजक क्यों बनाया! मैं इसकी निन्दा करता हूँ। जैसे चोर दण्डनीय है, वैसे ही वेद-विरोधी भी दण्डनीय है।

जब राम ने रोषपूर्वक ये बातें कहीं, तब ब्राह्मण ने विनयपूर्वक ये आस्तिकतापूर्ण, सत्य एवं हितकर वचन कहे : रघुनन्दन! न तो मैं नास्तिक हूँ और न नास्तिकों की बात ही करता हूँ। परलोक आदि कुछ भी नहीं है, ऐसा मेरा मत नहीं है। इस समय ऐसा अवसर आ गया था जिससे मैंने धीरे-धीरे नास्तिकों की सी बातें कह डालीं। मैंने जो बात कही, उसमें मेरा उद्‌देश्य यही था कि किसी प्रकार आपको सहमत करके अयोध्या लौटने के लिए तैयार कर लूँ।

श्रीराम को रुष्ट जानकर महर्षि वसिष्ठ ने कहा कि महर्षि जाबालि नास्तिक नहीं हैं। इन्होंने तुम्हें लौटने के लिए प्रेरित करने हेतु यह सब कहा। तुम लोक की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनो : सृष्टि के प्रारम्भकाल में सब कुछ जलमय था। उस जल के भीतर ही पृथ्वी का निर्माण हुआ। तदनन्तर देवों के साथ ब्रह्मा प्रकट हुए। फिर ब्रह्मा ने ही वराह का रूप धारण कर जल से पृथ्वी को निकाला तथा सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की। ब्रह्मा से मरीचि तथा उनके पुत्र कश्यप हुए। कश्यप से विवस्वान्, उनसे वैवस्वत मनु हुए जो प्रथम प्रजापति थे। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु हुए। वही अयोध्या के प्रथम राजा हुए। इस प्रकार वसिष्ठ ने क्रमपूर्वक वर्णन किया तथा कहा कि दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र तुम हो, यह अयोध्या का राज्य तुम्हारा है, इसे ग्रहण करो। राम! इस संसार में पुरुष के सदा तीन गुरु होते हैं–आचार्य, पिता और माता। अतः तुम मेरी आज्ञा का पालन करो।

गुरु वसिष्ठ की बात सुनकर श्रीराम ने उत्तर दिया–माता और पिता ने जो उपकार किया है उसका बदला सहज ही नहीं चुकाया जा सकता। मेरे पिता ने जो आज्ञा दी है वह मिथ्या नहीं होगी।

श्रीराम की बात सुनकर भरत उदास हो गये तथा सुमंत्र से कहा कि इस वेदी पर बहुत से कुश बिछा दीजिये। जब तक आर्य प्रसन्न नहीं होंगे, तब तक मैं धरना दूंगा। यह सुनकर सुमंत्र श्रीराम का मुँह ताकने लगे। श्रीराम ने कहा–भरत! मैं तुम्हारा क्या अहित करता हूँ जो तुम मेरे आगे धरना दोगे? इस कठोर व्रत का परित्याग करो और अयोध्यापुरी जाओ। यह सुनकर भरत ने सबसे कहा कि आप लोग भय्या को क्यों नहीं समझाते हैं? इस अवसर पर नगर एवं जनपद के लोग भरत से बोले कि आप ठीक कह रहे हैं। परन्तु श्रीराम पिता जी के आज्ञापालन में लगे हैं इसलिए यह भी ठीक ही है। पुरवासियों के वचन का अर्थ समझकर श्री राम ने भरत से कहा कि तुम इस कथन को सुनो और समझो। शीघ्र उठो, मेरा और जल का स्पर्श करो। भरत उठे और कहा कि मैंने पिता से राज्य नहीं माँगा, न

पिता से कभी कुछ कहा, इसलिए मैं श्री राम के बदले वनवास में रहूंगा। भरत की बात सुनकर श्रीराम ने कहा कि पिता की बात को मैं या भरत, कोई पलट नहीं सकता। मुझे वनवास के लिए किसी को प्रतिनिधि नहीं बनाना है। कैकेयी ने उचित माँग ही प्रस्तुत की थी तथा पिता ने उसे देकर पुण्य कर्म किया। वनवास की अवधि पूरी करके मैं लौटूंगा। भरत! तुम मेरा कहना मानकर महाराज दशरथ को असत्य के बन्धन से मुक्त करो।

श्रीराम का जन्म रावण के वध के लिए हुआ है, यह सब महर्षि जानते थे, इसलिए वहाँ उपस्थित महर्षियों तथा अंतरिक्ष में अदृश्य भाव से खड़े मुनियों ने राम व भरत की प्रशंसा करते हुए भरत से कहा कि यदि तुम अपने पिता को सुख पहुँचाना चाहो तो श्रीराम की बात मान लो। हम लोग श्रीराम को पिता के ऋण से मुक्त देखना चाहते हैं। उनकी बातें सुनकर श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए तथा भरत का सारा शरीर थर्रा उठा। वे फिर श्रीराम से बोले कि आप हमारा अनुरोध स्वीकार कर लें। मैं इस योग्य नहीं हूँ कि राज्य का भार संभाल सकूँ। श्रीराम ने कहा–भरत! तुम अपनी स्वाभाविक विनयशील बुद्धि द्वारा भूमण्डल की रक्षा करने में समर्थ हो। श्रीराम के इस प्रकार कहने पर भरत उनसे बोले कि ये स्वर्णभूषित पादुकाऐं आपके चरणों में अर्पित हैं, आप इन पर अपने चरण रक्खें। श्रीराम ने पादुकाओं पर चरण रखकर फिर वे भरत को सौंप दीं। भरत ने कहा कि मैं चौदह वर्ष तक जटा और चीर धारण करके आप के आगमन की प्रतीक्षा करूंगा तथा सारा राज्यभार इन पादुकाओं पर होगा। अवधि समाप्त होने के एक दिन बाद यदि आप के दर्शन नहीं हुए तो मैं जलती अग्नि में प्रवेश करूंगा। श्रीराम ने स्वीकृति दी तथा शत्रुघ्न को कैकेयी की सुरक्षा का दायित्व सौंपा। भरत ने राम की परिक्रमा की तथा सर्वश्रेष्ठ गजराज पर पादुकाओं को स्थापित किया। श्रीराम ने सबको विदा किया तथा स्वयं रोते हुए अपनी कुटिया में प्रवेश किया।

भरत का भरद्वाज जी से मिलते हुए अयोध्या लौट आना; नन्दिग्राम में जाकर श्रीराम की चरणपादुकाओं को अभिषिक्त करके राज्य का सब कार्य करना।

तदनन्तर श्री रामचन्द्र की दोनों चरण-पादुकाओं को अपने मस्तक पर रखकर भरत शत्रुघ्न के साथ प्रसन्नतापूर्वक रथ पर बैठे। मन्दाकिनी नदी को पार करके पूर्व दिशा की ओर प्रस्थित हुए। चित्रकूट से थोड़ी ही दूर जाने पर भरत ने वह आश्रम देखा जहाँ मुनिवर भरद्वाज जी निवास करते थे। आश्रम पर पहुँचकर वे रथ से उतर पड़े और मुनि के चरणों में प्रणाम किया। महर्षि भरद्वाज को बड़ी प्रसन्नता हुई और भरत से पूछा–तात! क्या तुम्हारा कार्य सम्पन्न हुआ? इस प्रकार पूछने पर भरत ने उन्हें उत्तर दिया–मुने! भगवान् श्री राम प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाले हैं। मैंने उनसे बहुत प्रार्थना की, गुरुजी ने भी अनुरोध किया,

परन्तु श्री राम ने कहा–मैं चौदह वर्षों तक वन में रहूँ, इसके लिए मेरे पिताश्री ने जो प्रतिज्ञा कर ली, उनकी उस प्रतिज्ञा का ही मैं यथार्थ रूप से पालन करूंगा। श्री रघुनाथ जी ने अयोध्या के राज्य का संचालन करने के लिए ये दोनों स्वर्णभूषित पादुकाएं मुझे दे दीं। तत्पश्चात् मैं महात्मा श्रीराम की आज्ञा पाकर लौट आया हूँ और उनकी चरण-पादुकाओं को लेकर अयोध्या को ही जा रहा हूँ। भरत का यह वचन सुनकर भरद्वाज मुनि ने कहा–भरत! तुम मनुष्यों में सिंह के समान वीर तथा शील और सदाचार के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ हो। महर्षि के ऐसा कहने पर भरत ने उनके चरणों को स्पर्श किया तथा आज्ञा लेकर अयोध्या की ओर चल दिये। यमुना तथा गंगा जी को पार करके शृंगवेरपुर होते हुए, भरत ने अयोध्या में प्रवेश किया।

अयोध्या की सुनसान तथा वीरान स्थिति का वर्णन करते हुए भरत ने राजप्रासाद में प्रवेश किया तथा दुःखी होकर आँसू बहाने लगे।

तदनन्तर माताओं को अयोध्या में रखकर भरत ने गुरुजनों से कहा कि मैं नन्दिग्राम जाऊंगा। सभी ने अनुमोदन किया। फिर उन्होंने श्रीराम की चरण-पादुका लेकर रथ द्वारा नन्दिग्राम के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गुरुजनों से कहा कि अब सब राज्य-कार्य पादुकाओं को ही निवेदन करके होगा तथा मैं भाई की प्रतीक्षा करूंगा। मेरे भाई ने प्रेम के कारण ही यह धरोहर मुझे सौंपी है, अतः मैं उनके लौटने तक इसकी भली भाँति रक्षा करूंगा। रघुनाथ जी के आने पर उनसे मिलते ही मैं यह राज्य श्रीराम को समर्पित करके उनकी आज्ञा के अधीन ही उन्हीं की सेवा में लग जाऊंगा। तब मुझे राज्य पाने की अपेक्षा अधिक प्रसन्नता और यश की प्राप्ति होगी। इस प्रकार दीन भाव से विलाप करते हुए भरत मन्त्रियों के साथ नन्दिग्राम में रहकर राज्य का शासन करने लगे।

२३
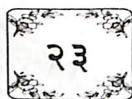
ऋषियों का चित्रकूट छोड़कर दूसरे आश्रम में जाना; श्रीराम का अत्रि मुनि के आश्रम में जाना; सीता-अनसूया-संवाद; श्रीराम का अन्यत्र जाने के लिए विदा लेना।

भरत के लौटने के बाद श्री राम ने देखा कि वहाँ के तपस्वी उद्विग्न हैं तथा अन्यत्र चले जाने के लिए उद्यत हैं। श्रीराम के कारण पूछने पर तपस्वियों ने बताया कि इस वन-प्रान्त में आपके कारण तापसों पर राक्षसों की ओर से भय उपस्थित होने वाला है। रावण का छोटा भाई खर नामक राक्षस तापसों को सताने लगा है। वह आपको सहन नहीं कर सकता। उससे बचने के लिए हम लोग थोड़ी दूर पर स्थित एक वन में जा रहे हैं जहाँ अश्वमुनि का आश्रम है। आप भी उचित समझें तो हमारे साथ चलिये। श्री राम के समझाने के उपरान्त भी तापस वहाँ से चले गये।

श्रीराम को भी बहुत से कारण ऐसे लगे कि उन्होंने भी वहाँ से प्रस्थान किया तथा मुनि अत्रि के आश्रम पर पहुँचे। मुनि ने अपनी पत्नी अनसूया से कहा–देवि! सीता को हृदय से लगाओ। फिर अनसूया का परिचय देते हुए उन्होंने कहा कि दस वर्ष तक वृष्टि न होने पर इन्होंने अपनी तपस्या से सबको सुखी किया तथा मंदाकिनी की धारा बहायी। इनकी तपस्या महान् है। देवी सीता इनके पास जायें। सीता जी ने अनसूया देवी के पास जाकर प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। देवी अनसूया ने सीता को आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम्हारी धर्म पर दृष्टि है। तुम वन में भेजे श्री राम का अनुसरण कर रही हो। पति से बढ़कर हितकारी बन्धु नहीं देखती। जो अपने पति पर शासन करती हैं वे काम के अधीन चित्त वाली स्त्रियाँ पति का अनुसरण नहीं करतीं। वे अनुचित कर्म में फँस जाती हैं। तुम पति की सेवा में लगी रहो, तुम्हें सुयश और धर्म दोनों की प्राप्ति होगी।

अनसूया की बात सुनकर सीता उनकी प्रशंसा करने लगीं और कहा कि देवि! आप संसार की स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। मुझे पति के साथ वन आते समय मेरी सास देवी कौसल्या ने जो कर्तव्य का उपदेश दिया था, वह मेरे हृदय पर अंकित है। इसके पूर्व मेरी माता ने मेरे विवाह-काल में जो कहा, वह भी मुझे स्मरण है। स्त्री के लिए पति-सेवा के अतिरिक्त दूसरे किसी तप का विधान नहीं है। सावित्री ने अपने पति सत्यवान् की सेवा करके स्वर्गलोक प्राप्त किया, उसी प्रकार आपने भी स्वर्गलोक में स्थान प्राप्त कर लिया है।

देवी अनसूया को बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने कहा कि मैं तपोबल का आश्रय लेकर तुमसे इच्छानुसार वर माँगने के लिए कहती हूँ। उनका कथन सुनकर सीता को आश्चर्य हुआ तथा वे बोलीं कि आपके वचन से ही मेरा सारा प्रिय कार्य हो गया। अनसूया जी बोलीं–तुम्हारी निर्लोभता से मुझे हर्ष हुआ है। यह सुन्दर दिव्य हार, वस्त्र, आभूषण, अंगराग तथा अनुलेप में तुम्हें देती हूँ। ये सब तुम्हारे अंगों की शोभा बढ़ायेंगे तथा सदा उपयोग में लाये जाने पर भी निर्दोष और निर्विकार रहेंगे। सीता जी ने उन्हें स्वीकार किया। तदनन्तर अनसूया ने सीता से प्रिय कथा कहने के लिए कहा, मुख्यतः यह कि उन्हें श्रीराम ने स्वयंवर में कैसे प्राप्त किया। इस प्रकार आज्ञा देने पर सीता ने सती अनसूया से कहा–माता! सुनिये। मिथिला जनपद के वीर राजा जनक नाम से प्रसिद्ध हैं। एक समय की बात है, वे यज्ञ के योग्य क्षेत्र को हाथ में हल लेकर जोत रहे थे। उसी समय मैं पृथ्वी फाड़कर प्रकट हुई। इतने मात्र से ही मैं राजा जनक की पुत्री हुई। उन दिनों उनकी कोई दूसरी संतान नहीं थी, इसलिए स्नेहवश उन्होंने मुझे गोद में ले लिया और 'यह मेरी पुत्री है', ऐसा कहकर मुझ पर अपने हृदय का सारा स्नेह उड़ेल दिया। उसी समय आकाशवाणी हुई जो स्वरूपतः मानवी भाषा में कही गयी थी, उसने कहा–नरेश्वर! तुम्हारा कथन ठीक है, यह कन्या धर्मतः तुम्हारी ही पुत्री है। यह सुनकर मेरे पिता मिथिलानरेश बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़ी रानी को मुझे

दे दिया। उन महारानी ने मेरा लालन-पालन किया। जब पिता ने देखा कि मेरी अवस्था विवाह के योग्य हो गयी, तब इसके लिए वे बड़ी चिन्ता में पड़े। संसार में कन्या के पिता को, वह भूतल पर इन्द्र के ही तुल्य क्यों न हो, वर पक्ष के लोगों से, वे अपने समान या अपने से छोटी प्रतिष्ठा के ही क्यों न हों, प्रायः अपमान उठाना पड़ता है। सदा मेरे विवाह की चिन्ता में पड़े रहने वाले उन महाराज के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मैं अपनी पुत्री का स्वयंवर करूंगा। उस समय उनके पास महात्मा वरुण का दिया एक दिव्य धनुष तथा अक्षय वाणों से भरे हुए दो तूणीर (तरकस) थे। मेरे पिता ने राजाओं को आमन्त्रित करके कहा–जो मनुष्य इस धनुष को उठाकर इस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, मेरी पुत्री सीता उसी की पत्नी होगी। उसके भारीपन के कारण उस श्रेष्ठ धनुष को देखकर वहाँ आये हुए राजा जब उसे उठाने में समर्थ न हो सके, तब उसे प्रणाम करके चले गये। तदनन्तर दीर्घ काल के पश्चात् श्री राम अपने भाई लक्ष्मण को साथ ले विश्वामित्र जी के साथ यज्ञ देखने के लिए पधारे। तब वहाँ विश्वामित्र जी मेरे पिता से बोले–राजन् ! ये दोनों राम और लक्ष्मण महाराज दशरथ के पुत्र हैं और आप के दिव्य धनुष का दर्शन करना चाहते हैं। विश्वामित्र जी के ऐसा कहने पर पिता जी ने उस दिव्य धनुष को मँगवाया और श्रीराम को दिखाया। परम पराक्रमी श्री राम ने पलक मारते ही उस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और उसे कान तक खींचा। उनके वेगपूर्वक खींचते समय वह धनुष बीच से ही टूट गया और उसके दो टुकड़े हो गये। तब मेरे पिताजी ने श्रीराम के हाथ में मुझे देने का उद्योग किया, परन्तु श्री राम ने अपने पिता महाराज दशरथ का अभिप्राय जाने बिना मुझे नहीं ग्रहण किया। तदनन्तर मेरे श्वसुर राजा दशरथ की अनुमति लेकर पिता जी ने श्री राम को मेरा दान कर दिया। तत्पश्चात् पिताजी ने मेरी छोटी बहिन उर्मिला को लक्ष्मण के हाथ में दे दिया। इस प्रकार उस स्वयंवर में पिता जी ने श्री राम के हाथ में मुझ को सौंपा था।

सीता जी के द्वारा कथा सुनकर अनसूया जी ने सीता जी का मस्तक सूँघ कर कहा कि तुम्हारी इस कथा में मेरा मन बहुत लगा। अब सांयकाल व्यतीत हो गया है। इन दिव्य वस्त्र और आभूषणों को धारण करके मुझे प्रसन्न करो। सीता उन्हें धारण करके श्री राम के पास गयीं। श्री राम ने सीता को देखकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की। तदनन्तर रात्रि व्यतीत हो जाने पर श्री राम और लक्ष्मण ने तपस्वी मुनि से जाने की आज्ञा माँगी। मुनि ने कहा कि इस वन का मार्ग राक्षसों से आक्रान्त है, अतः आप उन्हें रोकिये और यहाँ से मार भगाइये। इसी मार्ग से महर्षि लोग वन के भीतर फल-मूल के लिए जाते हैं। आप इस मार्ग से दुर्गम वन में प्रवेश करिये। उनकी मंगल-यात्रा के लिए स्वस्तिवाचन हुआ तथा श्रीराम, लक्ष्मण, सीता ने वन में प्रवेश किया।

(अयोध्याकाण्ड सम्पूर्ण)

अरण्यकाण्ड
प्रथम सर्ग

श्री राम का लक्ष्मण और सीता सहित दण्डक वन में प्रवेश; विराध-वध।

दण्डकारण्य नामक वन में प्रवेश करके श्रीराम ने मुनियों के बहुत से आश्रम देखे। यज्ञ-होमादि अनुष्ठानों के मन्त्रघोष से गूँज रहे उन आश्रमों के मण्डल में पुरातन मुनिगण निवास करते थे। श्रीराम को देखकर वे उनके पास प्रसन्नता से गये। श्रीराम का सत्कार किया तथा पर्णशाला में ठहराया। मुनियों ने हाथ जोड़ कर कहा कि आपको सदा सब प्रकार से हमारी रक्षा करनी चाहिये।

रात्रि में वहाँ विश्राम करके श्रीराम पुनः वन में ही आगे बढ़ने लगे। उस दुर्गम वन में श्रीराम ने एक नरभक्षी राक्षस को देखा। उसका विशाल शरीर तथा विकराल रूप था। श्री राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर वह उनकी ओर दौड़ा। सीता को उठाकर वह कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया और श्रीराम से कहा कि तुम्हारा जीवन क्षीण हो चला है। तुम तपस्वी जान पड़ते हो, परन्तु तुम्हारे साथ स्त्री का रहना कैसे सम्भव हुआ? तुम कौन हो? मैं विराध नामक राक्षस हूँ तथा प्रतिदिन ऋषियों का मांस भक्षण करता हूँ। यह स्त्री मेरी भार्या बनेगी और तुम दोनों को मैं मारूंगा। उसकी बात सुनकर सीता घबरा गयी तथा थर-थर काँपने लगी। श्रीराम बड़े चिंतित हुए और लक्ष्मण से कहा कि इससे बढ़कर मेरे लिए दुःख की क्या बात है कि कोई दूसरा सीता का स्पर्श कर ले। लक्ष्मण ने कहा– आप क्यों चिंता करते हैं? मैं अभी इस राक्षस का वध करता हूँ।

तदनन्तर विराध ने फिर पूछा– तुम दोनों कौन हो, कहाँ जाओगे ? श्रीराम ने कहा कि महाराज इक्ष्वाकु का कुल मेरा कुल है। कारणवश इस समय हम वन में निवास कर रहे हैं। तू कौन है ? विराध ने कहा– रघुवंशी नरेश ! मैं जब नामक राक्षस का पुत्र हूँ। मेरी माता का नाम शतह्रदा है। मैंने तपस्या के द्वारा ब्रह्मा जी का वरदान प्राप्त किया है कि किसी भी शस्त्र से मेरा वध न हो। तुम इस स्त्री को छोड़कर भाग जाओ। मैं तुम दोनों के प्राण नहीं लूंगा। राम ने यह सुनकर धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और राक्षस को वींधना प्रारम्भ किया। भयंकर युद्ध होने लगा। फिर तलवार लेकर दोनों राक्षस पर टूट पड़े। घायल होते हुए भी उसने उन दोनों को पकड़कर अन्यत्र जाने की इच्छा की। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि जिधर हमें जाना है, उसी ओर यह ले चलेगा। चलने दो। वह उनको कन्धे पर बैठाकर चल दिया।

यह देखकर सीता ऊँचे स्वर से रोने-चिल्लाने लगीं। उन्होंने कहा– राक्षसराज ! इन दोनों को छोड़ दो, मुझे ले चलो। सीता की यह बात सुनकर राम-लक्ष्मण उसका वध करने की

शीघ्रता करने लगे। श्रीराम ने राक्षस का दाहिना बाहु (बाँह) तथा लक्ष्मण ने बायाँ बाहु तोड़ डाला। उससे राक्षस मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। दोनों भाई उसको अनेक प्रकार से मारने लगे, परन्तु वह मरा नहीं। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– यह राक्षस तपस्या से अवध्य है। इसको गड्ढा खोद कर गाड़ दिया जाय। श्रीराम पैर से विराध का गला दबाकर खड़े हो गये। विराध ने कहा कि आपका बल इन्द्र के समान है। मैं आपको पहचान नहीं सका। मुझे शाप के कारण इस राक्षस शरीर में आना पड़ा। मैं तुम्बरू नामक गंधर्व हूँ। कुबेर ने मुझे राक्षस होने का शाप दिया था। विनती से प्रसन्न होने पर उन्होंने कहा कि श्रीराम जब तुम्हारा वध करेंगे, तभी तुम स्वर्गलोक जाओगे। मैं रम्भा अप्सरा पर आसक्त था, इसलिए कुपित कुबेर ने मुझे शाप देकर छूटने की अवधि बतायी थी। अब मुझे शाप से छुटकारा मिल गया। मैं अपने लोक को जाऊंगा। आप यहाँ से कुछ दूर महामुनि शरभंग के आश्रम में जाइये। श्रीराम ने लक्ष्मण से विशाल गड्ढा खोदवाकर राक्षस का शव उसमें डाल दिया।
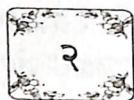
शरभंग मुनि के आश्रम में आगमन; शरभंग का दर्शनोपरान्त ब्रह्मलोकगमन; राक्षसों द्वारा मारे गये ऋषियों के कंकाल देखकर श्री राम द्वारा राक्षस-वध की इच्छा व्यक्त कर आश्वासन; सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम तथा अन्यान्य आश्रमों में जाना।

विराध का वध करने के बाद श्रीराम शरभंग मुनि के आश्रम पर गये। मुनि के समीप जाने पर श्रीराम ने अद्भुत दृश्य देखा। उन्होंने आकाश में श्रेष्ठ रथ पर बैठे इन्द्रदेव का दर्शन किया। इन्द्रदेव उस समय मुनि शरभंग के साथ वार्तालाप कर रहे थे। लक्ष्मण के साथ सीता को वहाँ ठहराकर श्रीराम निश्चित करने के लिए मुनि के आश्रम में गये कि रथ पर कौन देव विराजमान हैं। श्रीराम को देखते ही इन्द्र ने देवगण से कहा कि श्रीराम मुझ से बात करें इसके पूर्व ही मुझे यहाँ से दूसरे स्थान ले चलो। इस समय श्रीराम से मेरी भेंट नहीं होनी चाहिये। इन्द्र के चले जाने पर श्रीराम ने लक्ष्मण व सीता के साथ जाकर मुनि को प्रणाम किया। मुनि ने उन्हें ठहरने का स्थान दिया।। श्रीराम ने शरभंग मुनि से इन्द्र के आने का कारण पूछा। मुनि ने बताया कि इन्द्र मुझे ब्रह्मलोक ले जाना चाहते थे। परन्तु मुझे ज्ञात हो गया था कि आप इधर आने वाले हैं, इसलिए मैंने निश्चय किया कि आप से मिलकर ही ब्रह्मलोक जाऊंगा। आप मेरे सब तप को ग्रहण करें। श्रीराम ने कहा कि मैं आपको उन सब लोकों की प्राप्ति कराऊंगा। इस समय तो आपके बताये स्थान पर निवास मात्र करना चाहता हूँ

शरभंग मुनि बोले कि थोड़ी दूर पर सुतीक्ष्ण मुनि निवास करते हैं, वे ही आपका कल्याण करेंगे। परन्तु आप दो घड़ी ठहरिये जब तक मैं अपने इन जराजीर्ण अंगों को त्याग न दूँ। मुनि ने अग्नि की स्थापना की और मन्त्रोच्चारणपूर्वक घी की आहुति देकर अग्नि में

प्रविष्ट हो गये। उस समय अग्नि ने उनके रोम, केश, जीर्ण त्वचा, हड्डी, मांस, सब को जलाकर भस्म कर दिया और वे एक तेजस्वी कुमार के रूप में प्रकट हो गये तथा सभी लोकों को लांघ कर ब्रह्मलोक जा पहुँचे। ब्रह्मा जी उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

शरभंग मुनि के ब्रह्मलोक जाने के बाद बहुत से मुनियों के समुदाय पधारे। उन्होंने कहा कि जो राजा प्रजा से उसकी आय का छठा भाग कर के रूप में प्राप्त करे और उनकी रक्षा न करे, वह अधर्म का भागी होता है। इस वन में मुनि-समुदाय का बहुत अधिक मात्रा में संहार हो रहा है। उन्होंने श्रीराम को शव तथा कंकाल दिखाये और कहा कि इन राक्षसों से बचने के लिए हम आपकी शरण लेने आये हैं। आपसे बढ़कर दूसरा सहारा नहीं दिखाई देता। आप इन राक्षसों से हम सबको बचाइये। उनकी बातें सुनकर श्रीराम ने कहा कि आप इस प्रकार प्रार्थना न करें। मैं तो आप सब का आज्ञापालक हूँ। आप लोगों के प्रयोजन की सिद्धि के लिए मैं दैवात् यहाँ आ पहुँचा हूँ। आपकी सेवा का अवसर मिलने से मेरे लिए वनवास महान् फलदायक होगा। मैं उन राक्षसों का स्वयं ही संहार करना चाहता हूँ। यह कहकर वे मुनियों के साथ सुतीक्ष्ण मुनि के पास गये।
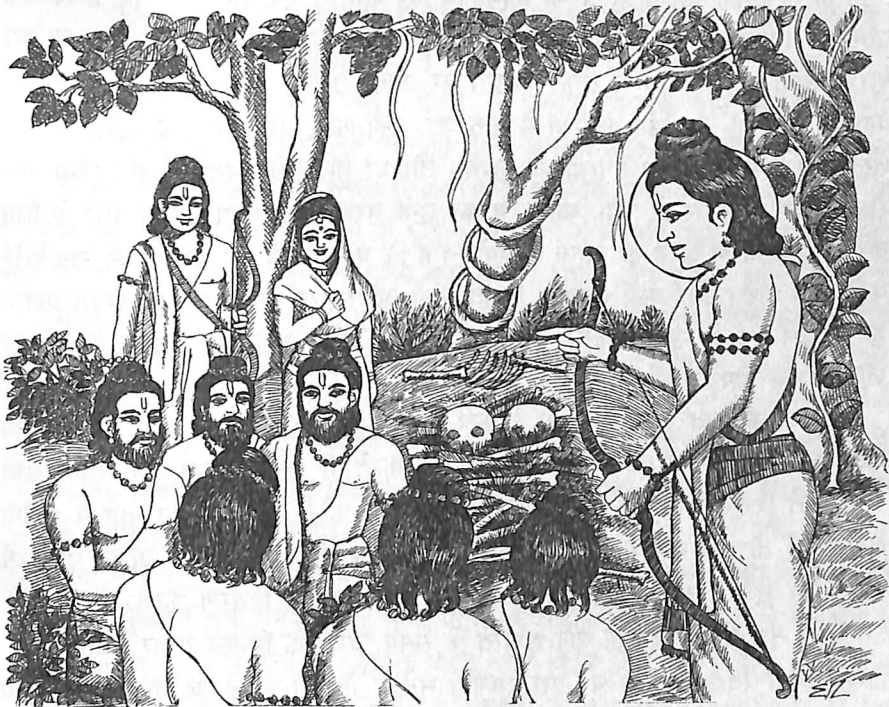
मुनियों के अस्थि-कंकाल देखकर निशाचर-वध का सकल्प

मुनि के पास पहुँच कर श्रीराम ने अपना परिचय देते हुए उन्हें प्रणाम किया। श्रीराम का दर्शन करके महर्षि ने श्रीराम का आलिंगन किया और कहा कि मैं आपकी ही प्रतीक्षा में था। आप इसी आश्रम में निवास करें।

रात्रि में वहाँ निवास करके श्रीराम ने सभी तपस्वियों के साथ महर्षि सुतीक्ष्ण से आज्ञा लेकर प्रस्थान किया। सीता जी ने उन दोनों भाइयों के हाथों में धनुष तथा खंग प्रदान किये। तीनों चल पड़े।

उस अवसर पर सीता ने श्रीराम से कहा– यद्यपि आप महान् पुरुष हैं तथापि सूक्ष्म विधि से विचार करने पर आप अधर्म को प्राप्त हो रहे हैं। जब आप कामजनित व्यसन से सर्वथा निवृत्त हैं तब यहाँ इस अधर्म से भी बच सकते हैं। काम से उत्पन्न होने वाले तीन ही व्यसन हैं। परस्त्रीगमन और बिना वैर के ही दूसरों के प्रति क्रूरतापूर्ण बर्ताव, ये दो व्यसन आपके पास कदापि नहीं रह सकते। किन्तु दूसरों के प्राणों की हिंसारूपी जो तीसरा दोष है, वह आपके सामने उपस्थित है। इसी के लिए आप धनुष-वाण लेकर दण्डकारण्य में प्रस्थित हुए हैं। इस समय मुझे दण्डकारण्य में जाना अच्छा नहीं लग रहा है। सम्भव है समस्त वनचारी राक्षसों को देखकर आप उनके प्रति अपने वाणों का प्रयोग कर बैठें। क्षत्रियों के पास धनुष हो तो उनके बल व प्रताप को उद्घोषित कर देता है। एक समय की बात है कि एक सत्यवादी तपस्वी तप कर रहे थे। उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए इन्द्र योद्धा का रूप धारण करके तलवार हाथ में लेकर आश्रम पर आये। उन्होंने मुनि को धरोहर के रूप में वह खंग दे दिया। उस खंग की रक्षा में मुनि जहाँ कहीं जाते, उसे साथ लिये रहते। प्रतिदिन शस्त्र ढोते रहने के कारण तपस्या का निश्चय छोड़कर बुद्धि को कूरतापूर्ण बना लिया और रोषपूर्ण कर्म में तत्पर हो गये। फलतः मरकर उन्हें नरक जाना पड़ा। क्षत्रिय वीरों के लिए वन में धनुष धारण करने का इतना ही प्रयोजन है कि वे संकट में पड़े प्राणियों की रक्षा करें। कहाँ शस्त्र-धारण और कहाँ वनवास ! अतः यहाँ अहिंसा धर्म का पालन ही हमारा कर्तव्य है। आपको धर्म का उपदेश करने में कौन समर्थ है ! आप अपने छोटे भाई से विचार कर लें; फिर जो ठीक जँचे, वह करें।

सीता की बात सुनकर श्रीराम ने कहा– तुमने पहले ही यह बात कही है कि क्षत्रिय लोग धनुष धारण दुःखी लोगों की रक्षा के लिए ही करते हैं। दण्डकारण्यवासी तपस्वी राक्षसों के भय से कितने दुःखी हैं! मुझे स्वयं ही उनकी रक्षा करनी चाहिये। फिर जब ये प्रार्थना कर रहे हैं तो मेरा कर्तव्य बनता है कि मैं राक्षसों का संहार करके उन्हें अभय करूँ। मैं अपने प्रण से हट नहीं सकता। इतना कह कर वे तपोवन में विचरण करने लगे।

दूर तक यात्रा करने के बाद सूर्यास्त के समय उन्हें एक विशाल सुन्दर तड़ाग (ताल) दिखाई पड़ा। स्वच्छ जल से भरे उस रमणीय सरोवर में गाने-बजाने का नाद सुनाई पड़ता था। परन्तु कोई दिखाई नहीं दे रहा था। श्रीराम ने साथ चलते हुए धर्मभृत मुनि से कहा कि

संगीत की ध्वनि सुनकर मुझे कौतूहल हो रहा है। यह क्या है? मुनि ने उस सरोवर के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा कि यह पञ्चाप्सर नामक सरोवर है। माण्डकर्णि नामक मुनि ने अपने तप के द्वारा इसका निर्माण किया था। उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए देवताओं ने पाँच प्रधान अप्सराओं को नियुक्त किया। उन अप्सराओं ने मुनि को काम के अधीन कर लिया। वे मुनि की पत्नी बनी हुई रहती हैं तथा तालाब के भीतर घर बना हुआ है। वे मुनि को संतुष्ट करती हैं। यह संगीत उन्हीं अप्सराओं का है। तदनन्तर उन्हें एक आश्रम-मण्डल दिखाई दिया। वहाँ उन्होंने प्रवेश किया तथा स्वागत-सत्कार के बाद निवास किया। श्रीराम बारी-बारी से सभी आश्रमों पर गये। कहीं दस महीने, कहीं वर्ष भर, कहीं चार महीने, कहीं पाँच या छः महीने और कहीं इससे भी अधिक समय रहे तथा इस प्रकार दस वर्ष बीत गये। इस प्रकार भ्रमण के बाद वे फिर सुतीक्ष्ण के आश्रम पर ही लौट आये।
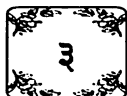
अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाना; पंचवटी के लिए प्रस्थान; जटायु से परिचय।

एक दिन श्रीराम ने सुतीक्ष्ण से मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी के विषय में पूछा। मुनि ने बताया कि इस आश्रम से चार योजन दक्षिण चले जाइये। वहाँ अगस्त्य मुनि के भाई का आश्रम मिलेगा। उसके आगे एक योजन चलने के पश्चात् अगस्त्य मुनि का आश्रम मिलेगा। तदनन्तर श्रीराम ने सुतीक्ष्ण मुनि से विदा लेकर अगस्त्य आश्रम की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में कुछ दूर जाने के बाद श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि महात्मा अगस्त्य मुनि के भाई का आश्रम दिखाई दे रहा है। इन्हीं के भाई अगस्त्य जी ने वातापि और इल्वल का दमन करके दक्षिण दिशा को शरण लेने के योग्य बना दिया। वातापि और इल्वल दोनों भाई साथ रहते थे तथा ब्राह्मणों की हत्या किया करते थे। इल्वल ब्राह्मण का रूप धारण करके ब्राह्मणों को श्राद्ध के लिए निमंत्रण देता था, फिर मेष अर्थात् भेड़ा नामक शाक का रूप धारण करने वाले अपने भाई वातापि का संस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त विधि से ब्राह्मणों को खिला देता था। वे जब भोजन कर लेते, तब इल्वल उच्च स्वर से बोलता—'वातापे! निकलो।' वातापि भेड़े के समान 'मैं-मैं' करता हुआ ब्राह्मणों के पेट फाड़ कर निकल आता था। इस प्रकार प्रतिदिन वे अनेक ब्राह्मणों का विनाश करते थे। देवगणों की प्रार्थना पर महर्षि अगस्त्य ने श्राद्ध में शाक रूप धारण किये उस असुर का जानबूझकर भक्षण किया। भोजन सम्पन्न होने पर इल्वल पुकारने लगा 'निकलो' तो मुनि अगस्त्य ने कहा—तेरे भाई राक्षस को मैंने पचा लिया। वह यमलोक पहुँच गया है। इल्वल बहुत क्रुद्ध होकर जैसे ही अगस्त्य को मार डालने का प्रयास करने लगा, त्यों ही उन्होंने उस राक्षस को अपनी अग्नि-तुल्य दृष्टि से दग्ध कर डाला।

तदनन्तर सायं-संध्योपासना करके श्रीराम ने आश्रम में प्रवेश किया और महर्षि के चरणों में मस्तक झुकाया। रात्रि-विश्राम करके प्रातः महर्षि अगस्त्य के पास जाने की आज्ञा माँगी। महर्षि ने कहा—बहुत अच्छा, जाइये। वन की शोभा देखते हुए मार्ग में श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—महर्षि अगस्त्य का आश्रम यहाँ से दूर नहीं है। जब से अगस्त्य ने इस दिशा में पदार्पण किया, तब से राक्षस वैररहित और शान्त हो गये हैं। एक बार पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य सूर्य का मार्ग रोकने के लिए बढ़ा था। किन्तु महर्षि अगस्त्य के कहने से वह नम्र हो गया। तब से उनका आदेश-पालन कर रहा है। वे दीर्घायु महात्मा हैं तथा उनका कर्म (समुद्र-शोषण आदि) तीनों लोकों में विख्यात है। हम लोग अब यहीं निवास करेंगे। फिर लक्ष्मण से कहा कि अब हम आश्रम पर आ पहुँचे हैं। तुम पहले प्रवेश करके महर्षियों को सीता के साथ मेरे आगमन की सूचना दो।

लक्ष्मण ने आश्रम में जाकर अपना परिचय दिया तथा मुनि के शिष्य को बताया कि श्रीराम सीता के साथ आश्रम में प्रवेश करना चाहते हैं। अगस्त्य मुनि ने शिष्य से सुनते ही कहा कि यह सौभाग्य की बात है, उन्हें शीघ्र मेरे समीप लाओ। श्रीराम ने आश्रम में प्रवेश किया तो मुनि अगस्त्य के दर्शन करते ही उनके चरण पकड़ लिये तथा फिर हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। मुनि ने श्रीराम को हृदय से लगाया, उनका सत्कार किया तथा भोजन दिया। आसन पर विराजमान होकर महर्षि ने कहा कि आप हमारे अतिथि हैं। यह महान् विश्वकर्मा का बनाया धनुष है। इसमें स्वर्ण और हीरे जड़े हैं। यह भगवान् विष्णु का दिया हुआ है। इसके लिए अमोघ उत्तम वाण ब्रह्मा जी का दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त इन्द्र ने दो तरकस दिये हैं जो वाणों से सदा भरे रहते हैं। साथ ही यह तलवार भी है जिसकी मूठ में सोना जड़ा है। मानव! आप यह धनुष, दोनों तरकस, वाण तथा तलवार विजय पाने के लिए ग्रहण कीजिये। यह कहकर उन्होंने अभी आयुध श्रीराम को सौंप दिये और बोले—श्रीराम! आपका कल्याण हो। मैं आप पर प्रसन्न हूँ। मार्ग चलने के कारण आप लोगों को थकावट हुई। सीता सुकुमारी हैं, वन में अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं, फिर भी ये पति-प्रेम से प्रेरित होकर यहाँ आयी हैं। आप इनके अनुकूल कार्य करें। रघुनन्दन! सृष्टि-काल से लेकर अब तक स्त्रियों का प्रायः यही स्वभाव रहता आया है कि यदि पति धनधान्य से सम्पन्न, स्वस्थ एवं सुखी है तो वे अनुराग रखती हैं, परन्तु विषम अवस्था में पड़ जाने पर त्याग देती हैं। किन्तु आपकी यह धर्मपत्नी पतिव्रताओं में अग्रगण्य है—जैसे देवियों में अरुन्धती। इस अवसर पर श्रीराम ने हाथ जोड़कर कहा कि आपका अनुग्रह मुझ पर है, इससे मैं धन्य हुआ। आप मुझे सुविधानुसार रहने योग्य स्थान बताइये। अगस्त्य मुनि ने कहा कि यहाँ से दो योजना की दूरी पर गोदावरी के तट के पास पञ्चवटी नाम से एक स्थान है, वहीं आप अपने रहने की व्यवस्था करें। तदनन्तर श्रीराम महर्षि के बताये हुए मार्ग पर पञ्चवटी के लिए प्रस्थित हुए।

पंचवटी के मार्ग में उन्हें एक विशालकाय गृध्र (गिद्ध) मिला। उन्होंने उसे एक वृक्ष पर बैठे देखा और राक्षस समझ कर पूछा–आप कौन हैं? उस पक्षी ने कोमल वाणी में कहा–वत्स! मुझे अपने पिता का मित्र समझो। आदर के साथ श्रीराम ने पक्षी का नाम पूछा। उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा कि पूर्वकाल में जो प्रजापति हो चुके हैं उनका वर्णन करता हूँ। प्रजापतियों में सबसे प्रथम कर्दम हुए, तदनन्तर विकृत, शेष, संश्रय, बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और कश्यप हुए। वही अन्तिम प्रजापति थे। प्रजापति दक्ष की साठ यशस्विनी कन्याएं हुईं। उनमें से आठ सुन्दरी कन्याओं को कश्यप ने पत्नी रूप में ग्रहण किया, नाम इस प्रकार हैं–अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला। अदिति के गर्भ से तैंतीस देवता (आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, और दो अश्विनीकुमार) उत्पन्न हुए। दिति ने दैत्य नाम से प्रसिद्ध पुत्रों को जन्म दिया। पूर्वकाल में वनों, पर्वतों, समुद्रों सहित समस्त पृथ्वी उन्हीं के अधिकार में थी। दनु ने अश्वग्रीव और कालका ने नरक एवं कालक नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया। ताम्रा ने क्रौञ्ची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री तथा शुकी नाम की कन्याओं को जन्म दिया। क्रौञ्ची ने उल्लुओं को, भासी ने भास नामक पक्षियों को, श्येनी ने बाजों और गीधों को तथा धृतराष्ट्री ने हंसों व कलहंसों को जन्म दिया और चक्रवाक नामक पक्षी भी उसी से उत्पन्न हुए। शुकी से नता नामिका कन्या तथा नता से विनता नाम की कन्या उत्पन्न हुई। क्रोधवशा ने मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा और कद्रुका या कद्रू नाम की कन्याओं को जन्म दिया। मृगी से सब मृग उत्पन्न हुए और मृगमन्दा ने रीछों, साँभरों तथा चमरों को जन्म दिया। भद्रमदा ने इरावती को जन्म दिया जिससे ऐरावत नामक महान् गजराज का जन्म हुआ। हरी की संतानें सिंह, वानर तथा लंगूर हैं। शार्दूली ने व्याघ्र उत्पन्न किये, मातंगी ने हाथी। श्वेता से दिशागज काकुत्स्थ उत्पन्न हुआ। सुरभी ने रोहिणी व गन्धर्वी को, रोहिणी ने गौओं को, गन्धर्वी ने अश्वों को, सुरसा ने नागों को और कद्रू ने सर्पों को जन्म दिया। मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण वाले मनुष्यों को जन्म दिया। अनला ने सभी वृक्षों को जन्म दिया। विनता के दो पुत्र हुए–गरुड़ और अरुण। अरुण से मैं और मेरे बड़े भाई सम्पाति हुए। मेरा नाम जटायु है। आप वहाँ पञ्चवटी में निवास करें। मैं आपके बाहर जाने पर सीता की रक्षा करूंगा।

गोदावरी के तट के पास पंचवटी में स्थान देखकर श्रीराम ने अपना आश्रम बनाया।

पंचवटी में शूर्पणखा का आगमन और अनर्गलता; लक्ष्मण द्वारा श्रुति-नासिकाछेदन; खर-दूषणादि-वध; शूर्पणखा का लंका-गमन।

श्रीराम के उस आश्रम में रहते हुए शरद ऋतु बीत गयी और हेमन्त का आरम्भ हुआ। राम ने लक्ष्मण से ऋतु के प्रभाव का वर्णन किया। इस अवसर पर दोनों भाइयों ने भरत का स्मरण किया तथा उनकी दशा का वर्णन किया।

एक समय जब आश्रम में श्रीराम लक्ष्मण के साथ बात कर रहे थे, अकस्मात् एक राक्षसी, जो रावण की बहिन शूर्पणखा थी, आयी। श्रीराम को देखते ही वह काम से मोहित हो गयी। पास आकर उसने पूछा कि राक्षसों के देश में तुम कैसे चले आये? तुम कौन हो? सरलता के साथ राम ने पूरा परिचय दिया और पूछा कि तुम्हारा क्या परिचय है? परिचय देकर उसने कहा कि मैं तुम पर आसक्त हूँ, तुम सीता व लक्ष्मण को त्याग दो तथा मेरे साथ विहार करो; इन्हें तो मैं खा जाऊंगी।

मधुर वाणी में श्रीराम ने कहा कि मैं विवाह कर चुका हूं तथा मेरी पत्नी साथ में है। तुम्हारे लिए सीता का रहना दुःखदायी होगा। मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है तथा इसके साथ स्त्री नहीं है। यही तुम्हारे लिए योग्य पति हो सकता है। तुरन्त ही वह लक्ष्मण से अनुरोध करने लगी। लक्ष्मण ने कहा कि मैं तो इनका दास हूँ, तुम दासी बन कर रहना चाहोगी? तुम्हारे लिए राम ही उपयुक्त हैं। फिर वह राम के पास लौट आयी तथा कहा कि मैं तुम्हारे देखते-देखते इस स्त्री को खा जाऊंगी, तुम मेरे पति बनो। ऐसा कहकर वह सीता की ओर झपटी। श्रीराम ने हुंकार से उसे रोक कर लक्ष्मण से कहा कि किसी अंग से इसे अंगहीन कर दो। लक्ष्मण ने म्यान से तलवार निकाल कर उसके नाक-कान काट लिये। नाक-कान कटते ही वह चिल्लाकर वन में भाग गयी और अपने भाई खर के पास जाकर गिर गयी।

खर ने पूछा–तुमको किसने रूपहीन बनाया? तुम तो स्वयं महान् बलवन्ती हो, फिर तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? तुम बताओ, मैं उसे नष्ट कर दूंगा। तब शूर्पणखा ने राम-लक्ष्मण के बारे में बताया और कहा कि मैं उनका रक्त पीना चाहती हूँ। कुपित होकर खर ने चौदह राक्षसों से कहा कि तुम जाकर उन्हें और उनकी स्त्री को मार डालो। वे भयंकर राक्षस शूर्पणखा के साथ पंचवटी गये।

श्रीराम ने शूर्पणखा के साथ आये राक्षसों को देखकर लक्ष्मण से कहा कि तुम थोड़ी देर सीता के पास खड़े हो जाओ, मैं इनका वध करता हूँ। फिर उनसे पूछा कि तुम लोग किस लिए हिंसा करना चाहते हो? श्री राम की बात सुनकर बड़े क्रुद्ध होते हुए उन्होंने एक साथ आक्रमण किया, परन्तु सब मारे गये। तब शूर्पणखा फिर भाग कर खर के पास गयी और सब समाचार कह सुनाया।

खर को उत्तेजित करने के लिए वह अनेक प्रकार से विलाप करने लगी और कहा कि जिस प्रकार उन्होंने चौदह राक्षसों को मारा है उससे मुझे भय हो रहा है। मैं सोचती हूँ कि तुम उनके सामने समर में नहीं ठहर सकोगे। या तो उन्हें नष्ट करो, या जनस्थान से शीघ्र भाग जाओ।

राक्षस खर ने अपने सेनापति दूषण के साथ चौदह सहस्र (१४०००) राक्षसों की विशाल सेना लेकर जनस्थान से पंचवटी की ओर प्रस्थान किया। उस सेना के प्रस्थान करते समय आकाश में गधे के समान धूसर रंग वाले बादलों की महाभंयकर घिटा घिर आयी। सैनिकों के ऊपर घोर अमंगलसूचक रक्तमय जल की वर्षा होने लगी। खर के रथ के घोड़े अकस्मात् गिर गये। उसके रथ की ध्वजा पर एक विशालकाय गिद्ध आकर बैठ गया। इसी प्रकार के अनेक उत्पात प्रकट होने लगे। उन उत्पातों को देखकर खर अट्टहास करने (जोर से हँसने) लगा तथा राक्षसों से बोला–मैं इन उत्पातों की परवाह नहीं करता। बिना राम और लक्ष्मण को मारे मैं पीछे नहीं लौट सकता। उस अवसर पर वह दृश्य देखने के लिए बहुत से पुण्यकर्मा महात्मा ऋषि, देव, गन्धर्व, सिद्ध और चारण वहाँ एकत्रित हो गये। सब कहने लगे कि श्रीराम इस युद्ध में निशाचरों को पराजित करें। राक्षसों की वह विशाल सेना सहसा श्रीराम व लक्ष्मण के पास जा पहुँची।

खर के पंचवटी की ओर चलने के समय जो उत्पात प्रकट हुए उन्हें श्रीराम ने भी देखा तथा कहा कि राक्षसों के संहार का समय आ गया है। मेरी दाहिनी भुजा बारंबार फड़क रही है तथा सूचना देती है कि कुछ ही देर में युद्ध होगा। इसलिए लक्ष्मण! तुम धनुष-वाण लेकर सीता के साथ उस पर्वत की गुफा में चले जाओ। मेरा कहना मानो। मैं शपथ दिलाकर कहता हूँ। इतना कहने पर लक्ष्मण सीता के साथ गुफा में चले गये। उसके बाद श्रीराम ने कवच बाँधा तथा धनुष एवं वाण लेकर खड़े हो गये और प्रत्यञ्चा की टंकार से सभी दिशाओं को गुंजाने लगे। उस समय देव, गन्धर्व, सिद्ध और चारण भी एकत्र होकर सभी उन्हें आशीर्वाद देने लगे। तभी राक्षसों की सेना आ गयी। राम युद्ध के लिए उद्यत हो गये।

खर ने राम को देखकर कहा कि मेरा रथ राम के सामने ले चलो। तदनन्तर वे राक्षस चारों ओर से राम पर प्रहार करने लगे। श्रीराम ने राक्षसों के छोड़े हुए उन अस्त्र-शस्त्रों को अपने वाणों द्वारा ग्रस लिया। उनका शरीर क्षत-विक्षत हो गया था, परन्तु वे विचलित नहीं हुए। श्रीराम के मण्डलाकर धनुष से अत्यंत भंयकर और राक्षसों के प्राण लेने वाले असंख्य वाण छूटने लगे। अनेक निशाचर मारे गये। आहत राक्षस आर्तनाद करने लगे। वे खर के पास ही दौड़े गये। दूषण ने सहारा दिया तथा वे फिर राम पर टूट पड़े। परन्तु राम के वाणों से बहुसंख्यक राक्षसों के शवों से वहाँ की भूमि पट गयी। शेष रह गये राक्षस राम के सम्मुख जाने से डरने लगे।

तब उस समय दूषण बड़े वेग से झपटा, परन्तु वह भी मारा गया। फिर उनके अनेक सेनापति धराशायी हो गये। खर ने फिर राक्षसों को उत्तेजित किया, परन्तु श्रीराम ने सब को मार डाला। उन के द्वारा अपनी भयंकर सेना को मारी गयी देखकर खर एक विशाल रथ पर चढ़कर राम का सामना करने के लिए आया।

उस समय सेनापति राक्षस त्रिशिरा ने कहा कि मुझे इनसे युद्ध करने दीजिये। यदि मैं मर गया तो आप इन पर धावा बोलियेगा। खर ने कहा–अच्छा, जाओ युद्ध करो। वह बड़े क्रोध से युद्ध करने लगा। परन्तु उसके तीनों मस्तक राम ने काट दिये।

त्रिशिरा-वध के बाद खर ने श्रीराम पर धावा किया। वह बहुत भयभीत हो गया था, परन्तु बड़े वेग से आक्रमण किया। भयंकर युद्ध होने लगा। खर अपने रथ पर श्रीराम के पास गया तथा हाथ की फुर्ती दिखाते हुए श्रीराम के वाण सहित धनुष को मुट्‌ठी में पकड़ने के स्थान से काट डाला, फिर श्रीराम के मर्मस्थल पर चोट पहुँचायी और राम को पीड़ित करके घोर गर्जना करने लगा। श्रीराम का कवच पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब श्रीराम ने एक दूसरे विशाल धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और अपने वाणों द्वारा खर की ध्वजा काट डाली। खर को शरीर के मर्मस्थानों का ज्ञान था। उसने उन अंगों पर श्रीराम को मारा। वे लहूलुहान हो गये। इससे उन्हें बड़ा क्रोध आया। धनुष को हाथ में लेकर उन्होंने खर को छः वाण मारे। फिर अनेक वाण मार कर उसे घायल कर दिया तथा उसका धनुष खण्डित हो गया, रथ टूट गया, घोड़े मर गये। फिर वह गदा लेकर रथ से कूद पड़ा।

श्रीराम ने गदा हाथ में लिये खर को बहुत फटकारा, कहा–क्रूरकर्मी! तुमने बहुत से पाप किये हैं, उनका फल तुझे शीघ्र मिलेगा। खर भी बहुत कुपित होकर कहने लगा कि 'तुमने हमारे चौदह हजार राक्षसों का संहार किया है, मैं उनका बदला लूंगा।' और उसने विशाल गदा फैंकी। राम ने उस गदा के वाण द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

श्रीराम ने मुस्कराते हुए कहा कि अब मैं वाण से तेरे शरीर को विदीर्ण कर दूंगा और मुनिगण निर्भय होकर जनस्थान में विचरण करेंगे। खर ने पास ही से एक विशाल साखू का वृक्ष उखाड़ कर श्रीराम पर दे मारा। श्रीराम ने उस वृक्ष को वाणों द्वारा विदीर्ण कर दिया। फिर उन्होंने अपने वाणों से खर को व्याकुल कर दिया। श्रीराम ने देखा कि रुधिर से लथपथ होने पर भी वह उनकी ओर ही बढ़ रहा है तो वे दो पग पीछे हटे तथा भंयकर वाण लेकर खर को लक्ष्य करके मारा। वह उसकी छाती में जाकर लगा। खर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी समय देवता चारणों के साथ आकर श्रीराम पर फूलों की वर्षा करने लगे। तदनन्तर बहुत से राजर्षियों और अगस्त्य आदि महर्षियों ने आकर श्रीराम का सत्कार किया। इस बीच लक्ष्मण भी सीता के साथ पर्वत की कन्दरा से निकल कर आश्रम में आये। सब राक्षस मारे गये और श्रीराम को कोई क्षति नहीं हुई, इससे सीता प्रसन्न हुईं।

तदनन्तर जनस्थान से अकम्पन नामक राक्षस लंका की ओर गया और रावण से बोला कि जनस्थान के बहुत राक्षस खर सहित मारे गये हैं । रावण क्रोध से जल उठा और बोला–कौन मौत के मुख में जाना चाहता है? रावण के क्रोध को देखकर अभय-याचना के स्वर में अकम्पन ने कहा कि राजा दशरथ के पुत्र राम पंचवटी में रहते हैं, उन्होंने ही सब का वध किया। रावण ने पूछा कि क्या राम समस्त देवों तथा इन्द्र के साथ जनस्थान में आये

हैं? अकम्पन बोला–लंकेश्वर! जिनका नाम राम है वे संसार के समस्त धनुर्धरों में श्रेष्ठ हैं। उनके साथ उन्हीं के समान बलवान् उनके भाई लक्ष्मण हैं। उनके साथ न कोई देवता, न ही महात्मा मुनि हैं। अकम्पन की बात सुनकर रावण ने कहा कि मैं अभी उनका वध करने जनस्थान जाऊंगा। उसके ऐसा कहने पर अकम्पन ने श्रीराम के बल और पुरुषार्थ का वर्णन किया तथा कहा–दशग्रीव! समस्त राक्षस भी युद्ध में राम को नहीं जीत सकते। मुझे एक उपाय सूझा है। राम की पत्नी सीता संसार की सर्वोत्तम सुन्दरी है। आप उस विशाल वन में ही राम को धोखे में डालकर उनकी पत्नी का अपहरण कर लें। राम सीता के विछुड़ जाने पर कदापि जीवित नहीं रहेंगे। रावण ने कुछ देर सोच कर अकम्पन से कहा कि मैं रथ पर सारथि के साथ प्रातः अकेला जाऊंगा और सीता को ले आऊंगा। रावण ने वहाँ से प्रस्थान किया तथा कुछ दूर स्थित एक आश्रम पर जाकर वह ताड़का के पुत्र मारीच से मिला। मारीच के कुशल-समाचार पूछने के बाद रावण ने कहा–तात! अनायास ही राम ने मेरे राज्य की सीमा के रक्षक खर, दूषण आदि को मार डाला। मैं प्रतिशोध (बदला) लेने के लिए उनकी स्त्री का अपहरण करना चाहता हूँ। इस कार्य में तुम मेरी सहायता करो। रावण की बात सुनकर मारीच बोला–राक्षसराज! मित्र के रूप में तुम्हारा कौन शत्रु है जिसने तुम्हें सीता को हर लेने की सलाह दी है? वह समस्त राक्षस-जगत् के सींग काट लेना चाहता है। श्रीराम बहुत बलशाली हैं। युद्धस्थल में उनकी ओर देखना भी तुम्हारे लिए उचित नहीं है। लंकेश्वर! सकुशल लंका को लौट जाओ। तुम अपनी पुरी में प्रसन्न रहो तथा राम वन में विहार करें। मारीच के ऐसा कहने पर रावण लंका लौट आया।

उधर जब शूर्पणखा ने देखा कि राम ने सब को मार गिराया है तो वह घोर चीत्कार करती हुई लंका गयी। महाबली रावण को घोर तपस्या के प्रभाव से मनुष्य के अतिरिक्त और किसी के हाथ से मृत्यु का भय नहीं था। वह दुष्ट निशाचर क्रूर कर्म करता था और बड़ा निर्दय था। अपने इस क्रूर भाई रावण को शूर्पणखा ने देखा। शूर्पणखा के नाक-कान कटे थे। वह रावण को अपनी दुर्दशा दिखाकर बोली :

राक्षसराज! तुम स्वेच्छाचारी होकर विषय-भोगों के मतवाले हो रहे हो। तुम्हारे लिए घोर भय उपस्थित हो गया है, परन्तु तुम्हें इसकी जानकारी नहीं है। फिर वह राजा के अवगुणों का वर्णन करने लगी और कहा कि अकेले राम ने सब को नष्ट कर डाला और तुम्हें कुछ पता नहीं। तुम्हारे सरीखा राजा तो अपने आप नष्ट हो जाता है। शूर्पणखा द्वारा कहे गये अपने दोषों पर विचार करके धन, अभिमान और बल से सम्पन्न रावण बहुत देर तक सोच-विचार एवं चिन्ता में पड़ा रहा।

शूर्पणखा की बातें सुनकर और कुछ देर विचार करके रावण ने राम के दण्डकारण्य आने का कारण पूछा और यह भी कि तुम्हारे अंग किसने काट डाले? क्रोध से पहले अचेत हो गयी शूर्पणखा ने फिर श्रीराम का पूरा परिचय और पराक्रम बताया। सभी वर्णन करते हुए उसने सीता के रूप का वर्णन किया और कहा कि वह तुम्हारे योग्य भार्या होगी। मैं तो

उसे तुम्हारी भार्या बनाने के लिए उद्यत हुई थी, तभी लक्ष्मण ने मुझे कुरूप बना दिया। अब यदि तुम्हारी इच्छा सीता को भार्या बनाने की है तो तुम्हारा क्या कर्तव्य है, यह निश्चय करो।

रावण द्वारा मारीच की सहायता से सीताहरण; जटायु-रावण युद्ध; रावण द्वारा सीता को लुभाने का प्रयास; सीता से भर्त्सना सुनकर अशोक वाटिका में भेजी।

शूर्पणखा की रोंगटे खड़े करने वाली बातें सुनकर रावण मंत्रियों से परामर्श-मन्त्रणा करके वहाँ से चल दिया। उसने सीता-हरण का मन ही मन विचार किया और अपने रथ पर आरूढ़ होकर समुद्र-तट पर गया। समुद्र-तट पर पहुँच कर वहाँ की शोभा देखने लगा। उसका रथ आकाश-मार्ग से चल रहा था। वहाँ सागर-तट पर एक विशाल बरगद का वृक्ष दिखाई दिया। उस वृक्ष की शाखाएं योजनों तक फैली थीं। यह वही वृक्ष था जिसकी शाखा पर किसी समय महाबली गरुड़ एक विशालकाय हाथी और कछुए को लेकर खाने को बैठे थे। सहसा उनके भार से शाखा टूट गयी। उसके नीचे अनेक तपस्वी रहते थे। गरुड़ ने उनकी जीवन-रक्षा के लिए उस टूटी शाखा को पकड़ लिया तथा आकाश में ही दोनों जन्तुओं को खाकर, उस डाल द्वारा निषादविषय क्षेत्र का संहार कर डाला। महामुनियों को बचा लेने के कारण उन्हें महान् हर्ष हुआ। अपने पराक्रम को देखकर उन्होंने अमृत लाने का पक्का निश्चय किया और इन्द्रलोक जाकर प्राचीर को तोड़ महेन्द्र-भवन से अमृत को हर लाये। वही वृक्ष वहाँ विद्यमान था। उसका नाम सुभद्रवट था। रावण ने उसे देखा। वहीं एक एकान्त स्थान पर एक आश्रम था जहाँ वह मारीच नामक राक्षस से मिला। मारीच ने पूछा–राक्षसराज! फिर इतने शीघ्र तुम क्यों आये हो?

रावण ने फिर राम के विषय में कहा और मारीच से आग्रह किया कि तुम मेरे सहायक हो जाओ, तुम बड़ी-बड़ी मायाओं का प्रयोग करने में कुशल हो, मैं सीता को जनस्थान से बलपूर्वक हर ले आऊंगा। तुम सोने के मृग का रूप धारण करके जाना। सीता अवश्य अपने पति से उसे लाने के लिए कहेगी। उस समय मैं उसे हर लूंगा। यह सुनकर मारीच का मुख सूख गया। फिर उसने रावण को समझाना प्रारम्भ किया कि वे बड़े धर्मनिष्ठ हैं। पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वनवास भोग रहे हैं। मैं यही ठीक समझता हूँ कि राम के साथ युद्ध करने का विचार छोड़कर तुम लौट जाओ। मैं तुम्हें एक बात और बताता हूँ :

एक समय की बात है कि मैं अपने पराक्रम के अभिमान में पृथ्वी का चक्कर लगा रहा था। उस समय मुझमें एक हजार हाथियों का बल था। मैं ऋषियों का मांस खाता हुआ दण्डकारण्य में विचरण कर रहा था। महर्षि विश्वामित्र को मुझसे भय हो गया था, वे राजा दशरथ के पास गये और श्रीराम को अपनी रक्षा के लिए माँगा तथा अन्त में श्रीराम को

लेकर अपने आश्रम में आये। श्रीराम में तब जवानी के चिह्न भी नहीं प्रकट हुए थे। मैंने आश्रम में प्रवेश किया, श्रीराम की दृष्टि मुझ पर पड़ी, उन्होंने एक ऐसा तीखा बाण छोड़ा कि मैं सौ योजन दूर समुद्र में जा गिरा। जब चेत आया तो मैं लंकापुरी आया। यदि मेरे मना करने पर भी तुम राम से विरोध करोगे तो अन्त में अपने जीवन से हाथ धो बैठोगे। मारीच ने विनाश का पूरा वर्णन करते हुए कहा : उस समय तो बच गया, किन्तु तब भी मैं उनके विरोध से बाज नहीं आया। एक दिन दो राक्षसों के साथ मृग का ही रूप धारण करके दण्डक वन में गया। दण्डकारण्य में धर्मानुष्ठान में लगे हुए तापसों को मार कर रक्त पीना और मांस खाना मेरा काम था। उसी अवस्था में मैं लक्ष्मण के पास पहुँचा। पिछले वैर का स्मरण कर मैंने मृग के ही रूप में राम पर प्रहार करना चाहा। श्रीराम ने तीन बाण हमारी ओर चलाये। मैं तो पहले से जानता था, इसलिए चालाकी से उछल कर भाग निकला, परन्तु दोनों राक्षस मारे गये। इस बार राम के वाण से छुटकारा पाने के बाद मैं संन्यास लेकर तपस्या में लग गया। मुझे प्रतिक्षण राम ही दिखाई पड़ते हैं। मैं बहुत भयभीत रहता हूँ। तुम मेरे बन्धु हो। मैं तुम्हारे हित के लिए ये बातें कह रहा हूँ। युद्ध में तुम राम से पराजित हो जाओगे।

मारीच का कथन उचित था, तो भी रावण ने उसकी बात नहीं मानी। काल के वश होकर रावण कठोर वाणी में बोला–तुम्हारे इन वचनों द्वारा मूर्ख, पापाचारी और विशेषतया मनुष्य राम के साथ युद्ध करने तथा उसकी स्त्री का अपहरण करने के निश्चय से मैं विचलित नहीं होऊंगा। तुम मेरे प्रयासों को सिद्ध करने का मार्ग बताओ। जो अपना कल्याण चाहता है, उस मंत्री को राजा के सर्वथा अनुकूल बात करनी चाहिये। अब तुम्हें मेरी सहायता के लिए जो कार्य करना है वह सुनो। तुम स्वर्णमय चर्म से युक्त चितकबरे रंग के मृग हो जाओ और राम के आश्रम के सामने विचरण करो। जब राम तुम्हारा पीछा करते हुए दूर चला जाये तो उसी की आवाज में 'हा सीते! हा लक्ष्मण' की पुकार करना, ताकि लक्ष्मण भी उसका अनुसरण करे। मैं तुम्हारे साथ रथ पर चलूंगा। कार्य होने पर मैं लंका लौट जाऊंगा। तुम यदि मेरी बात नहीं मानते हो तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।

जब रावण ने प्रतिकूल आज्ञा दी तो मारीच ने कठोर वाणी में कहा–किस पापी ने तुम्हें विनाश का यह मार्ग बताया? अच्छे मंत्रियों को चाहिये कि राजा कुमार्ग पर चलने लगे तो रोकें। तुम्हारे मंत्री रोकते नहीं हैं। वे वध के योग्य हैं। जिस राजा का स्वभाव अत्यन्त तीखा हो, जो जनता के प्रतिकूल चलता है, उससे राज्य की रक्षा नहीं हो सकती। यदि तुम श्री राम के आश्रम से सीता का अपहरण करोगे, तब न तो तुम और न मैं ही जीवित बचूंगा। न लंकापुरी रह जायेगी, न राक्षस ही रहेंगे। तुम इस पाप से बचो।

इस प्रकार कठोर बात कहकर मारीच ने फिर दुःखी होकर कहा–चलो, चलें। मैं तो बचूंगा नहीं तथा राम तुम्हारे लिए यमदण्ड के समान हैं। जब तुम दुष्टता पर उतारू हो तो

मैं क्या कर सकता हूँ! लो, यह मैं चलता हूँ। रावण ने प्रसन्नता के साथ मारीच को हृदय से लगा लिया और कहा–अब तो मेरे रथ में शीघ्र बैठ जाओ। वे शीघ्र ही आकाश-मार्ग से राम के आश्रम की ओर चल दिये और दण्डकारण्य में प्रवेश किया तथा रथ को उतार कर रावण ने मारीच से कहा कि जिस कार्य के लिए हम आये हैं, वह शीघ्र करो। मारीच मृग का रूप धारण कर विचरण करने लगा। उसी समय सीता उधर आ निकलीं और उन्होंने उस स्वर्णमय मृग को देखा। उनकी आँखें आश्चर्य से खिल उठीं।

सीता अपने पति श्रीराम को और देवर लक्ष्मण को हथियार लेकर आने के लिए पुकारने लगीं। श्रीराम, लक्ष्मण तुरन्त आ गये। मृग को देखकर लक्ष्मण ने कहा–भय्या! मैं समझता हूँ कि मृग के रूप में मारीच नामक राक्षस आया है। सीता ने लक्ष्मण को रोक कर राम से कहा– यह मृग बहुत सुन्दर है, इसे मन-बहलाव के लिए रखना होगा। यह सदैव मेरे साथ रहेगा और वनवास की अवधि के बाद मेरे परिवारजनों के लिए बहुत विस्मयजनक होगा। सीता की इतनी बातें सुनकर राम ने लक्ष्मण से कहा–सीता को यह मृग पाने की प्रबल इच्छा है। इसके मोहक रूप को तो देखो। यदि यह वैसा ही मृग है जैसा दिखता है, तो इसे पकड़ना होगा। अथवा राक्षस की माया है तो मुझे इसका वध करना ही चाहिये। जैसे वातापि का वध अगस्त्य मुनि ने किया, उसी प्रकार मृगरूपी मारीच का आज मैं वध करूंगा। तुम सावधानी से सीता की रक्षा करो, मैं इसका वध करके चमड़ा लेकर आऊंगा। गृध्रराज जटायु के साथ यहाँ सावधान रहना।

लक्ष्मण को आदेश देकर श्रीराम ने तलवार कमर में बाँध ली तथा धनुष व तरकस लेकर चल दिये। राम को आते देखकर मृग छिप गया। परन्तु फिर उनके दृष्टि-पथ में आ गया। वह पीछे की ओर मुड़ कर देखता, फिर आगे भागता था। कभी छलांग लगाकर दूर चला जाता, कभी निकट दिखता, कभी अदृश्य हो जाता, फिर दिखाई पड़ने लगता। इस प्रकार वह श्रीराम को आश्रम से बहुत दूर खींच लाया। उसने श्रीराम को काफी छकाया, अन्त में उन्होंने क्रुद्ध होकर मृगरूपधारी मारीच को वाण से मार दिया। वह उछला और पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा गर्जना करने लगा। उसने कृत्रिम रूप त्याग दिया और राम के ही समान स्वर में 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' कहकर पुकारा। उसके वास्तविक रूप को देखकर श्रीराम को लक्ष्मण की बात स्मरण आयी और वे सीता की चिन्ता करने लगे। उन्हें लगा कि मेरी ही आवाज में 'हा सीते! हा लक्ष्मण' सुनकर लक्ष्मण की क्या स्थिति हुई होगी! वे तुरन्त आश्रम की ओर चले।

पति के स्वर से मिलता-जुलता शब्द सुनकर सीता ने लक्ष्मण से कहा–भय्या! जाओ, श्री राम की सुध लो। मैं घबरा उठी हूँ। सीता के ऐसा कहने पर भी भाई के आदेश के अनुसार लक्ष्मण नहीं गये। इससे सीता क्षुब्ध हो गयीं और कहने लगीं–तुम भाई के शत्रु जान पड़ते हो। मैं जान गयी हूँ, तुम मुझ पर अधिकार करने लिए श्रीराम का विनाश चाहते हो।

ऐसे अनेक प्रकार के उलाहने देने लगीं। उस समय लक्ष्मण बोले–आप विश्वास करें, कोई भी राम को परास्त नहीं कर सकता। मैं आपको इस वन में अकेली नहीं छोड़ सकता। उन्होंने अनेक प्रकार से सीता को समझाया। सीता को बड़ा क्रोध आया और वे लक्ष्मण के प्रति कठोर बातें कहने लगीं–अनार्य! निर्दय क्रूरकर्मा! मैं तुझे भलीभाँति समझती हूँ। तेरे मन में पापपूर्ण विचार है। तू अपने भाव को छिपाकर वन में साथ आया है। या फिर तुझे भरत ने भेजा है। परन्तु तेरा या भरत का मनोरथ सिद्ध नहीं होगा। मैं तेरे सामने ही अपने प्राण त्याग दूंगी। मैं राम के बिना एक पल नहीं रह सकती। सीता ने जब इस प्रकार रोंगटे खड़े करने वाली बातें कहीं, तो लक्ष्मण ने कहा–देवी! मैं आपकी बात का प्रत्युत्तर नहीं दे सकता। आप मेरे लिए आदरणीया हैं। ऐसी अनुचित बात मुँह से निकालना स्त्रियों के लिए आश्चर्य की बात नहीं है। नारियों का ऐसा स्वभाव बहुधा देखा जाता है। आपकी बातें मेरे कानों में तपाये हुए लोहे की भाँति लगी हैं। मैं यह सह नहीं सकता। सभी प्राणी साक्षी होकर सुनें। मैंने न्याययुक्त बात कही है, फिर भी आपने कठोर बातें कही हैं। धिक्कार है आपको जो आप मुझ पर ऐसा सन्देह करती हैं। अच्छा, अब मैं वहाँ जाता हूँ जहाँ भय्या श्रीराम गये हैं। सुमुखि! आपका कल्याण हो, वन की समस्त देवता आप की रक्षा करें। क्या मैं श्रीराम के साथ लौटकर आपको सकुशल देख सकूंगा? लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सीता रोने लगीं और कहा–लक्ष्मण! मैं राम से बिछुड़ने पर गोदावरी नदी में समा जाऊंगी, या फाँसी लगा लूंगी, या जलती आग में प्रवेश कर जाऊंगी। लक्ष्मण के सामने यह प्रतिज्ञा करके वे छाती पीटने लगीं। उस समय लक्ष्मण ने दोनों हाथ जोड़कर सीता को प्रणाम किया और श्रीराम के पास चल दिये।

लक्ष्मण के जाने के बाद रावण को अवसर मिल गया। उसने संन्यासी का वेष धारण किया और सीता के समीप गया। उन्हें देखते ही वह वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगा और उनकी प्रशंसा करते हुए पूछा कि पीताम्बर धारण करने वाली सुन्दरी! तुम कौन हो? फिर अनेक प्रकार से उनके रूप का वर्णन करने लगा। ब्राह्मण वेश में पधारे हुए रावण को देखकर सीता ने अतिथि-सत्कार के लिए उपयोगी सामग्रियों द्वारा उसका पूजन किया और बैठने का आसन देकर कहा–ब्रह्मन् ! भोजन तैयार है, ग्रहण कीजिये। रावण के पूछने पर स्वयं ही उन्होंने अपना परिचय दिया तथा कहा–ब्रह्मन् ! अब आप भी अपने नाम, गोत्र और कुल का ठीक-ठीक परिचय दीजिये। इस प्रकार पूछने पर कठोर शब्दों में रावण ने कहा–जिसका नाम लेने से सब थर्रा जाते हैं, मैं वही रावण हूँ। तुम चलकर मेरी पटरानी बनो। मेरी राजधानी का नाम लंका है। रावण के ऐसा कहने पर सीता कुपित हुई तथा तिरस्कार से बोलीं–मैं श्रीराम की ही अनुरागिणी हूँ। पापी निशाचर! तू सियार है, मैं सिंहिनी हूँ; मैं तेरे लिए दुर्लभ हूँ। तेरा इतना साहस! अब तू मृत्यु के निकट आ पहुँचा है। अत्यन्त सन्तापकारी बात कहकर सीता रोष से काँपने लगीं। सीता को काँपते देखकर वह भय दिखाने के लिए अपने बल तथा पराक्रम का परिचय देने लगा।

अपने पराक्रम की अनेक बातें कहकर रावण ने अपने हाथ पर हाथ मारकर शरीर को बहुत बड़ा बना लिया और सौम्य रूप त्याग कर काल के समान विकराल अपना स्वाभाविक रूप धारण कर लिया। वह दस मुख तथा बीस भुजाओं से संयुक्त हो गया तथा निकट जाकर सीता को पकड़ लिया। बायें हाथ से उसने सीता के केशों सहित मस्तक को पकड़ा तथा दाहिना हाथ उनकी दोनों जाँघों के नीचे लगाकर उन्हें उठा लिया और तत्काल रथ पर बिठा दिया। सीता 'हे राम!' कहकर उच्च स्वर से पुकारने लगीं। उसी अवस्था में उन्हें लेकर रावण आकाश में उड़ गया। सीता विलाप करने लगीं। तभी सीता ने एक वृक्ष पर बैठे गृध्रराज जटायु को देखा और कहा कि यह मुझे हर ले जा रहा है, यह समाचार आप श्रीराम व लक्ष्मण को बता दीजियेगा।

जटायु उस समय सो रहे थे। उसी अवस्था में उन्होंने सीता की करुण पुकार सुनी। सुनते ही आँखें खोलीं तो उन्होंने सीता और रावण को देखा। रावण को लक्ष्य करके वे बोले—रावण! तुम्हें ऐसा निन्दित कार्य नहीं करना चाहिये। उसे अनेक प्रकार का उपदेश करने लगे और बोले—रावण! बाप-दादों से प्राप्त इस पक्षियों के राज्य का पालन करते हुए मुझे अब तक साठ हजार वर्ष बीत गये। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, तुम नवयुवक हो। फिर भी तुम सीता को लेकर नहीं जा सकोगे।

जटायु के ऐसा कहने पर रावण क्रोध से आँखें लाल करके पक्षिराज की ओर दौड़ा। उस समय दोनों में बड़ा अद्भुत युद्ध होने लगा। रावण ने भयंकर वाणों की वर्षा कर दी। जटायु के शरीर में बहुत से घाव कर दिये। रावण ने वाणों द्वारा गृध्रराज को क्षत-विक्षत कर दिया। जटायु वाणों की परवाह न करके उस राक्षस पर टूट पड़े और भयंकर हानि पहुँचायी। उसका धनुष टूट आया, रथ चौपट हो गया। तब रावण सीता को गोद में लिये-लिये पृथ्वी पर गिर पड़ा। रथ टूट जाने से रावण को धरती पर पड़ा देख सभी प्राणी गृध्रराज की प्रशंसा करने लगे। वृद्धावस्था के कारण पक्षिराज को थका देख रावण फिर सीता को लेकर आकाश में उड़ चला। उसके पास एक तलवार शेष रह गयी। जटायु फिर रावण की ओर दौड़े और उस पर अनेक प्रकार के प्रहार करने लगे। तभी रावण ने तलवार निकाली तथा जटायु के दोनों पंख, पैर, तथा पार्श्वभाग काट डाले। पंख कट जाने से जटायु पृथ्वी पर गिर पड़े। सीता दुःख से व्याकुल होकर जटायु की ओर दौड़ीं और धराशायी हुए जटायु को पकड़ कर रोने लगीं। वे 'हे राम! हे लक्ष्मण!' की पुकार करने लगीं। रावण सीता की ओर दौड़ा और उनके केश पकड़ लिये। सीता 'हा राम! हा राम!' कह कर रो रही थीं। लक्ष्मण को भी पुकार रही थीं। उसी अवस्था में रावण उन्हें लेकर आकाश मार्ग से चल दिया। सीता के केशों में गुँथे फूल बिखर कर सब ओर पृथ्वी पर गिर रहे थे। उनका एक रत्नजटित नूपुर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार सीता के आभूषण, एक-एक करके गिरने लगे।

हरी जाती हुई सीता रोती हुई रावण से बोलीं–ओ नीच रावण! तुझे इस कुकर्म से लज्जा नहीं आ रही है? उसे अनेक प्रकार से फटकार कर उन्होंने कहा–मेरे तिरस्कार से कुपित होकर मेरे पतिदेव तेरा विनाश करेंगे।

मार्ग में सीता ने एक पर्वत-शिला पर पाँच श्रेष्ठ वानरों को बैठे देखा। यह सोच कर कि ये कुछ श्रीराम को दे सकें, अपने कौशेय उत्तरीय (रेशमी चादर) में आभूषण रखकर नीचे फैंक दिये। रावण यह नहीं देख सका। तीव्रगति से चलकर रावण लंकापुरी में प्रवेश कर गया। उसने जाकर अन्तःपुर में भयंकर पिशाचिनों को बुलाकर कहा कि कोई भी स्त्री या पुरुष मेरी आज्ञा के बिना सीता को देखने या मिलने न पाये। जिस वस्तु की इच्छा हो वह इन्हें दी जाय। अन्तःपुर से बाहर निकल कर उसने आठ महापराक्रमी राक्षसों को तत्काल जनस्थान जाने के लिए कहा और बोला–राम ने खर-दूषण सहित वहाँ राक्षसों को मार दिया है। मेरा उनसे बड़ा भारी और भयंकर वैर हो गया है। तुम लोग राम का समाचार जानो कि वे क्या कर रहे हैं।

राक्षसों को जनस्थान जाने की आज्ञा देकर सीता को देखने के लिए उसने अन्तःपुर में प्रवेश किया। सीता दुःख में डूबी बैठी थीं। रावण ने वहाँ पहुँचकर उन्हें बलपूर्वक अपना सुन्दर भवन दिखाया और सीता से अपने वैभव का वर्णन करने लगा तथा कहा कि मेरी भार्या बन जाओ, मेरे राज्य को कोई भी ध्वस्त नहीं कर सकता। तुम्हारे इन कोमल एवं स्निग्ध चरणों पर मैं अपने दसों मस्तक रख रहा हूँ, मुझ पर कृपा करो। मैं सदा तुम्हारे अधीन रहने वाला दास हूँ। यह कहकर वह मन ही मन मानने लगा कि यह अब मेरे अधीन हो गयी।

रावण के ऐसा कहने पर सीता तिनके की ओट करके, निर्भय होकर बोलीं–श्रीराम ही मेरे आराध्य देवता और पति हैं। तू युद्ध में मारा जायेगा। तू समझ ले कि तेरे प्राण अब चले गये। सारे राक्षसों और तेरे अन्तःपुर के विनाश की घड़ी आ गयी। राक्षसाधम! तू महापापी है, इसलिए मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। तू इस संज्ञाशून्य जड़ शरीर को बाँध कर या काट कर रख ले, मैं स्वयं इस शरीर को नहीं रखना चाहती।

रावण ने भय दिखाने वाली बात कहते हुए कहा कि मैं तुम्हें बारह महीने का समय देता हूँ, तुम स्वेच्छा से मेरे पास आ जाओ, अन्यथा मेरे रसोइये प्रातराश (कलेवा) के लिए तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। तत्पश्चात् वह राक्षसियों से बोला–इस सीता का अहंकार दूर करो। फिर उसने सीता को अशोक वाटिका में ले जाकर रखने का आदेश दिया। वहाँ भी विकराल रूप और नेत्रों वाली राक्षसियों की डाँट-फटकार सुनने के कारण सीता को शान्ति नहीं मिली और श्रीराम का स्मरण करते हुए वे अचेत-सी हो गयीं।

जब सीता का लंका में प्रवेश हो गया तो ब्रह्मा जी ने इन्द्र से कहा–सीता दुःख के कारण चिन्ताओं में डूबी रहती हैं। वे भोजन नहीं करतीं। यदि वे प्राण त्याग देंगी तो हमारे

उद्देश्य की सिद्धि में संदेह उपस्थित हो जायेगा। तुम जाकर उन्हें उत्तम हविष्य प्रदान करो। इन्द्र ने निद्रा से कहा कि तुम राक्षसों को मोहित करो। इस बीच इन्द्र सीता जी के पास पहुँचे और कहा कि मैं आपके उद्धार में सहायता करूंगा। राम बड़ी सेना के साथ समुद्र पार करके आयेंगे। आप इस हविष्य को लेकर खा लेंगी तो आपको हजारों वर्षों तक भी भूख और प्यास नहीं सतायेगी। सीता ने कहा—मुझे कैसे विश्वास हो कि आप इन्द्र ही पधारे हैं? मैंने श्रीराम और लक्ष्मण के समीप देवताओं के लक्षण देखे हैं, आप उन लक्षणों को दिखाइये। इन्द्र ने वैसा ही किया। पृथ्वी का स्पर्श किये बिना आकाश में निराधार खड़े रहे। दिव्य वस्त्र और पुष्प धारण किये। उनके लक्षणों को पहिचान कर सीता बहुत प्रसन्न हुईं और कहा—मैं आपके दिये हविष्य को खाऊंगी। देवराज इन्द्र वापस लौट गये।
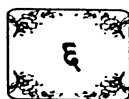
सीताहरण जान कर राम का विलाप और सीता की खोज; युद्ध के चिह्न देखकर राम का क्रोध, लक्ष्मण द्वारा प्रबोधन; आगे चलने पर जटायु से भेंट और वार्तालाप; जटायु का प्राणान्त और राम द्वारा अन्तिम संस्कार।

मारीच का वध करके श्रीराम आश्रम की ओर लौटे। मारीच द्वारा मरते समय 'हा लक्ष्मण' आवाज के कारण श्रीराम सोच रहे थे कि कहीं सीता के आग्रह पर लक्ष्मण सीता को अकेली छोड़कर न आ जाय। इतने में ही उन्हें लक्ष्मण आते दिखाई दिये। निर्जन वन में सीता को अकेली छोड़कर आये लक्ष्मण की श्रीराम ने निन्दा की और कहा कि तुम्हारे कारण सीता संकट में पड़ गयी होगी। मैं उसके बिना एक पल नहीं रह सकता। अपने दुःखी अनुज लक्ष्मण को इस प्रकार कोसते हुए श्रीराम आश्रम के निकटवर्ती स्थानों को सूना देख विषाद में डूब गये। अन्यत्र भी देखा, परन्तु सर्वत्र सूना देखकर वे व्यथित हो गये।

मार्ग में ही राम ने लक्ष्मण से पूछा कि तुम सीता को अकेली छोड़कर क्यों आ गये? वे श्रीराम से बोले—मैं स्वयं अपनी इच्छा से नहीं आया। उनके कठोर वचनों से प्रेरित होकर आना पड़ा। फिर समस्त वृत्तांत बताया। उसे सुनकर भी श्रीराम ने कहा कि तुमने बड़ा बुरा किया।

श्रीराम उतावली के साथ कुटिया में गये। उसे सूनी देखकर उनका मन उद्विग्न हो गया। सब ओर मृगचर्म और कुश बिखरे हुए थे। सभी सामान अस्त-व्यस्त थे। श्रीराम विलाप करने लगे—हाय, सीता को किसी ने हर तो नहीं लिया! उन्होंने सीता को वन में चारों ओर ढूँढा, किन्तु कहीं पता नहीं लगा। वे वृक्षों से पूछने लगे। अपनी प्रियतमा की खोज करते हुए वे कभी-कभी पागलों की सी चेष्टा करने लगते थे। उन्होंने उन्हें खोजने में बड़ा भारी परिश्रम किया।

राम महान् शोक में डूब गये। उस समय लक्ष्मण बोले–आप विषाद न करें। आप मेरे साथ खोजने का प्रयास करें। दोनों ही खोज में लग गये। दुःख से संतप्त लक्ष्मण ने अपने भाई से कहा– जैसे विष्णु ने राजा बलि को बाँध कर यह पृथ्वी प्राप्त कर ली थी, उसी प्रकार आप भी जानकी को पा जायेंगे। राम व्याकुल ही रहे और रोने लगे। इससे लक्ष्मण भी घबरा गये। श्रीराम अनेक प्रकार के विगत-स्मरण के साथ विलाप करने लगे। फिर लक्ष्मण ने कहा–आर्य! आप शोक छोड़ कर धैर्य धारण करें। श्रीराम ने आर्त होकर लक्ष्मण के कथन के औचित्य पर कोई ध्यान नहीं दिया।

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम गोदावरी नदी के तट पर जाकर पता लगाओ। लक्ष्मण शीघ्र गति से गये और लौट कर बताया कि वहाँ नहीं हैं। राम स्वयं गये, पूछा–सीता कहाँ गयी? परन्तु किसी ने उत्तर नहीं दिया। राम ने कहा–लक्ष्मण! ये मृग बारम्बार देख रहे हैं, ये कुछ कहना चाहते हैं। श्रीराम ने जब उनसे पूछा तो सहसा मृग उठ खड़े हो गये और आकाश-मार्ग की ओर लक्ष्य कराते हुए दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके दौड़े। लक्ष्मण ने राम से कहा कि मृग जो इंगित कर रहे हैं उससे हम नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) दिशा की ओर चलें, सम्भव है कोई समाचार मिल जाय। श्रीराम लक्ष्मण के साथ दक्षिण दिशा की ओर चलते हुए ऐसे मार्ग पर पहुँचे जहाँ कुछ फूल गिरे दिखाई दिये। श्रीराम ने कहा कि मैं इन फूलों को पहचानता हूँ। ये सीता के केशों के हैं। फिर वे कुपित होकर पर्वत से बोले–तू मुझे सीता का दर्शन करा दे। पर्वत ने सीता के कुछ चिह्न प्रकट कर दिये। फिर वे पर्वत पर अधिक कुपित होकर उसे नष्ट करने को उद्यत हुए, इतने में ही उन्हें भूमि पर राक्षस का विशाल पद-चिह्न दिखाई दिया और सीता के भी चरण-चिह्न दिखाई पड़े। टूटे धनुष, तरकस, छिन्न-भिन्न रथ को देखकर श्रीराम घबरा गये। वे बोले–लक्ष्मण! ये सीता के आभूषण के नूपुर (घुँघरू) बिखरे पड़े हैं। अनेक हार भी टूटे पड़े हैं। लक्ष्मण! यदि देवगण सीता को लाकर मुझे नहीं देते तो तीनों लोकों को मर्यादा से भ्रष्ट कर दूंगा। जब तक सीता नहीं मिलती, मैं समस्त संसार को संतप्त करता रहूंगा। लक्ष्मण! जैसे बुढ़ापा, मृत्यु, काल और विधाता समस्त प्राणियों पर प्रहार करते हैं, किन्तु कोई उन्हें रोक नहीं पाता, उसी प्रकार मेरे क्रोध का कोई निवारण नहीं कर सकता।

राम को विनाश के लिए सन्नद्ध देखकर लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोले–आप क्रोध के वशीभूत होकर अपनी प्रकृति का परित्याग न करें। आप किसी एक के अपराध से समस्त लोकों का संहार न करें। मैं पता लगाता हूँ कि यह टूटा रथ किसका है। राजन् ! जिसने सीता का अपहरण किया है, उसी का अन्वेषण करना चाहिये। हम उसे सर्वत्र खोजेंगे। फिर विलाप कर रहे राम के पाँव दबाते हुए लक्ष्मण समझाने लगे–आप दुःखी होकर समस्त संसार को संतप्त करने का न सोचें। अनेक लोग बहुत प्रकार के कष्ट पाते हैं। आप जैसे

कुकुत्स्थवंशी इस दुःख को नहीं सहन करेंगे तो और कौन करेगा? उस पापी शत्रु का पता लगाकर उसी को नष्ट करना चाहिये।

लक्ष्मण की बात को श्रीराम ने स्वीकार किया और बोले–कहाँ जायें, लक्ष्मण! कैसे सीता का पता लगायें? लक्ष्मण ने कहा– इसी जनस्थान में खोज करनी है। फिर वे आगे खोजने के लिए बढ़े तो उन्हें पक्षिराज जटायु रुधिर से लथपथ, पृथ्वी पर गिरे पड़े दिखाई दिये। गृध्रराज को देखकर श्रीराम ने कहा कि अवश्य ही कोई राक्षस जान पड़ता है जिसने सीता को खा लिया होगा। उसी समय जटायु अत्यन्त दीन वाणी में श्रीराम से बोले–जिसे तुम खोज रहे हो, उस सीता को और मेरे प्राणों को रावण ने हर लिया। जब मेरी दृष्टि पड़ी तो सीता की सहायता के लिए दौड़ा और घायल होकर गिर पड़ा। तदनन्तर जटायु ने समस्त विवरण बताया। श्रीराम ने अपना धनुष फेंक दिया तथा जटायु को गले से लगा लिया और लक्ष्मण के साथ रोने लगे। श्रीराम ने कहा–ये पक्षिराज हमारे पिता के मित्र थे। दुर्भाग्यवश मारे जाकर पड़े हैं। फिर पूछा–तात! सीता कहाँ चली गयी? यदि आप पुनः बोल सकते हों तो सब विवरण बताइये। उस रावण का बल-पराक्रम तथा रूप कैसा है? उसका घर कहाँ है? जटायु ने लड़खड़ाती वाणी से कहा कि रावण ने विपुल माया का आश्रय लेकर सीता का अपहरण किया और दक्षिण दिशा में ले गया है। रावण सीता को विन्द मुर्हूत में ले गया, उसमें खोया हुआ धन मिल जाता है। सीता आपको मिल जायेगी, अतः आप खेद न करें। रावण विश्रवा का पुत्र और कुबेर का सगा भाई है। इतना कहकर जटायु ने प्राण त्याग दिये। श्रीराम ने कहा–लक्ष्मण! इन पक्षिराज का मैं दाह-संस्कार करूंगा। फिर उन्होंने उन्हें पिण्डदान दिया तथा गोदावरी-तट पर जाकर जलाञ्जलि दी और वन में आगे बढ़े।
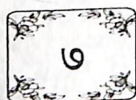
कबन्ध राक्षस से टकराव; कबन्ध-वध; शापमुक्त कबन्ध द्वारा सुग्रीव से सहायता लेने का परामर्श; शबरी को दर्शन; पम्पा सरोवर पहुँचना।

आगे बढ़ते हुए वे ऐसे मार्ग पर आ गये जिस पर लोगों का आना-जाना नहीं होता था। वे उस दुर्गम वन को लांघकर आगे निकल गये। तदनन्तर वे एक प्रसिद्ध वन क्रौञ्चारण्य के भीतर गये तथा उस वन को पार करके मतंग मुनि के आश्रम के पास गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक गुफा देखी और उन्हें एक विशाल, विकराल राक्षसी दिखाई दी। उन्हें देखकर वह आगे आयी और लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर कहा– आओ, हम दोनों रमण करें। मेरा नाम अयोमुखी है, तुम मेरे प्यारे पति हो। लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसकी नाक, कान, स्तन तलवार से काट डाले। वह भाग गयी। फिर वे दोनों एक गहन वन में जा

पहुँचे। उस वन में जब वे सीता की खोज कर रहे थे, उन्हें बड़ा घोर शब्द सुनाई दिया। इतने में उन्हें एक विशालकाय राक्षस दिखाई पड़ा जो देखने में बहुत बड़ा था, परन्तु उसका न मस्तक था न गला। कबंध अर्थात् धड़ मात्र स्वरूप था तथा पेट में मुँह बना हुआ था। छाती में ललाट था तथा दहकती हुई भयंकर आँखें थीं। उसकी भुजाएं एक-एक योजन लम्बी थीं। वह उनके सामने खड़ा हो गया और दोनों भाइयों को पकड़ लिया। लक्ष्मण घबरा गये, उन्होंने राम से कहा कि आप मुझे इसे सौंप कर अपने को छुड़ा लीजिये। राम ने कहा– धैर्य रक्खो। राक्षस ने कहा कि मैं भूख से पीड़ित हूँ, तुम दोनों खड़े क्यों हो ? वह उन्हें खाने को उद्यत हुआ, तभी उन्होंने अपनी तलवारों से उसकी दोनों भुजाएं काट डालीं। वह नीचे गिर पड़ा और पूछा–वीरो ! तुम कौन हो? श्रीराम ने अपना परिचय दिया और लक्ष्मण ने उससे उसके विषय में पूछा।

कबन्ध ने बताया–श्री राम! पूर्वकाल में मेरा रूप महान् और बल तीनों लोकों में विख्यात था। ऐसा होने पर भी मैं राक्षस रूप धारण करके इधर-उधर घूमता तथा लोगों को और ऋषियों को भी डराया करता था। ऐसे ही एक दिन मैंने स्थूलशिरा नामक महर्षि को कुपित कर दिया। उन्होंने शाप दे दिया कि सदा के लिए तुम्हारा यही क्रूर और निन्दित रूप रह जाय। यह सुनकर मैंने महर्षि से शाप के अन्त की प्रार्थना की। तब उन्होंने कहा कि जब श्रीराम और लक्ष्मण तुम्हारी दोनों भुजाएं काट कर वन में जलायेंगे, तब तुम पुनः अपने रूप में आ जाओगे। मेरा जो यह कबन्ध रूप है वह इन्द्र के क्रोध से प्राप्त हुआ। राक्षस होने के पश्चात् मैंने तपस्या द्वारा ब्रह्माजी को संतुष्ट किया। उन्होंने दीर्घजीवी होने का वर दिया। अहंकार में आकर मैंने देवराज पर आक्रमण किया। इन्द्र ने वज्र का प्रहार किया जिससे मेरी जाँघें और मस्तक मेरे शरीर में घुस गये। उसने मुझे यमलोक नहीं पहुँचाया। मेरे यह कहने पर कि अब मैं कैसे आहार ग्रहण करूंगा, इन्द्र ने मेरी भुजाएं एक-एक योजन लंबी कर दीं तथा पेट में मुख बना दिया और इन्द्र ने ही मुझे बतला दिया था कि जब राम-लक्ष्मण तुम्हारी भुजा काटेंगे, तभी तुम स्वर्ग में जाओगे। श्रीराम ने उसे जलाने का प्रबन्ध किया तथा उससे पूछा कि तुम बताओ कि सीता को कौन ले गया? उसने कहा–श्रीराम! मुझे दिव्य ज्ञान नहीं है; जब मेरा दाह हो जायेगा तो अपने स्वरूप को प्राप्त करके मैं आपको ऐसे व्यक्ति का पता बता सकूंगा जो आपको इस विषय में बतायेगा।

तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण ने उसे एक घाटी के गर्त में डालकर आग लगा दी। तब वह कबन्ध दो निर्मल वस्त्र और दिव्य पुष्पों का हार धारण किये उठ खड़ा हो गया और एक विमान पर जा बैठा तथा अन्तरिक्ष में स्थित होकर श्रीराम से बोला–लोक में छः युक्तियाँ हैं जिनके द्वारा राजाओं को सब कुछ प्राप्त होता है, वे हैं–संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा समाश्रय। वह ऐसे ही पुरुष से सहायता पाता है जो दुर्दशा में हो। ऐसे पुरुष का नाम सुग्रीव है। वे वानर जाति के हैं तथा कुपित होकर उनके भाई वाली ने उन्हें घर से निकाल

दिया है। वे इस समय ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हैं जो पम्पा सरोवर तक फैला है। वे सीता की खोज में आपके लिए सहायक होंगे। वे वानरों के साथ रहकर आपकी पत्नी की खोज करा लेंगे।

कबन्ध ने तदनन्तर उन्हें ऋष्यमूक पर्वत पर जाने का मार्ग बताया। उसने मार्ग का विस्तृत वर्णन किया तथा बताया कि तपस्विनी शबरी मार्ग में मिलेगी। वह आपके दर्शन करके स्वर्ग लोक चली जायेगी। सुग्रीव तक पहुँचने की सब बातें बता कर कबन्ध ने कहा कि अब आप यात्रा करें और उनसे आज्ञा लेकर स्वयं भी उसने प्रस्थान किया। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण कबन्ध के बताये हुए पम्पा सरोवर के मार्ग पर पश्चिम दिशा की ओर चल दिये। रात में एक पर्वत-शिखर पर निवास करके वे पम्पा सरोवर के पश्चिमी तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने शबरी का आश्रम देखा। आश्रम पर जाकर शबरी से मिले। शबरी सिद्ध तपस्विनी थी, उसने दोनों भाइयों के चरणों में प्रणाम किया। सत्कार-ग्रहण के बाद श्रीराम शबरी से बोले—क्या तुम्हारी तपस्या बढ़ रही है? तुमने क्रोध और आहार को वश में कर लिया है? इस प्रकार पूछने पर शबरी उनके सामने खड़ी होकर बोली—आपके दर्शन मिलने से ही मेरी तपस्या में सिद्धि प्राप्त हुई है। मेरा जन्म सफल हुआ, अब मुझे दिव्य धाम की प्राप्ति होगी। जब आप चित्रकूट पधारे थे, उसी समय मेरे गुरुजन विमान पर बैठकर दिव्य लोक चले गये और कहा था कि इस आश्रम पर श्री राम और लक्ष्मण पधारेंगे तथा उनका दर्शन करके तू श्रेष्ठ एवं अक्षय लोकों में जायेगी। मैंने आपके लिए पम्पा-तट पर नाना प्रकार के जंगली फल-मूलों का संचय किया है। उसकी बातें सुनकर श्रीराम ने उससे कहा—तपोधने! मैंने कबन्ध से तुम्हारे गुरुजनों का यथार्थ प्रभाव सुना है। मैं उनके उस प्रभाव को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।

इसे सुनकर शबरी ने दोनों भाइयों को महान् वन का दर्शन कराते हुए कहा—यह मतंग वन के नाम से विख्यात है। इसी स्थान पर गुरुजनों ने गायत्री मंत्र के जप से विशुद्ध हुए अपने देहरूपी पञ्जर मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्नि को होम दिये थे। यह वेदी है जहाँ वे अपने हाथों से देवताओं को फूलों की बलि चढ़ाया करते थे। आज भी यह वेदी अपने तेज से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित कर रही है। उनके चिन्तनमात्र से यहाँ सात समुद्रों का जल प्रकट हो गया; यह सप्तसागर तीर्थ है, इसे देखिये। इसमें स्नान करके उन्होंने जो वस्त्र वृक्षों पर फैला दिये थे वे आज तक नहीं सूखे, फूलों की जो मालाएं बनायी थीं वे आज भी मुरझायीं नहीं। आपने सब देख लिया तथा सब बातें सुन लीं, अब मैं आपकी आज्ञा लेकर इस देह का परित्याग करना चाहती हूँ। श्रीराम ने शबरी से कहा—तुमने बड़ा सत्कार किया, अब अपनी इच्छा के अनुसार अभीष्ट लोकों की यात्रा करो। इस प्रकार आज्ञा देने पर शबरी ने अपने को आग में होम कर प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी शरीर प्राप्त कर किया और स्वर्ग लोक चली गयी।

शबरी को दर्शन

उसके उपरान्त श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– यहाँ बहुत सी आश्चर्यजनक बातें हैं, हरिण और बाघ एक दूसरे पर विश्वास करते हैं। आओ, अब हम दोनों पम्पा सरोवर के तट पर चलें। नाना प्रकार के वृक्षों की शोभा निहारते हुए दोनों पम्पा सरोवर के समीप आये। वहाँ उन्होंने मतंगसरस नामक कुण्ड में स्नान किया। उनके हृदय में सीता की वियोग-व्यथा जाग उठी। श्रीराम विलाप करने लगे, उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि वानरराज सुग्रीव के पास चलो। फिर महान् शोक को प्रकट करते हुए वे लक्ष्मण के साथ उस मनोरम पुष्करिणी पम्पा में उतरे। वन की शोभा निहारते हुए उन्होंने पम्पा को देखा और पम्पा के जल में प्रवेश किया।

(अरण्यकाण्ड पूरा हुआ)

किष्किन्धा-काण्ड
प्रथम सर्ग

राम-लक्ष्मण के पास हनुमान् का आगमन; सुग्रीव से मैत्री; वाली-वध।

पम्पा नामक पुष्करिणी के पास पहुँचकर सीता की सुधि आ जाने के कारण श्रीराम शोक से व्याकुल हो उठे और लक्ष्मण से बोले–यद्यपि यहाँ का दृश्य बहुत सुहावना है, परन्तु मैं भरत के दुःख और सीता-हरण की चिन्ता के शोक से सन्तप्त हो रहा हूँ। उस वन की शोभा का अनेक प्रकार से वर्णन करते हुए वे सीता के लिए अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। श्री राम को अनाथ की भाँति विलाप करते देख कर लक्ष्मण ने कहा–पुरुषोत्तम श्री राम! आपका भला हो, आप अपने को संभालिये, शोक न कीजिये। आप जैसे पुण्यात्मा पुरुषों की बुद्धि उत्साहशून्य नहीं होती। रावण कहीं भी चला जाय, अब किसी प्रकार भी जीवित नहीं रह सकता। पहले उस पापी राक्षस का पता लगाना है। अतः आप धैर्य को अपनाइये, दीनतापूर्ण विचार त्याग दीजिये। उत्साह ही बलवान् होता है। इससे बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है और उत्साही पुरुष के लिए कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। आप महात्मा एवं कृतात्मा हैं, किन्तु इस समय अपने आपको भूल गये हैं। लक्ष्मण के इस प्रकार समझाने पर श्रीराम ने शोक और मोह का परित्याग करके धैर्य धारण किया। सम्पूर्ण वन का निरीक्षण करते हुए वे आगे को प्रस्थित हुए। ऋष्यमूक पर्वत के समीप सुग्रीव पम्पा के निकट घूम रहे थे। उस समय उन्होंने श्री राम-लक्ष्मण को देखा तो उन्हें भय हुआ कि कहीं वाली ने ही इन्हें भेजा होगा। मतंग ऋषि के शाप से उस वन में वाली का प्रवेश होना कठिन था। परन्तु श्री राम-लक्ष्मण को देखकर अन्य वानर भी भयभीत होकर आश्रम के भीतर चले गये।

सुग्रीव बहुत भयभीत थे। सभी प्रमुख वानर उन्हें चारों ओर से घेर क खड़े हो गये। उन्हें निश्चय हो गया कि ये वाली की ओर से ही आये हैं। उस अवसर पर हनुमान् जी बोले–आप लोग घबराहट छोड़ दीजिये, वाली से कोई भय नहीं है। बुद्धि और विज्ञान से सम्पन्न होकर आप दूसरों की चेष्टाओं के द्वारा उनका मनोभाव समझें। हनुमान् की बात सुनकर सुग्रीव ने कहा–तुम एक साधारण पुरुष की भाँति यहाँ से जाओ और उन दोनों का यथार्थ परिचय प्राप्त करो। उनके मनोभावों को समझो। सुग्रीव के आदेश पर पवनकुमार हनुमान् जी उस स्थान के लिए तत्काल चल दिये।

हनुमान् जी ने अपने कपि रूप का परित्याग करके भिक्षु का रूप धारण कर लिया और दोनों के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनके रूप एवं वीर स्वरूप की प्रशंसा करते हुए पूछा–आप देवतुल्य सुन्दर, महाबली वीर पुरुषों का यहाँ कैसे आना हुआ? आपका परिचय

क्या है? कुछ समय तक श्रीराम ने कोई उत्तर नहीं दिया तो हनुमान् जी ने कहा कि आप लोग उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं? यहाँ सुग्रीव नामक एक श्रेष्ठ वानर हैं जो बड़े धर्मात्मा और वीर हैं। उन्हीं के भेजने पर मैं यहाँ आया हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। सुग्रीव आपसे मित्रता करना चाहते हैं। मैं वायुदेव का वानरजातीय पुत्र हूँ। मेरी जहाँ इच्छा हो, जा-आ सकता हूँ और जैसा चाहूँ रूप धारण कर सकता हूँ। सुग्रीव के प्रिय कार्य के लिए भिक्षु के रूप में आया हूँ। हनुमान् की बात सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए और लक्ष्मण से कहा कि ये वानरराज सुग्रीव के सचिव हैं, इनसे तुम स्नेहपूर्वक बातचीत करो। जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली हो, यजुर्वेद का अभ्यास जिसने नहीं किया हो तथा सामवेद का विद्वान् न हो, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। अनेक प्रकार से हनुमान् जी के वार्तालाप की श्रीराम ने प्रशंसा की। तब लक्ष्मण ने हनुमान् से कहा—सुग्रीव के गुण हमें ज्ञात हो चुके हैं। इधर हम उन्हीं से मिलने आये हैं। आप जो मैत्री चाहते हैं वह हमें स्वीकार है।

तत्पश्चात् हनुमान् जी ने श्रीराम से पूछा कि आप घोर वन में किसलिए आये हैं? श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण ने श्रीराम का परिचय देकर वनवास का कारण बताया और कहा कि मेरे भाई की पत्नी को एक राक्षस ने सूने आश्रम से हर लिया। वह राक्षस कौन है, कहाँ रहता है, इत्यादि बातों का ठीक-ठीक पता नहीं लग रहा है। दनु नामक एक दैत्य ने, जो शाप से राक्षसभाव को प्राप्त हुआ था, बताया कि सुग्रीव उस राक्षस का पता लगा सकते हैं। इसलिए अब मैं और सबके शरणदाता श्रीराम सुग्रीव की शरण में आये हैं। लक्ष्मण की बात सुनकर हनुमान् जी ने कहा—राजकुमारो! आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषों से मिलने की सुग्रीव को भी आवश्यकता है। सौभाग्य की बात है कि आपने स्वयं दर्शन दिये। वे भी राज्य से भ्रष्ट हैं। वाली ने उनकी पत्नी का अपहरण कर लिया। उस भाई ने उन्हें घर से निकाल दिया है तथा भयभीत होकर वे वन में निवास करते हैं। सुग्रीव सीता का पता लगाने में पूर्ण सहायता करेंगे। अच्छा, अब हम लोग सुग्रीव के पास चलें। हनुमान् ने भिक्षु रूप त्याग कर वानर रूप धारण किया और दोनों को पीठ पर बिठाकर वहाँ से चल दिये और ऋष्यमूक पर्वत पर जा पहुँचे।

हनुमान् जी ने श्रीराम व लक्ष्मण का सम्पूर्ण परिचय सुग्रीव को दिया और बताया कि रावण ने इनकी पत्नी सीता का अपहरण कर लिया है, ये उन्हीं की खोज में आपसे सहायता के लिए शरण में आये हैं। ये आपसे मित्रता करना चाहते हैं। सुग्रीव बोला—मैं वानर हूँ, आप सर्ववत्सल नर हैं। आप मैत्री करना चाहते हैं, इसमें मेरा ही सत्कार है। यदि मैत्री आपको रुचती हो तो मेरा यह हाथ फैला है, आप इसे अपने हाथ में ले लें और मैत्री का अटूट सम्बन्ध बना रहे, इसके लिए स्थिर मर्यादा बाँध दें। श्रीराम ने सुग्रीव का हाथ पकड़ लिया और सुग्रीव को छाती से लगा लिया। हनुमान् जी ने दो लकड़ियों को रगड़कर अग्नि प्रकट की और श्रीराम तथा सुग्रीव के मध्य साक्षी के रूप में अग्नि को स्थापित कर दिया। इसके

पश्चात् दोनों ने अग्नि की प्रदक्षिणा की और मित्र बन गये। सुग्रीव ने कहा कि आप मेरे प्रिय मित्र हैं, हम दोनों का सुख-दुःख एक है। फिर सुग्रीव ने अपनी सब व्यथा बतायी। सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम ने कहा कि तुम्हारी पत्नी का अपहरण करने वाले वाली का मैं वध करूंगा।

सुग्रीव ने प्रसन्नतापूर्वक श्रीराम से कहा कि आप शोक त्याग दीजिये, मैं आप की प्राणवल्लभा को अवश्य ला दूंगा। एक दिन मैंने देखा कि कोई राक्षस किसी स्त्री को लिये जा रहा है। वे सीता ही होंगी। वे 'हा राम! हा राम!' पुकारती हुई रो रही थीं तथा रावण की गोद में छटपटाती हुई प्रकाशित हो रही थीं। चार मन्त्रियों सहित मैं यहाँ बैठा था, देवी सीता ने अपना उत्तरीय और आभूषण ऊपर से गिराये। मैं अभी उन्हें लाता हूँ। आप पहचान सकते हैं। ऐसा कहकर वे शीघ्र जाकर वे वस्तुएं ले आये। वस्त्र और आभूषण देखकर श्रीराम के आँसू आ गये। वे रोने लगे और पृथ्वी पर गिर पड़े। श्री राम लक्ष्मण को उनके बारे में सब बताने लगे। लक्ष्मण ने कहा–भैया! मैं न इन बाजूबंदों को और न ही इन कुण्डलों को पहचानता हूँ। प्रतिदिन भाभी के चरणों में प्रणाम किया, इसलिए इन दोनों नूपुरों को अवश्य पहचानता हूँ। श्रीराम ने सुग्रीव से पूछा–वह राक्षस सीता को किस दिशा की ओर ले गया? मैं उसका विनाश कर दूंगा।

सुग्रीव आँखों में आँसू भर कर बोले–मैं, उस राक्षस का निवास कहाँ हैं, कितनी शक्ति है, वह किस वंश का है, इसे नहीं जानता परन्तु प्रतिज्ञा करता हूँ कि इन सब का पता चल जायेगा। आप शोक का त्याग करें। सुग्रीव ने शोक-त्याग के लिए अनेक बातें श्री राम के समक्ष कहीं। स्वस्थचित्त होकर श्रीराम ने कहा कि मित्र के नाते जो उचित था वह तुमने कहा, तुम्हारे आश्वासन से मेरी चिन्ता जाती रही । अब तुम्हारे लिए मुझे जो भी करना हो, वह बताओ।

सुग्रीव बोले कि आप जैसे सहायक के सहयोग से तो देवताओं का राज्य प्राप्त किया जा सकता है, फिर खोये हुए राज्य को पाना कौन बड़ी बात है! मित्र धनी हो या दरिद्र, सुखी हो या दुःखी, अथवा निर्दोष हो या सदोष, वह मित्र के लिए सबसे बड़ा सहायक होता है। श्रीराम ने कहा–सखे! तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है। सुग्रीव पुनः अपनी अवस्था का वर्णन करने लगे, कहा–प्रभो! आप समस्त लोकों को अभय देने वाले हैं। मैं वाली के दुःख से अनाथ हूँ। अतः आप को मुझ पर कृपा करनी चाहिये। श्री राम ने हँसते हुए कहा कि मैं आज ही वाली का वध करूंगा। सुग्रीव ने कहा–रघुनन्दन! वाली मेरा ज्येष्ठ भाई है, फिर भी शत्रु हो गया है। उसका पराक्रम विख्यात है। श्रीराम ने सुग्रीव से पूछा–तुम दोनों भाइयों में वैर पड़ने का कारण क्या है? तदनन्तर सुग्रीव ने यथार्थ कारण बताना प्रारम्भ किया :

मेरा ज्येष्ठ भ्राता वाली हमारे पिता का बड़ा पुत्र होने के कारण राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ। मैं दास की भाँति उसकी सेवा में रहने लगा। उन दिनों मायावी नामक एक दानव था जो मय दानव का पुत्र और दुन्दुभि का बड़ा भाई था। उसके साथ वाली का स्त्री के कारण

वैर हो गया। एक दिन आधी रात के समय मायावी आया और वाली को युद्ध के लिए ललकारने लगा। वह सो रहा था। नींद खुलने पर ललकार सुनकर वह तत्काल वेगपूर्वक घर से निकल पड़ा। मैंने और अंतःपुर की स्त्रियों ने उसे जाने से रोका, परन्तु वह नहीं रुका। तब मैं साथ चला गया। उस असुर ने वाली को और मुझे देखा तो वह भय से थर्रा उठा तथा बड़े वेग से भागा। हम लोगों ने उसका पीछा किया। आगे धरती में एक बहुत बड़ा बिल था। वह उसमें घुस गया। वाली मुझसे बोला कि मैं इसमें प्रवेश करके शत्रु को मारता हूँ, तुम द्वार पर खड़े रहना। मैं भी साथ जाना चाहता था, परन्तु वह अकेला गया। बिल में गये एक वर्ष बीत गया, तब मैंने समझा कि मेरा भाई इस गुफा में कहीं खो गया। सहसा उस बिल से रुधिर की धारा निकली। मैं बहुत दुःखी हुआ। इतने में गरजते हुए असुरों की आवाज भी मेरे कानों में पड़ी। मैंने सोचा कि भाई मारा गया। फिर गुफा के द्वार पर मैंने एक पत्थर की चट्टान रख दी और भाई को जलाञ्जलि देकर शोक से व्याकुल मैं लौट आया। मन्त्रियों ने मुझे राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। उसके पश्चात् वाली दानव को मारकर घर लौटा और मुझे राज्य पर अभिषिक्त देखकर उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। मेरे मंत्रियों को उसने बन्दी बना लिया। मैंने उसका सम्मान किया, परन्तु वह प्रसन्न नहीं हुआ। मैंने सब वृत्तान्त बताया और सारा राज्य लौटा दिया। प्रार्थना की कि मुझ पर क्रोध न करो। वाली ने डाँट कर कहा–तुझे धिक्कार है। उसने अनेक प्रकार से मेरी निंदा की और कहा कि यह सुग्रीव क्रूर और निर्दय है, इसने भ्रातृप्रेम को भुला दिया। ऐसा कहकर उसने मुझे घर से निकाल दिया और मैं इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगा क्योंकि इस स्थान पर आक्रमण करना बहुत कठिन है।

सुग्रीव ने श्रीराम से कहा–प्रभो! आपके वाण प्रज्वलित, तीक्ष्ण एवं मर्मभेदी हैं, इसमें संशय की बात नहीं है, परन्तु वाली का जैसा पुरुषार्थ है वह सब एकचित्त होकर सुन लीजिये। उसके बाद जैसा उचित हो, कीजियेगा। वाली सूर्योदय के पहले ही पश्चिम समुद्र से पूर्व समुद्र तक और दक्षिण सागर से उत्तर तक घूम आता है, फिर भी वह थकता नहीं है। पर्वत के शिखरों को उठा लेता है, सुदृढ़ वृक्षों को तोड़ देता है। पहले की बात है, एक दुन्दुभि नामक असुर था। उसके शरीर में एक हजार हाथियों का बल था। एक दिन वह समुद्र के पास गया और उसके अधिष्ठाता देवता से कहा–मुझे अपने साथ युद्ध का अवसर दो। धर्मात्मा समुद्र उस असुर से बोले–मैं तुमसे युद्ध करने में असमर्थ हूँ, जो तुम्हें युद्ध प्रदान करने में समर्थ हैं वे हिमवान् (हिमालय) हैं। यह सुनकर वह हिमालय जा पहुँचा और वहाँ गर्जना करने लगा। हिमवान् प्रकट हुए और उन्होंने कहा–मैं युद्धधर्म में कुशल नहीं हूँ। दुन्दुभि के नेत्र लाल हो गये और कहा–मुझे उस वीर का नाम बताओ जो युद्ध का अवसर दे। हिमवान् ने क्रुद्ध होकर कहा कि वाली नाम से प्रसिद्ध एक प्रतावी वानर हैं। वे इन्द्र के पुत्र हैं तथा किष्किन्धा नामक पुरी में रहते हैं। वे ही तुम्हें युद्ध का अवसर प्रदान कर सकते

हैं। तत्काल ही दुन्दुभि किष्किन्धा पुरी पहुँचा। वहाँ जाकर गर्जना करने लगा। वाली उस समय अन्तःपुर में था। बाहर निकल कर बोला—दुन्दुभि! मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम क्यों गरज रहे हो? दुन्दुभि ने कहा—मुझे युद्ध का अवसर दो। वाली ने उस असुरराज से क्रोधपूर्वक कहा—यदि तुम युद्ध के लिए निर्भय खड़े हो तो मैं भी तत्पर हूँ। ऐसा कहकर उसने इन्द्र की दी हुई विजयदायिनी सुवर्णमाला गले में डाली और युद्ध के लिए खड़ा हो गया। दुन्दुभि ने भैंसे का रूप धारण कर रक्खा था। वाली ने दोनों सींग पकड़कर गर्जना करते हुए उसे बारंबार घुमाया तथा धरती पर दे मारा। दुन्दुभि के दोनों कानों से रुधिर की धाराएं बहने लगीं। फिर घोर युद्ध होने लगा। अन्त में दुन्दुभि मारा गया। वाली ने उसे उठाकर फैंका। उसके मुँह से निकली रक्त की बूँदें वायु के साथ उड़कर मतंग मुनि के आश्रम में पड़ीं। उन्होंने कुपित होकर वाली को शाप दिया कि यदि उसने इस वन में प्रवेश किया तो उसका वध हो जायेगा। इसी कारण वह यहाँ प्रवेश नहीं करता। सुग्रीव ने कहा कि वाली का पराक्रम इतना बड़ा है, आप कैसे उसे मारेंगे? लक्ष्मण को इस बात पर हँसी आयी और उन्होंने पूछा कि किस बात से तुम्हें विश्वास होगा? सुग्रीव ने कहा कि वाली ने साल के इन सात वृक्षों को एक-एक करके बींध डाला है, यदि श्रीराम इनमें से किसी एक वृक्ष को एक ही वाण से छेद डालेंगे तो मुझे विश्वास होगा तथा दुन्दुभि की हड्डी को एक ही पैर से उठाकर दो सौ धनुष दूरी पर फैंक सकें तो मैं मान सकता हूँ। श्रीराम ने खिलवाड़ में ही दुन्दुभि के कंकाल को अपने पैर के अंगूठे से उठा लिया और दस योजन दूर फैंक दिया। इस पर सुग्रीव ने कहा कि इस कंकाल पर अब मांस भी नहीं है और यह सूखा हुआ है, अतः वाली को मार सकने का विश्वास दिलाने के लिए श्रीराम को कोई एक साल वृक्ष वाण से विदीर्ण करना चाहिये।

श्रीरामने धनुष हाथ में लिया और एक वाण साल वृक्षों की ओर छोड़ दिया। वह वाण उन सातों साल वृक्षों को बींधते हुए पर्वत को बींध कर पृथ्वी के अन्दर चला गया और फिर वहाँ से निकल कर उनके तरकस में आ गया। सुग्रीव को बड़ा विस्मय हुआ। हाथ जोड़कर उसने धरती पर माथा टेककर श्री राम को प्रणाम किया और कहा कि आप तो इन्द्र सहित समस्त देवों को मारने में समर्थ हैं, फिर वाली का वध करना कौन-सी बड़ी बात है! आप आज ही वाली का वध कर डालिये। श्रीराम ने कहा—हम लोग किष्किन्धा चलते हैं। तुम आगे जाकर वाली को युद्ध के लिए ललकारो। सबके साथ श्री राम वहाँ गये और वृक्षों की ओट में छिपकर खड़े हो गये। सुग्रीव ने वाली को बुलाने के लिए गर्जना की। वाली को बड़ा क्रोध आया और वह घर से निकला तथा दोनों में संग्राम छिड़ गया। श्री राम ने धनुष हाथ में लिया। परन्तु दोनों का रूप एक ही प्रकार का था। इसलिए वाण छोड़ने का विचार स्थगित कर दिया। सुग्रीव के पाँव उखड़ गये और वह ऋष्यमूक पर्वत की ओर भागा तथा वाली के लिए निषिद्ध वन में घुस गया। उसका सारा शरीर लहूलुहान हो गया था। तब श्रीराम भी

हनुमान् सहित उसी वन में सुग्रीव के पास गये। सुग्रीव ने श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर कहा कि आपने मुझे पिटवा दिया और स्वयं चुप रहे; ऐसा क्यों किया? राम ने कहा—सुग्रीव! तुम क्रोध को त्याग दो। मैं वास्तव में तुम दोनों में कोई अन्तर नहीं देख पाया, इसलिए वाण नहीं छोड़ा। अब तुम पहचान के लिए कोई चिह्न धारण कर लो। लक्ष्मण ने फूलों सहित गजपुष्पी लता की माला सुग्रीव के गले में पहना दी। सुग्रीव फिर किष्किन्धा को चला।

श्री राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव के साथ हनुमान्, नल, नील आदि चल रहे थे। मार्ग में श्री राम ने वृक्षसमूहों से सघन एक वन को देखकर सुग्रीव से पूछा—यह कौन सा वन है? सुग्रीव ने बताया कि यह एक विस्तृत आश्रम है जो थकान का निवारण करने वाला है। इस आश्रम में सप्तजन के नाम से प्रसिद्ध सात ही मुनि रहते थे जो कठोर व्रत के पालन में तत्पर थे। वे जल में शीर्षासन कर सात दिन-रात के बाद केवल वायु का आहार करते थे। इस प्रकार सात सौ वर्षों तक तपस्या करके वे सशरीर स्वर्गलोग चले गये। उन्हीं के प्रभाव से यह आश्रम सभी के लिए अत्यंत दुष्प्राय है। पक्षी तथा दूसरे वनचर जीव इसे दूर से त्याग देते हैं। जो मोहवश इसमें प्रवेश करते हैं वे कभी नहीं लौटते। यहाँ मधुर वाणी के साथ-साथ आभूषणों की झनकारें भी सुनाई देती हैं। यहाँ आहवनीय आदि विविध अग्नियाँ भी प्रज्वलित होती हैं। आप दोनों हाथ जोड़कर उन मुनियों के उद्देश्य से प्रणाम कीजिये। श्री राम-लक्ष्मण ने प्रणाम किया तथा आगे बढ़े और शीघ्र ही किष्किन्धा पुरी पहुँच गये।

सुग्रीव ने वहाँ पहुँच कर भयंकर सिंहनाद किया। वाली ने सुना और उसे महान् क्रोध उत्पन्न हुआ। वह अपने अन्तःपुर से बड़े वेग से निकला। उसकी पत्नी तारा घबरा उठी। उसने वाली को पकड़ लिया और कहा—आप क्रोध को त्याग दें। सुग्रीव पहले भी यहाँ आया था और पराजित होकर गया था। उसके पुनरागमन से मुझे शंका हो रही है। उसकी गर्जना से पता लगता है कि उसे कोई प्रबल सहायक मिल गया है। कुछ दिन पूर्व कुमार अंगद ने मुझे बताया कि अयोध्या-नरेश के दो वीर पुत्र आये हैं और सुग्रीव का प्रिय करने के लिए उसके पास पहुँच गये हैं। उनमें श्री राम बहुत तेजस्वी हैं। अतः उनसे विरोध करना उचित नहीं है। उचित यह होगा कि आप सुग्रीव का युवराज पद पर अभिषेक कर दीजिये और युद्ध न कीजिये।

तारा को ऐसी बातें करते देख वाली ने फटकारा और कहा—यह भाई जो मेरा शत्रु है, उसे मैं सहन नहीं कर सकता। श्रीराम की बात सोचकर तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिये क्योंकि वे धर्म के ज्ञाता तथा कर्तव्याकर्तव्य को समझने वाले हैं, अतः पाप कैसे करेंगे? अब तुम लौट जाओ। वाली बाहर निकला और सुग्रीव को देखा। दोनों वेगपूर्वक एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। कुछ समय के बाद सुग्रीव दुर्बल पड़ने लगा। यह देखकर श्रीराम ने वाण छोड़ दिया जो वाली के वक्षस्थल पर लगा। वाली पृथ्वी पर गिर पड़ा और आर्तनाद करने लगा।

श्री राम लक्ष्मण के साथ वाली के पास गये। उन्हें देखकर वाली विनययुक्त कठोर वाणी में बोला–मैं आपसे युद्ध करने नहीं आया था। मैं तो दूसरे के साथ युद्ध में उलझा था। उस दशा में मेरा वध करके आपने यहाँ कौन-सा गुण प्राप्त किया है? किस महान् यश का उपार्जन किया है? आपके यश का वर्णन सभी प्राणी करते हैं। आपके उत्तम कुल को स्मरण कर, तारा के मना करने पर भी मैं लड़ने आया था। मैंने सोचा भी नहीं था कि आप मुझे वाण से मारेंगे। परन्तु आज मुझे ज्ञात हुआ कि आप दिखावे के लिए धर्म का चोला पहने हैं। आपने साधु पुरुष का वेष धारण कर रक्खा है, परन्तु आप पापी हैं। आपने निरपराध मुझे क्यों मारा? इस प्रकार वह अनेक प्रकार के नीतियुक्त शब्दों से राम की निन्दा करने लगा और बोला–ऐसा घृणित, अनुचित और निंदित कर्म करके आप श्रेष्ठ पुरुषों से मिलने पर उनके सामने क्या कहेंगे? जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपने सुग्रीव से कहा, वही यदि आप मुझसे कहते तो सीता को मैं एक दिन में ला देता। अपहरण करने वाले राक्षस रावण के गले में रस्सी बाँध कर आपको सौंप देता। मुझे आपने अधर्मपूर्वक मारा है। यदि आपने मेरे वध का उचित उत्तर खोजा है तो सोच-विचार कर कहिये।

श्री राम बोले–वानर! धर्म, अर्थ, काम और लौकिक सदाचार को तो तुम स्वयं ही नहीं जानते, फिर अविवेक के कारण मेरी निन्दा क्यों करते हो? यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की है। सभी को दण्ड देने के वे अधिकारी हैं। तुमने अपने जीवन में काम को ही प्रधानता दे रक्खी थी। राजोचित मार्ग पर तुम कभी स्थिर नहीं रहे। तुमने सदा धर्म को बाधा पहुँचायी। मैंने तुम्हें क्यों मारा, यह सुनो और समझो। तुम धर्म का त्याग करके छोटे भाई की स्त्री के साथ सहवास करते हो, इसी अपराध के कारण तुम्हें यह दण्ड दिया गया है। जो पुरुष अपनी कन्या, बहिन अथवा छोटे भाई की स्त्री के पास काम-बुद्धि से जाता है, उसका वध करना ही उपयुक्त दण्ड है। मेरी सुग्रीव के साथ मित्रता हो गयी है। मैंने उसे स्त्री और राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा की। फिर मैं प्रतिज्ञा से कैसे हट सकता हूँ? तुम्हारा दण्ड उचित है, इसका तुम भी अनुमोदन करो। यदि राजा होकर तुम धर्म का अनुसरण करते तो तुम्हें वही करना पड़ता जो मैंने किया है। मनु ने कहा है कि मनुष्य पाप करके यदि राजा के दिये हुए दण्ड को भोग लेते हैं तो स्वर्ग को जाते हैं, किन्तु यदि राजा पापी को उचित दण्ड नहीं देता तो स्वयं उसे पाप का फल भोगना पड़ता है। तुमने जैसा पाप किया, वैसा ही प्राचीन काल में एक श्रमण ने किया। उसे मेरे पूर्वज महाराज मान्धाता ने बड़ा कठोर दण्ड दिया था। अतः वानरश्रेष्ठ! तुम्हारा सर्वथा धर्म के अनुसार ही वध किया गया, क्योंकि हम लोग अपने वश में नही हैं। दूसरा कारण भी सुन लो। वानरश्रेष्ठ! इस कार्य के लिए मेरे मन में न तो संताप होता है और न खेद। मनुष्य बड़े-बड़े जाल बिछाकर, फन्दे फैलाकर, नाना प्रकार के उपाय से बहुत से मृगों को पकड़ते हैं। पशुओं को भी घायल कर देते हैं। तुम्हारी वध्यता में कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि तुम शाखामृग हो। वानरश्रेष्ठ! राजा लोग

दुर्लभ धर्म, जीवन और लौकिक अभ्युदय के देने वाले होते हैं। इसमें संशय नहीं है। अतः उनकी निन्दा न करें, उनकी हिंसा न करें, उनके प्रति आक्षेप न करें, न अप्रिय वचन बोलें; वे वास्तव में देवता हैं। तुम धर्म के स्वरूप को न समझकर केवल रोष के वशीभूत हो गये हो। श्रीराम के कहने पर वाली को व्यथा हुई और उसे धर्म के तत्त्व का निश्चय हो गया। उसने कहा–आप जो कुछ कहते हैं, बिल्कुल ठीक है, इसमें संशय नहीं है। इतना कहते ही उसका गला भर आया और बोला–मुझे और किसी के लिए उतना नहीं जितना अंगद के लिए शोक हो रहा है। वह मेरा इकलौता पुत्र है, आप उसकी रक्षा कीजियेगा। तारा की बड़ी शोचनीय अवस्था हो गयी है। सुग्रीव उसका तिरस्कार न करे, इसकी आप व्यवस्था करें। मैं तो चाहता था कि आपके हाथ से मेरा वध हो, इसलिए तारा के मना करने पर भी मैं युद्ध के लिए आया। श्रीराम ने कहा–वानरश्रेष्ठ! तुम्हें संताप नहीं करना चाहिये। कुमार अंगद तुम्हारे जीवित रहने पर जैसा था, उसी प्रकार सुग्रीव के पास भी सुख से रहेगा। श्रीराम की समाधान करने वाली बात सुनकर वाली बोला–मैंने अनूजाने में जो कठोर बात कह डाली, उसके लिए आप क्षमा कीजियेगा।

अपने स्वामी के वध का समाचार सुनकर तारा बहुत उद्विग्न हो गयी तथा अपने पुत्र अंगद के साथ पर्वत की कन्दरा से निकली। भय के कारण अनेक वानर उसे वहाँ जाने से रोकने लगे, परन्तु वह रणभूमि में घायल अपने पति के पास पहुँची और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस समय क्रन्दन करती हुई तारा तथा अंगद को देखकर सुग्रीव को बड़ा कष्ट हुआ। वे विषाद में डूब गये।

तारा अपने पति वाली को पकड़ कर विलाप करने लगी। श्रीराम को सुनाकर बोली–आपने अत्यन्त निन्दित कर्म किया है। फिर वाली से बोली–मैंने कभी दीनतापूर्ण जीवन नहीं बिताया था, अब मुझे वैधव्य का जीवन व्यतीत करना होगा। अब क्रोध में पागल हुए चाचा के वश में पड़कर मेरे पुत्र की क्या देशा होगी! तत्पश्चात् सुग्रीव से कहने लगी–तुम्हारा मनोरथ सफल हो। पति के समीप विलाप करती हुई तारा ने आमरण अनशन करने का निश्चय किया।

तारा को पृथ्वी पर पड़ी देखकर हनुमान् ने धीरे-धीरे समझाना आरम्भ किया–देवि! जीव के द्वारा गुणबुद्धि से अथवा दोषबुद्धि से किये गये कर्म ही सुख-दुःखरूप फल की प्राप्ति कराने वाले होते हैं। तुम्हारा पुत्र अंगद जीवित है। अब उसकी उन्नति का जो श्रेष्ठ कार्य हो, वह सोचना चाहिये। अब तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। ये सभी वानर हैं, तुम्हारा पुत्र अंगद है, तुम्हीं इन सब की स्वामिनी हो। अंगद व सुग्रीव दोनों शोक-संतप्त हो रहे हैं, तुम इन्हें भावी कार्य के लिए प्रेरित करो। वानरराज का अन्त्येष्टि संस्कार और कुमार अंगद का राज्याभिषेक किया जाय, इससे तुम्हें शांति मिलेगी। हनुमान् जी की बातें सुनकर तारा बोली–अंगद के समान सौ पुत्रों से अधिक मरे हुए स्वामी का आलिंगन करके सती होने को

मैं श्रेष्ठ समझती हूँ। अंगद के लिए आपका परामर्श योग्य नहीं। अब उसके वास्तविक बन्धु उसके चाचा सुग्रीव रहेंगे। मैं तो पति का अनुगमन करूंगी।

वाली ने सुग्रीव से कहा–पूर्वजन्म के किसी पाप से मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। मैं तुम्हें शत्रु समझने लगा था। अब तुम इसका ध्यान न करना। तुम आज ही राज्य स्वीकार करो। मेरा पुत्र अंगद धरती पर पड़ा है, तुम इसे सगे पुत्र की भाँति मानना। तारा का यह तेजस्वी पुत्र तुम्हारे समान ही पराक्रमी है। राक्षसों के वध के समय सदा आगे रहेगा। तारा जिस कार्य को अच्छा बताये, उसे संदेहरहित होकर करना। श्री राम का काम तुम्हें निःशंक होकर करना चाहिये। सुग्रीव! मेरी यह सोने की माला तुम धारण कर लो। मेरे मर जाने पर इसकी भी श्री नष्ट हो जायेगी, अतः अभी से पहन लो। सुग्रीव ने भाई की आज्ञा से माला ग्रहण की और उनका वैरभाव शान्त हो गया। वाली ने अंगद को समझाया कि सुग्रीव की आज्ञा में रहो। ऐसा कहकर वाली के प्राण-पखेरू उड़ गये। सभी लोग रोने लगे। तारा फिर से पृथ्वी पर गिर पड़ी।

तारा विलाप करने लगी–हे वीर! दुःख की बात है कि आपने मेरी बात नहीं मानी, अब भूतल पर शयन कर रहे हैं। अनेक प्रकार से वह वाली की वीरता का बखान करने लगी। बहुत कारुणिक दृश्य उत्पन्न हो गया।

तारा की ओर देखकर सुग्रीव को अपने भाई वाली के वध का महान् शोक हुआ। वे राम के पास गये और कहा कि आपने जैसी प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार काम कर दिखाया। किन्तु मेरा जीवन निन्दनीय हो गया है। अब राज्य में मेरा मन नहीं लगता है। वाली ने युद्ध के समय कहा था कि तुम चले जाओ, मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहता; परन्तु मैंने भाई का वध कराया है। उन्होंने सदैव अपने धर्म का पालन किया, परन्तु मैंने क्रूर कर्म किया है। अब मैं राज्य के योग्य नहीं हूँ। मैं अब अग्नि में प्रवेश करूंगा और ये वानर वीर आपकी आज्ञा में रहकर सीता की खोज करेंगे। आप मुझे आज्ञा दें। सुग्रीव की बातें सुनकर श्रीराम के आँसू बहने लगे। इधर-उधर देखा तो तारा भी दिखाई दी। श्री राम उसकी ओर बढ़े। उन्हें समीप देखकर तारा ने उनके वास्तविक स्वरूप व तेज का वर्णन किया तथा प्रार्थना की कि आपने जिस वाण से मेरे पति का वध किया है, उसी से मुझे भी मार डालिये। स्त्री के बिना युवा पुरुष को जो दुःख उठाना पड़ता है, उसे आप अच्छी प्रकार से जानते हैं, इसलिए मेरा वध करिये ताकि वाली को मेरे विरह का दुःख न भोगना पड़े। आप महात्मा हैं, इसलिए यदि आप ऐसा चाहते हों कि स्त्री-हत्या का पाप न लगे तो यह समझकर कि यह वाली की आत्मरूपा है, मेरा वध करें, आपको मेरी हत्या का पाप नहीं लगेगा। तारा के ऐसा कहने पर श्री राम ने कहा–वीरपत्नी! तुम मृत्युविषयक विपरीत विचार का त्याग करो, क्योंकि विधाता ने इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की है। तुम्हें पहले की ही भाँति अत्यन्त सुख एवं आनन्द की प्राप्ति होगी। शूरवीरों की स्त्रियाँ इस प्रकार विलाप नहीं करती हैं। श्री राम की बात सुनकर तारा शान्त हो गयी और रोना-धोना छोड़ दिया।

आगे श्री राम ने सुग्रीव, अंगद और तारा को सान्त्वना देते हुए कहा कि शोक-संताप करने से मरे हुए जीव की कोई भलाई नहीं होती। लोकाचार का भी पालन होना चाहिये। जगत् में नियति (काल) ही सबका कारण है। सारा जगत् स्वभाव के अधीन है और स्वभाव का आधार काल है। काल भी काल का उल्लंघन नहीं कर सकता। काल का किसी के साथ भाईचारे या मित्रता अथवा जाति-कुल का संबंध नहीं है। विवेकी पुरुष को सब कुछ काल का ही परिणाम समझना चाहिये। वानरराज वाली शरीर से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हुए हैं। अतः अब उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा कि अंगद और तारा के साथ रहकर वाली के दाह-संस्कार संबंधी प्रेत-कार्य करो। इसके बाद सभी कार्य सम्पन्न होने लगे। विधिवत् वाली का दाह-संस्कार करके सभी वानर जलाञ्जलि देने के लिए तुंगभद्रा नदी के तट पर गये। जलांजलि देकर सुग्रीव श्री राम के पास आये।

२
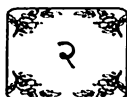
सुग्रीव का राज्याभिषेक; राज्य-सुख में दायित्व भूल जाने से सुग्रीव पर लक्ष्मण का कोप; सीता के अन्वेषण के लिए चारों दिशाओं में वानरों का प्रस्थान।

तदनंतर हनुमान् जी ने श्री राम से सुग्रीव का राज्याभिषेक कराने की प्रार्थना की। श्री राम ने कहा– मैं नगर में नहीं जाऊंगा, तुम लोग सुग्रीव का राज्याभिषेक करो, और सुग्रीव से कहा कि अंगद युवराज पद का अधिकारी है। इस समय चातुर्मास आ गया है। यह प्रथम मास श्रावण का है। यह आक्रमण का समय नहीं है। इस समय मैं लक्ष्मण के साथ पर्वत पर निवास करूंगा और तुम राज्य-भोग करो। इस अवधि के बाद हम लोग उस कार्य में संलग्न होंगे। सुग्रीव का धूमधाम से राज्याभिषेक हुआ। अंगद का युवराज पद पर अभिषेक हुआ।

श्रीराम लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण गिरि पर चले गये। वहाँ राम ने लक्ष्मण से कहा–यह गुफा बड़ी सुन्दर और विशाल है, इसके भीतर हम लोग निवास करेंगे। यहाँ का वन, पर्वत, नदी, सभी सुन्दर हैं। सुग्रीव अपनी पत्नी रुमा को तथा राज्य को पाकर आनन्दोत्सव मना रहा है। सीता का स्मरण आने के कारण श्री राम को इस सुन्दर स्थान पर भी सुख नहीं मिलता था। उनकी व्यथा को देखकर लक्ष्मण ने बहुत समझाया।

श्रीराम वर्षा ऋतु का वर्णन करने लगे। फिर उन्होंने कहा कि सुग्रीव को सुख-भोग प्राप्त हो गये हैं, किंतु लक्ष्मण! मैं अपने महान् राज्य से तो भ्रष्ट हो ही गया हूँ, मेरी स्त्री भी हर ली गयी है, इसलिए मैं कष्ट पा रहा हूँ। मेरा शोक बढ़ गया है। मेरा महान् शत्रु रावण भी मुझे अजेय-सा प्रतीत हो रहा है। लक्ष्मण ने कहा कि सुग्रीव शीघ्र ही आपका सारा मनोरथ सिद्ध करेंगे। आप शरत्काल की प्रतीक्षा कीजिये।

पवनकुमार हनुमान् शासन के सिद्धान्त को जानने वाले थे। वर्षा बीतने पर वे सुग्रीव के पास गये और उन्हें समझाया कि मित्र के प्रत्युपकार का समय आ गया है, संकोचवश

श्री राम आप से कुछ नहीं कह रहे हैं। श्री राम के कहने के पूर्व ही हम लोग कार्य प्रारम्भ कर दें तो समय बीता हुआ नहीं माना जायेगा। कपीश्वर! आप की आज्ञा हो जाय तो वानर सभी ओर खोजने निकल जायें। सुग्रीव सत्त्वगुण से सम्पन्न थे। उन्होंने नील नामक वानर को सम्पूर्ण वानर-सेनाओं को एकत्रित करने की आज्ञा दी और कहा–जो वानर पन्द्रह दिन के बाद यहाँ पहुँचेगा, उसे प्राणान्त दण्ड दिया जायेगा।

वर्षा ऋतु बीत गयी तो श्री राम को चिन्ता होने लगी। उन्होंने सोचा कि सुग्रीव काम में आसक्त हो रहा है और समय बीत रहा है। श्री राम का हृदय व्याकुल हो उठा। दो घड़ी बाद मन फिर स्वस्थ हुआ तो फिर वे सीता की चिन्ता करने लगे तथा और बहुत-सी बातें कहकर दुःखी हो गये। लक्ष्मण ने श्रीराम की अवस्था देखी। उन्होंने उन्हें अनेक सान्त्वनायुक्त बातें कहीं। श्री राम ने कहा कि अवसर सामने है, परन्तु सुग्रीव को उपस्थित नहीं देखता हूँ। वह समझता है कि मैं उसकी शरण में आया हूँ। वह मेरा तिरस्कार कर रहा है। अतः लक्ष्मण! तुम किष्किन्धा जाओ और उससे कहो कि जो बल-पराक्रम से सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करने वाले पुरुषार्थी को प्रतिज्ञापूर्वक आशा देकर तोड़ता है, वह नीच होता है। लक्ष्मण! तुम जाओ और सुग्रीव को मेरे रोष का जो स्वरूप है वह बताओ। उससे कहो कि वाली जिस मार्ग पर गया है वह बन्द नहीं हुआ। जो हितकर लगे, वह उससे कहना।

लक्ष्मण ने श्री राम से कहा कि सुग्रीव वानर है, सदाचार पर स्थिर नहीं रह सकेगा। उसकी बुद्धि मारी गयी है, अब वह भी मारा जायेगा। मेरा क्रोधावेग बढ़ा हुआ है। मैं असत्यवादी सुग्रीव को आज ही मार डालता हूँ। अंगद ही राजा होकर सीता की खोज करे। लक्ष्मण को शान्त करते हुए श्री राम ने कहा कि तुम्हें निषिद्ध आचरण नहीं करना चाहिये। सुग्रीव को केवल इतना समझाओ कि समय बीत रहा है, अब बैठे क्यों हो? भाई के समझाने पर लक्ष्मण सुग्रीव के भवन की ओर चले। भयंकर दिखाई देने वाले लक्ष्मण को देखकर वानरों ने सुग्रीव के महल में जाकर उनके आगमन की सूचना दी। उस समय सुग्रीव काम के अधीन था, इसलिए वानरों की बात नहीं सुनी। लक्ष्मण अत्यन्त क्रोध के साथ खड़े थे। उसी अवसर पर कुमार अंगद डरते-डरते लक्ष्मण के पास गये। उन्होंने अंगद को आदेश दिया कि सुग्रीव को मेरे आगमन की सूचना दो। अंगद ने सुग्रीव को जाकर बताया। किन्तु मदमत्त एवं काम से मोहित होकर पड़ा था, इसलिए वह जाग न सका। वानर दीनतासूचक वाणी में किलकिलाने लगे। उन्होंने मिलकर वज्र के समान सिंहनाद किया जिससे सुग्रीव जाग उठा। फिर अंगद और मंत्रियों ने लक्ष्मण के आगमन की सूचना दी।

समाचार पाकर सुग्रीव आसन छोड़कर खड़ा हो गया। उसने कहा कि मैंने कोई अनुचित बात नहीं कही है, न बुरा काम किया है, फिर लक्ष्मण क्यों कुपित हैं? किसी के द्वारा थोड़ी-सी भी चुगली कर दी जाने पर प्रेम में अन्तर आ जाता है। इस कारण मैं और भी डर गया हूँ। श्री राम ने जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाने की शक्ति मुझमें नहीं

है। ऐसा कहने पर हनुमान् जी ने कहा–कपिराज! आप मित्र के उपकार को भूल नहीं रहे हैं, यह अच्छी बात है। कपिराज! आपने सीता की खोज का जो समय निश्चित किया था, प्रमाद के कारण आप उसे भूल गये हैं। यदि लक्ष्मण की ओर से कोई कठोर वचन भी सुनना पड़े तो आप चुपचाप सह लें। आपसे अपराध हुआ है, इसलिए हाथ जोड़कर प्रसन्न करने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। जिसे बाद में हाथ जोड़कर मनाना पड़े, ऐसे पुरुष को क्रोध दिखाना कदापि उचित नहीं है।

लक्ष्मण ने किष्किन्धा में सुग्रीव के भवन में प्रवेश किया। उसकी शोभा अनुपम थी। अन्तःपुर पहुँचने पर वहाँ आभूषणों की झंकार सुनी तो वे कुपित हो उठे और अपने धनुष की टंकार दी जिससे सभी दिशाएं गूँज उठीं। सुग्रीव समझ गये कि लक्ष्मण आ गये हैं। उन्होंने तारा से कहा कि तुम उनके पास जाकर मीठे वचनों से उन्हें शान्त कर दोगी, तब मैं लक्ष्मण के दर्शन करूंगा। तारा लक्ष्मण के पास गयी। लक्ष्मण मुँह नीचा करके उदासीन भाव से खड़े रहे। तारा ने कहा–राजकुमार! आपके क्रोध का क्या कारण है? कौन आपकी आज्ञा के अधीन नहीं है? उसकी बात सुनकर लक्ष्मण ने कहा–तुम्हारा स्वामी विषय-भोग में आसक्त होकर धर्म और अर्थ के संग्रह का लोप कर रहा है। तुम उसे समझाती क्यों नहीं? उसे हमारी तनिक भी चिन्ता नहीं है। अवधि बीत गयी, परन्तु उसे समय का पता ही नहीं है। लक्ष्मण ने अनेक प्रकार से सुग्रीवं की निन्दा की। लक्ष्मण की बात सुनकर तारा ने कहा–राजकुमार! यह क्रोध करने का समय नहीं है। सुग्रीव के मन में सदा आप का कार्य सिद्ध करने की इच्छा बनी रही है, अतः यदि कोई भूल हो तो क्षमा करें। सुग्रीव ने आपका कार्य सिद्ध करने के लिए बहुत पहले से ही उपाय प्रारम्भ करने की आज्ञा दे रक्खी है। उसके फलस्वरूप करोड़ों वानर यहाँ उपस्थित हुए हैं। आप बाहर ही खड़े रह गये, भीतर आइये। लक्ष्मण ने वहाँ जाकर सुग्रीव को देखा।

लक्ष्मण को क्रोध से भरा देख सुग्रीव की सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं। वे स्वर्ण-सिंहासन छोड़कर कूद पड़े और लक्ष्मण के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। लक्ष्मण ने क्रोध में कहा–वानरराज! धैर्यवान्, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय और सत्यवादी राजा का ही संसार में आदर होता है जो अपनी प्रतिज्ञा को ही झूठी कर देता है, उससे बढ़कर क्रूर कौन होगा? जो मित्रों के द्वारा अपना कार्य सिद्ध करके बदले में उन मित्रों का कोई उपकार नहीं करता, वह कृतघ्न एवं सब प्राणियों के लिए वध्य है। कृतघ्न के उद्धार का कोई उपाय नहीं है। वाली मारा जाकर जिस मार्ग से गया है, वह आज भी बन्द नहीं हुआ है।

लक्ष्मण जब अपने तेज से प्रज्वलित हो रहे थे, तब तारा उनसे बोली–कुमार लक्ष्मण! आपको सुग्रीव से ऐसी बात नहीं करनी चाहिये। वीर सुग्रीव न कृतघ्न हैं, न शठ हैं, न क्रूर हैं, न असत्यवादी हैं और न कुटिल हैं। श्री राम ने जो इन पर उपकार किया है, उसे इन्होंने कभी भुलाया नहीं है। पहले इन्होंने बड़ा दुःख उठाया है, अब इस सुख को पाकर इसमें रम गये, इन्हें समय की सुध नहीं रह गयी थी। महामुनि विश्वामित्र ने मेनका नामक अप्सरा

में आसक्त होने के कारण दस वर्ष के समय को एक दिन ही माना था, फिर दूसरा साधारण प्राणी कैसे रह सकता है? तात लक्ष्मण! आपको यथार्थ जाने बिना साधारण मनुष्य की भाँति सहसा क्रोध के अधीन नहीं होना चाहिये। आप क्रोध से उत्पन्न इस क्षोभ का परित्याग कीजिये। सुग्रीव उस अधम राक्षस का वध करके श्री राम को सीता से अवश्य मिलायेंगे। राक्षस असंख्य हैं तथा दुर्गम हैं, उन्हें नष्ट किये बिना रावण का वध नहीं हो सकता। इसलिए सुग्रीव से सहायता लेने की विशेष आवश्यकता है। आपकी सहायता के लिए सुग्रीव ने असंख्य श्रेष्ठ वानरों को एकत्रित करने का आदेश दिया है। जो अवधि निश्चित की है, उसके अनुसार आज उन्हें एकत्रित हो जाना चाहिये।

तारा की बात सुनकर लक्ष्मण ने क्रोध त्याग दिया। तदनंतर सुग्रीव ने लक्ष्मण से कहा–श्री राम के उपकार का वैसा ही बदला अंशमात्र से भी कौन चुका सकता है? श्री राम अपने ही तेज से रावण का वध करेंगे। मैं तो उनका एक तुच्छ सहायक मात्र हूँ। विश्वास अथवा प्रेम के कारण कोई अपराध बन गया हो तो क्षमा कर देना चाहिये। ऐसा कोई सेवक नहीं है जिससे कभी कोई अपराध होता ही न हो। सुग्रीव की बात सुनकर लक्ष्मण प्रसन्न हो गये और कहा कि सुग्रीव! तुम जैसे विनयशील सहायक को पाकर श्री राम सर्वथा सनाथ हैं। तुम शीघ्र ही मेरे साथ चलकर श्री राम को सान्त्वना दो। मैंने जो कठोर बात कही, उसके लिए क्षमा करो।

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सुग्रीव हनुमान् जी से बोले कि सभी स्थानों के वानरों को यहाँ बुला लाओ। हनुमान् जी ने सुग्रीव की आज्ञानुसार सबके बुलाने की व्यवस्था कर दी। फिर चारों ओर से वानर एकत्रित होने लगे। अनेक प्रकार की ओषधियाँ और फल-मूल लाकर उन्होंने सुग्रीव को अर्पित किये।

तदनंतर सुग्रीव राजा के समान अपने वानरों को लेकर जहाँ श्रीराम थे उस स्थान पर गये और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। श्रीराम सुग्रीव पर बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्हें हृदय से लगाया, फिर आदर के साथ बैठने को कहा और बोले कि हम लोगों के उद्योग का समय आ गया है। इस सम्बन्ध में तुम इन वानरों और मन्त्रियों के साथ विचार करो। सुग्रीव ने श्रेष्ठ वानरों का श्रीराम के समक्ष परिचय दिया तथा बताया कि अनेक स्थानों के वानर अभी आ रहे हैं।

सुग्रीव के ऐसा कहने पर श्रीराम ने सुग्रीव का आलिंगन किया तथा कहा–तुम्हारी सहायता से सन्नद्ध होकर मैं युद्ध में समस्त शत्रुओं को जीत लूंगा। मैं शीघ्र ही रावण का वध कर डालूंगा। जब यह बात हो रही थी, उसी समय असंख्य वानरों ने वहाँ आकर सारी भूमि को ढक लिया। वे उच्च्व स्वर से सिंहनाद करते थे। अनेक प्रकार के वानर एकत्रित होने लगे। तदनन्तर सभी वानर-प्रमुखों ने अपनी सेनाओं को समस्त वनों में ठीक प्रकार से ठहरा दिया।

सुग्रीव अपने वानरों का बल और पौरुष श्री राम को बताने लगे, और कहा कि अब आप यथोचित कार्य के लिए आज्ञा प्रदान करें। श्रीराम ने कहा—पहले यह तो पता लगाओ कि सीता जीवित है या नहीं; तथा वह देश जहाँ रावण निवास करता है, कहाँ है? यह पता लगने के बाद आगे का कार्य निश्चित होगा। इस कार्य को तुम्हीं कर सकते हो, इसलिए वानरों को उचित आज्ञा दो।

श्री राम के ऐसा कहने पर सुग्रीव ने विनत नामक यूथपति को एक लाख वानरों के साथ पूर्व दिशा की ओर जाकर खोजने का आदेश दिया और कहा कि तुम लोग यवद्वीप (जावा), सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) तथा सप्यक द्वीप में भी खोजने का प्रयास करना। उससे आगे के भी स्थानों का वर्णन किया और कहा कि वे सब स्थान बड़े विचित्र, दिव्य तथा अलौकिक हैं, तथा लौटने के लिए एक मास का समय दिया।

अंगद को अगुवा बनाकर नील, हनुमान्, जाम्बवन्त इत्यादि असंख्य वानरों को दक्षिण दिशा की ओर भेजा। इस दिशा में जो भी स्थान अत्यन्त दुर्गम थे, उनका सुग्रीव ने परिचय दिया और कहा कि समुद्र के उस पार एक द्वीप है जिसका विस्तार सौ योजन है। वहाँ मनुष्यों की पहुँच नहीं है। वही देश रावण का निवास-स्थान है। उस समुद्र के बीच में अंगारका नाम की राक्षसी रहती है जो छाया पकड़कर खींच लेती है और खा जाती है। आगे के भी अनेक दुर्गम तथा दिव्य स्थानों का परिचय दिया।

इसके बाद सुग्रीव ने तारा के पिता सुषेण नामक वानर को दो लाख वानरों के साथ पश्चिम दिशा की ओर जाने का आदेश दिया और उस दिशा के विभिन्न स्थानों का विस्तृत परिचय दिया।

शतबलि नामक वानर के नेतृत्व में उत्तर दिशा की ओर जाकर खोज करने का आदेश सुग्रीव ने दिया और कहा कि श्रीराम ने हम लोगों का प्रिय कार्य किया है, उसका बदला दिया जा सके तो हमारा जीवन सफल हो जाय। इस विचार का आश्रय लेकर तुम सब वानरों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे सीता का पता लग जाय। सुग्रीव ने उत्तर दिशा के प्रमुख स्थानों का परिचय दिया।

सुग्रीव ने हनुमान् जी के समक्ष विशेष रूप से सीता के अन्वेषण (खोज) का दायित्व रक्खा, क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि हनुमान् इस कार्य को सिद्ध करेंगे। वानरराज ने हनुमान् जी की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और कहा कि इस भूमण्डल में कोई भी प्राणी तुम्हारे वेग और तेज की समानता करने वाला नहीं है, अतः सीता की उपलब्धि का उपाय तुम्हीं सोचो। ऐसा बल, बुद्धि, पराक्रम तुम्हीं में है। सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम को ज्ञात हुआ कि इस कार्य की सिद्धि का सारा भार हनुमान् पर है तथा हनुमान् भी ऐसा विश्वास करते हैं। तदनंतर श्री राम ने अपने नाम के अक्षरों से सुशोभित एक अंगूठी हनुमान् जी के हाथ में दी जो सीता को पहचान के रूप में अर्पण करने के लिए थी। श्री राम बोले कि

इस चिह्न द्वारा सीता को विश्वास हो जायेगा कि तुम मेरे पास से गये हो। मुझे विश्वास है कि तुम्हारे द्वारा कार्य की सिद्धि अवश्य होगी। हनुमान् ने अंगूठी लेकर मस्तक पर रक्खी और श्री राम के चरणों में प्रणाम किया। जाते हुए हनुमान् को सम्वोधित करके श्रीराम ने फिर कहा– अत्यन्त बलशाली कपिश्रेष्ठ! मैंने तुम्हारे बल का आश्रय लिया है। जिस प्रकार सीता प्राप्त हो सके, तुम अपने महान् बल-विक्रम से प्रयत्न करो। अच्छा, अब जाओ।

वानरराज सुग्रीव ने कार्य-सिद्धि के लिए सभी वानरों को बुलाकर कहा– मैंने जैसा बताया है, उसी के अनुसार तुम सभी सीता की खोज करो और एक मास में लौटकर समाचार दो। सभी ओर जाने वाले वानरों ने सुग्रीव को पूरा भरोसा देकर प्रस्थान किया।

वानर यूथपतियों के चले जाने पर श्री राम ने सुग्रीव से पूछा कि तुम समस्त भूमण्डल के स्थानों का परिचय कैसे जानते हो ? सुग्रीव ने विस्तार से कहना प्रारम्भ किया : बाली मुझे अपराधी समझकर मार डालना चाहता था। तब मैं प्राणरक्षा के लिए मन्त्रियों के साथ भागा। उस समय सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर डाली। भागते समय मुझे यह पृथ्वी दर्पण और अलात-चक्र के समान दिखाई दी। मैंने पूर्व दिशा में जाकर नाना प्रकार के वृक्षों, कन्दराओं सहित पर्वत और सरोवर देखे। नाना प्रकार के धातुओं से मण्डित उदयाचल तथा अप्सराओं के नित्य-निवासस्थान क्षीरोदसागर का दर्शन किया। दक्षिण दिशा में विन्ध्य पर्वत तथा दक्षिण के नाना प्रकार के देशों को देखता हुआ गिरिश्रेष्ठ अस्ताचल तक जा पहुँचा। उत्तर दिशा में हिमालय, मेरु और उत्तर समुद्र तक मुझे शरण नहीं मिली। तब बुद्धिमान् हनुमान् ने कहा– राजन् ! मुझे उस घटना का स्मरण हो आया है जिसमें मतंग मुनि ने वाली को शाप दिया था कि यदि वाली इस आश्रममण्डल में प्रवेश करेगा तो उसके मस्तक के सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। इसलिए वहीं निवास करना उपयुक्त रहेगा। इस कारण हम लोग ऋष्यमूक पर्वत पर आकर रहने लगे। इस प्रकार मैंने समस्त भूमण्डल प्रत्यक्ष देखा था।
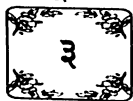
दक्षिण दिशा में गये हनुमान्, अंगद आदि की रोमांचकारी अन्वेषण-यात्रा; सम्पाति से भेंट; हनुमान् जी की समुद्र लांघने की तैयारी।

एक मास पूर्ण हो जाने पर पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर दिशा की ओर गये वानर लौट आये तथा सीता का कोई पता नहीं लगा, यह समाचार सुग्रीव को दिया और कहा– वानरराज! हनुमान् जी परम शक्तिमान् हैं, वे ही सीता का पता लगा सकेंगे क्योंकि वे उस दिशा में गये हैं जिधर सीता गयी हैं।

अंगद के साथ हनुमान् जी और अन्य वानरों ने दक्षिण दिशा में विन्ध्याचल पर खोज की, परन्तु सीता को नहीं देखा। ऐसा भी वन देखा जहाँ न पेड़ थे न पौधे थे। पहले वहाँ कण्डु नाम से प्रसिद्ध एक महर्षि रहते थे। उन्होंने अपने दस वर्ष के बालक की मृत्यु से

कुपित होकर उस वन को शाप दिया जिससे वह निर्जन हो गया। मार्ग में एक विशाल असुर मिला, परन्तु अंगद के एक तमाचा मारने से वह रक्त वमन करने लगा तथा मृत्यु को प्राप्त हुआ। ढूँढते-ढूँढते वे सब थक गये तथा सभी एकान्त स्थान में एक वृक्ष के नीचे खिन्न होकर बैठ गये।

अंगद ने थके हुए सभी वानरों से कहा कि हम साहस न हारें तथा अपना प्रयास चालू रक्खें। सुग्रीव क्रोधी राजा हैं, उनका दण्ड भी बड़ा कठोर है, इसलिए आप जो ठीक समझें वह करें। गन्धमादन ने अंगद की बात का समर्थन किया और कहा कि सुग्रीव ने जिन स्थानों की चर्चा की थी उन पर हम सब खोज करने में लगें। फिर उन्होंने लोध्रवन और सप्तपर्ण (छितवन) के जंगलों में खोज की।

गुफाओं और जंगलों में खोजना बहुत कठिन था, परन्तु उनका प्रयास चालू रहा। उस समय तक एक मास व्यतीत हो गया। खोजते-खोजते उन्हें एक गुफा दिखाई दी जिसका द्वार बंद नहीं था। वह गुफा ऋक्षबिल नाम से विख्यात थी। एक दानव उसकी रक्षा में रहता था। वानरों को भूख-प्यास सता रही थी। वे पानी पीना चाहते थे। इतने में गुफा के भीतर से क्रौञ्च, हंस, सारस, आदि और जल से भीगे हुए चक्रवाक पक्षी गुफा के बाहर निकले। वानरों को गुफा के अन्दर जल होने का आभास हुआ। हनुमान् जी के कहने पर वे सब गुफा में घुस गये। वहाँ का दृश्य विस्मय से भर देने वाला था। भीतर जाकर उन्होंने देखा कि वह स्थान उत्तम, प्रकाशमान् और मनोहर था। वहाँ के सभी वृक्ष सुवर्णमय थे। सभी फलों से भरे थे। अनेक सरोवर दिखाई पड़े जो सुशोभित जल से भरे थे। वहाँ उन्होंने बहुत से श्रेष्ठ भवन देखे। अनेक भव्य वस्तुएं देखीं, रत्नाभरण और दिव्य वस्त्र भी दिखाई दिये। उसी समय वहाँ उन्होंने किसी स्त्री को भी देखा जो वल्कल और काला मृगचर्म पहन कर तपस्या में संलग्न थी। हनुमान् जी ने उससे पूछा– देवी ! तुम कौन हो और यह किसकी गुफा है ?

यह पूछकर हनुमान् जी फिर बोले– हम लोग भूख-प्यास व थकावट से कष्ट पा रहे हैं, इसलिए सहसा इस गुफा में घुस आये। यहाँ के अद्भुत विविध पदार्थों को देखकर हमें बड़ी व्यथा हुई है। कहीं यह असुरों की माया तो नहीं है ? हमारे मन में घबराहट हो रही है। हम इस सबका रहस्य जानना चाहते हैं। तापसी ने उत्तर दिया– वानरश्रेष्ठ! माया-विशारद मय का नाम तुमने सुना होगा, उसी ने इस स्वर्णमय वन का निर्माण किया था। मय पहले दानव-शिरोमणियों का विश्वकर्मा था जिसने इस उत्तम भवन को बनाया। उसने ब्रह्मा जी से वरदान के रूप में शुक्राचार्य का सारा शिल्प-वैभव प्राप्त किया था। इस वन में उसने कुछ काल तक निवास किया। आगे चलकर उसका हेमा नाम की अप्सरा के साथ संबंध हो गया। यह जानकर इन्द्र ने वज्र लेकर उसे मार भगाया। उसके बाद ब्रह्मा जी ने यह उत्तम वन, सब सामग्री तथा उत्तम भवन हेमा को दे दिया। मैं मेरुसावर्णि की कन्या हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। हेमा मेरी प्यारी सखी है। उसी ने इसकी रक्षा की मुझसे प्रार्थना की है। तुम

लोग क्या चाहते हो ? अच्छा, ये शुद्ध भोजन फल, मूल तथा जल प्रस्तुत हैं, ग्रहण करो।

जब सब वानर यूथपति खा-पीकर विश्राम कर चुके तो तपस्विनी ने कहा कि यदि तुम लोगों की थकावट दूर हो गयी है तो अपना वृत्तान्त सुनाओ। उसकी बात सुनकर हुनमान् जी ने कहना प्रारम्भ किया– देवी ! श्री राम दण्डकारण्य में पधारे हैं। उनके साथ उनके भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीता भी थी। जनस्थान में आकर रावण ने उनकी स्त्री का अपहरण कर लिया। वानरराज सुग्रीव श्री राम के सखा हैं। हम लोग उन्हीं की आज्ञा से सीता की खोज में निकले हैं। जब हम भूख-प्यास से मर रहे थे, तब आपने प्राण बचाये। हम लोग इस उपकार के लिए आपकी क्या सेवा करें ? स्वयंप्रभा सर्वज्ञा थी। उसने कहा– मैं तुम लोगों से संतुष्ट हूँ। धर्मानुष्ठान में लगी रहने के कारण मुझे किसी से कोई प्रयोजन नहीं रह गया है। हनुमान् ने कहा– देवी! तुम धर्माचरण में लगी हो, अतः हम लोग तुम्हारी शरण में आये हैं। हमारा लौटने का समय पूरा हो गया, अब कृपा करके इस बिल से बाहर निकाल दो ताकि हम लोग अपना कार्य कर सकें। तापसी बोली– जो एक बार यहाँ आ जाता है, वह जीते-जी यहाँ से नहीं जा सकता। तथापि मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से तुम्हें बाहर निकाल दूंगी। तुम लोग आँखें बन्द कर लो। सबने आँखें बन्द कर लीं। बिल से बाहर आने पर तापसी ने कहा– यह प्रस्रवणगिरि है, सामने समुद्र लहरा रहा है। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाती हूँ।

तदनंतर उन श्रेष्ठ वानरों ने भयंकर महासागर देखा। समय बीत जाने के कारण भयभीत होकर वे पृथ्वी पर गिर पड़े। अंगद बोले–समय बीत गया; अब आगे क्या करना चाहिये ? समय बीत जाने के कारण हम सब वानरों का उपवास करके प्राण त्याग देना ही ठीक जान पड़ता है। अंगद की बात सुनकर सभी वानर करुण स्वर में बोले–इसमें कोई संशय नहीं है कि सुग्रीव हम सब को मरवा डालेंगे। वानरों की बात सुनकर वानर तार ने कहा कि विषाद का कोई लाभ नहीं है, हम लोग स्वयंप्रभा की गुफा में ही निवास करें। अंगद ने कहा– यह ठीक है।

हनुमान् जी ने जब अंगद की यह मनःस्थिति देखी तो उन्होंने सभी वानरों तथा अंगद को समझाने का प्रयास किया। उन्हें लगा कि अंगद सुग्रीव से विरोध भी कर सकता है, इससे विग्रह उत्पन्न होगा। अतएव उन्होंने अनेक नीतियुक्त वचनों से अंगद को भला-बुरा समझाया। हनुमान् जी के वचन विनययुक्त, धर्मानुकूल और स्वामी के प्रति सम्मान से युक्त थे। सुनकर अंगद ने कहा कि सुग्रीव कैसे धर्मज्ञ माना जा सकता है? उसने बड़े भाई से विश्वासघात किया तथा श्री राम का हाथ पकड़ कर कांर्यसिद्धि की शपथ ली, परन्तु अपना कार्य हो जाने पर उनके उपकार को भुला दिया। वह तो लक्ष्मण के भय से इतना सक्रिय हुआ। सुग्रीव शठ, क्रूर और निर्दय है। वह राज्य के लिए मुझे बन्धन में डाल देगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यहीं मरणान्त उपवास करूंगा। मेरा मर जाना ही अच्छा है। ऐसा कहकर वह

समुद्र के उत्तर-तट पर कुश बिछाकर बैठ गया। उसी समय एक दूसरा भय आ उपस्थित हुआ।

जहाँ अंगद आमरण उपवास के लिए बैठा था वहाँ गृध्रराज सम्पाति आये। वानरों को बैठे देखकर वे प्रसन्न हुए और सोचने लगे कि वानरों में जो मरता जायेगा, उसका मैं क्रमशः भक्षण करता जाऊंगा और यह बात कही भी। पक्षी की बात सुनकर अंगद हनुमान् से बोले कि देखो, वानरों पर सहसा यह विपत्ति भी आ गयी। सीता का प्रिय करने की इच्छा से गृध्रराज जटायु ने जो साहसपूर्ण कार्य किया था, वह सबको पता होगा। गृध्रराज जटायु ही सुखी हैं जो रावण के हाथ मारे गये और परमगति को प्राप्त हुए। वानरों के दुःखमय वचनों को सुनकर सम्पाति बोले– वह कौन है जो मेरे प्राणों से भी प्रिय भाई जटायु के वध की बात कह रहा है ? अपने भाई का नाम आज बहुत दिनों के बाद मेरे कान में पड़ा है। वानरो! मुझे अपने भाई के विनाश का वृत्तान्त सुनने की इच्छा है।

सम्पाति को पर्वत-शिखर से उतार कर नीचे अपने पास लाकर अंगद ने अपना तथा कुल का परिचय दिया और राम की समस्त कथा, सीता-हरण तथा जटायु-वध बताया। तदनन्तर कैसे सुग्रीव से मित्रता तथा वाली का वध हुआ, उस का वृत्तान्त सुनाया। फिर उसके बाद खोजने के सब प्रयास तथा अपनी असफलता और उससे निराश होकर आमरण उपवास की बात बतायी।

वानरों के मुख से ये बातें सुनकर दुःखी होकर सम्पाति ने कहा कि रावण के साथ जो मारा गया, वह मेरा छोटा भाई जटायु था। मैं बूढ़ा हूँ। मेरे पंख जल गये। अब मुझ में प्रतिशोध लेने की शक्ति नहीं, इसलिए चुपचाप सह लेता हूँ। पहले की बात है, इन्द्र के द्वारा वृत्रवध के प्रसंग में जीत के लिए हम दोनों स्वर्गलोक गये। चक्कर लगाकर लौटते समय सूर्य के पास आये तो उनके तेज से जटायु शिथिल होने लगा। भाई को सूर्य की किरणों से व्याकुल देखकर मैंने अपने दोनों पंखों से उसे ढक लिया। उस समय मेरे दोनों पंख जल गये और मैं इस पर्वत पर गिर गया। यहाँ रहकर कभी अपने भाई का समाचार न पा सका। सम्पाति की बात सुनकर अंगद ने कहा कि यदि आप उस राक्षस का निवासस्थान जानते हैं तो हमें बताइये। वानरों का हर्ष बढ़ाते हुए सम्पाति ने कहा– एक दिन मैंने दुरात्मा रावण को एक रूपवती युवती को हर कर ले जाते देखा था। वह 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!' रट लगा रही थी। मैं समझता हूँ कि वह सीता ही थी। रावण महर्षि विश्रवा का पुत्र और कुबेर का भाई है। लंका में निवास करता है। यहाँ से चार सौ कोस के अन्तर पर एक द्वीप है, वहीं वह रहता है। फिर सम्पाति ने लंका की नगरी का वर्णन किया और कहा– लंका पहुँचने पर तुम सीता को देख सकोगे। अब तुम इस खारे पानी के समुद्र को लांघने का कोई उपाय सोचो, फिर सीता के पास जा, सफल-मनोरथ होकर किष्किन्धा पुरी को लौटोगे। अब मैं अपने भाई जटायु को जलाञ्जलि प्रदान करूंगा।

गृध्रराज के द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर सब वानर हर्षित हो गये। वानर व भालुओं में श्रेष्ठ जाम्बवान् ने सम्पाति से पूछा कि सीता कहाँ हैं, किसने उन्हें देखा है ? कौन हरकर ले गया ? सम्पाति ने अपने पुत्र पक्षीप्रवर सुपार्श्व के द्वारा देखे जाने का वृत्तान्त सुनाया।

सम्पाति जब अपने भाई को जलाञ्जलि देकर आ गये तो सभी वानर उन्हें चारों ओर से घेरकर बैठ गये। सम्पाति ने कहा– मैं सीता को कैसे जानता हूँ, यह वृत्तान्त सुनो। प्राचीन काल में मैं सूर्य की किरणों से झुलस कर इस विन्ध्यपर्वत के शिखर पर गिरा था। छः रातें बीतने पर जब चेत आया तो मैं सहसा किसी भी वस्तु को पहचान न सका। सब ओर दृष्टि डालने के बाद मेरी स्मरण-शक्ति लौटी। मुझे अनुमान हुआ कि यह दक्षिण समुद्र-तट पर स्थित विन्ध्यपर्वत है। पूर्वकाल में यहाँ एक पवित्र आश्रम था। निशाकर मुनि उसमें निवास करते थे। अब वे स्वर्गवासी हो गये। मुनि के दर्शन की इच्छा से मैं उनकी प्रतीक्षा करने लगा। वे बहुत सिद्ध महात्मा थे। ऋषि मुझे देखकर प्रसन्न हुए और बोले– सौम्य! तुम्हारे रोएं गिर गये हैं, दोनों पंख जल गये हैं, इसका कारण क्या है ? सम्पाति! मैं तुम्हें पहिचान गया। तुम और तुम्हारा भाई जटायु यहाँ आते थे। तुम्हें कौन-सा रोग लग गया? किसी ने दण्ड तो नहीं दिया है? तुम स्पष्ट रूप से कहो।

उनके पूछने पर मैंने सूर्य का अनुगमनरूप जो दुष्कर कार्य किया था, वह बताया। फिर ऋषि को, मैंने तथा जटायु ने कैसे यह कर्म किया तथा क्या दृश्य देखे, यह बताया।

मेरी बात सुनकर थोड़ी देर तक ध्यान करके महर्षि निशाकर बोले–सम्पाति! चिन्ता न करो। तुम्हारे छोटे और बड़े पंख निकल आयेंगे, आँखें भी ठीक हो जायेंगी। मैंने पुराण में आगे होने वाली बातें सुनी हैं। इक्ष्वाकुवंश में दशरथ नाम से प्रसिद्ध राजा होंगे। उनके एक महातेजस्वी पुत्र राम नाम से होंगे। वे पिता की आज्ञा से वन जायेंगे और उनकी पत्नी को रावण हर ले जायेगा। वह देवों और दानवों के लिए अवध्य होगा। श्री राम के भेजे हुए दूत वानर यहाँ सीता का पता लगाते हुए आयेंगे। तुम उन्हें पता बताना; यहाँ से कहीं अन्यत्र न जाना। तुम्हें फिर नये पंख प्राप्त हो जायेंगे।

तभी से मैं तुम लोगों के आने की बाट देख रहा हूँ। मुनि से वार्तालाप के बाद आठ हजार से अधिक वर्ष निकल गये। सम्पाति जब बात कर रहे थे उसी समय उनके दो नये पंख निकल आये और उन्होंने कहा कि मुझे पंखों का प्राप्त होना तुम लोगों की कार्यसिद्धि का विश्वास दिलाने वाला है। फिर वे वहाँ से उड़ गये। तदनंतर श्रेष्ठ वानर अपने पुरुषार्थ को फिर से पा गये तथा सीता के अन्वेषण में लग गये।

सभी वानर सीता जी के दर्शन की इच्छा मन में लिये समुद्र-तट पर गये। वहाँ से उस महासागर को देखकर समस्त श्रेष्ठ वानर विषाद में पड़ गये। अब कैसे, क्या करना चाहिये, यह चिन्ता करने लगे। अंगद वानरों को आश्वासन देते हुए बोले–तुम्हें अपने मन में विषाद नहीं लाना चाहिये। विषाद पुरुष का नाश कर डालता है। मंत्रणा करके दूसरे दिन अंगद ने

पूछा– यह बताओ कि तुम लोगों में कौन ऐसा महातेजस्वी वीर है जो इस समुद्र को लांघ जायेगा? यह सौ योजन लम्बा है। अंगद की बात सुनकर कोई नहीं बोला। तब अंगद ने कहा– हम लोगों में सभी की एक-सी गति नहीं हो सकती। इसलिए छलांग लगा कर लांघने में जिसकी जितनी शक्ति हो, वह उसे बताये। अनेक श्रेष्ठ वानरों ने अपनी शक्ति का वर्णन किया। किसी की क्षमता सौ योजन तक नहीं थी। जाम्बवान् ने, जो सबसे बूढ़े थे, कहा कि युवावस्था जैसी शक्ति तो अब नहीं रही, फिर भी एक छलांग में नब्बे योजन तक चला जाऊंगा, इसमें संशय नहीं है। अंगद ने कहा– मैं इस महासागर के सौ योजन को लांघ जाऊंगा किन्तु उधर से लौटने की शक्ति रहेगी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता है। जाम्बवान् ने कहा– तुम्हारी गमनशक्ति विदित है, परन्तु तुम सबके स्वामी हो, अतः तुम्हें भेजना उचित नहीं है। अंगद ने कहा– यदि मैं नहीं जाऊंगा और अन्य कोई तत्पर नहीं, तो क्या मार्ग है ? जिस उपाय से कार्य-सिद्धि में रुकावट न पड़े, उसका आप विचार करें। जाम्बवान् ने कहा– मैं ऐसे वीर को प्रेरित कर रहा हूँ जो इस कार्य को सिद्ध कर सकेगा। ऐसा कहकर जाम्बवान् ने हनुमान् को प्रेरित किया जो सुख से (मौज में) अकेले बैठे थे।

जाम्बवान् ने हनुमान् जी से कहा– वीर! तुम एकान्त में क्यों बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं ? तुम सुग्रीव के समान पराक्रमी तथा तेज और बल में श्रीराम और लक्ष्मण के तुल्य हो। तुम गरुड़ के समान विख्यात तीव्रगामी हो। तुम्हारा बल, बुद्धि, तेज और धैर्य, सबसे बढ़कर है, फिर तुम समुद्र लांघने के लिए क्यों अपने को तैयार नहीं करते ? शापवश अप्सरा पुंजिकस्थला वानरराज कुञ्जर की पुत्री अञ्जना के रूप में आयी। वह वानरराज केसरी की पत्नी हुई। एक दिन जब वह पर्वतशिखर पर विचर रही थी, वायु देवता ने उस पर मोहित हो, उसे अपनी विशाल भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया। अञ्जना घबरा गयी और बोली– कौन मेरे पातिव्रत्य का नाश करना चाहता है? यह सुनकर पवनदेव ने कहा– मैं तुम्हारी हिंसा या धर्म का नाश नहीं कर रहा हूँ। मैंने अव्यक्त रूप से मानसिक संकल्प द्वारा जो तुम्हारा संस्पर्श किया है, इससे तुम्हें बल-पराक्रम से सम्पन्न एवं बुद्धिमान् पुत्र प्राप्त होगा। वह मेरे समान सामर्थ्यवान् होगा। ऐसा कहने पर तुम्हारी माता संतुष्ट हो गयी तथा तुम्हें एक गुफा में जन्म दिया। बाल्यावस्था में ही उदित सूर्य को फल समझ कर लेने के लिए तुम आकाश में उछल पड़े और तीन सौ योजन ऊँचे जाने के बाद भी उसके तेज से तुम्हारे मन में कोई खेद या चिन्ता नहीं हुई। जब तुम सूर्य की ओर तीव्रता से बढ़ रहे थे तो इन्द्र ने कुपित होकर तुम्हारे ऊपर वज्र का प्रहार किया। उस समय उदयगिरि के शिखर पर तुम्हारे हनु (ठोड़ी) का बायाँ भाग वज्र के आघात से भंजित हो गया। तभी से तुम्हारा नाम हनुमान् है। तुम पर प्रहार किया गया, इससे वायु देव कुपित हो गये। उन्होंने तीनों लोकों में प्रवाहित होना छोड़ दिया। सभी देवगण घबरा गये और सब कुपित वायुदेव को मनाने लगे। पवन देव के प्रसन्न होने पर ब्रह्मा जी ने तुम्हारे लिए वर दिया कि

तुम समरांगण में किसी भी शस्त्र के द्वारा मारे नहीं जा सकोगे। इन्द्र ने उत्तम वर दिया कि मृत्यु तुम्हारी इच्छा के अधीन होगी। वानरश्रेष्ठ हनुमान् ! उठो और इस महासागर को लांघ जाओ, क्योंकि तुम्हारी गति सभी प्राणियों से बढ़कर है। जाम्बवान् से प्रेरणा पाकर वानर सेना का हर्ष बढ़ाते हुए हनुमान् जी ने अपना विराट् रूप प्रकट किया।

सौ योजन के समुद्र को लांघने के लिए हनुमान् जी को सहसा बढ़ते और वेग से परिपूर्ण होते देख सब वानर तुरंत शोक छोड़कर हर्ष से भर गये और महाबली हनुमान् जी की स्तुति करते हुए घनघोर गर्जना करने लगे। अपनी प्रशंसा सुनकर महाबली हनुमान् जी ने शरीर को और भी बढ़ाना आरम्भ किया, साथ ही अपनी पूँछ को बारम्बार घुमाकर अपने महान् बल का स्मरण किया। हनुमान् जी का रूप उस समय बड़ा ही उत्तम प्रतीत होता था। वे वानरों के बीच में उठकर खड़े हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया और उन्होंने बड़े-बूढ़े वानरों को प्रणाम करके इस प्रकार कहा : कपिवरो! तुम देखोगे, मैं महागिरि मेरु के समान विशाल शरीर धारण करके स्वर्ग को ढकता और आकाश को निगलता हुआ-सा आगे बढूंगा। समुद्र को लांघते समय मेरा वैसा ही रूप प्रकट होगा जैसा तीन पगों को बढ़ाते समय वामन रूपधारी भगवान् विष्णु का हुआ था। वानरो ! मैं बुद्धि से जैसा देखता या सोचता हूँ, मेरे मन की चेष्टा भी उसके अनुरूप ही होती है। मुझे निश्चित जान पड़ता है कि मैं विदेहकुमारी का दर्शन करूंगा, अतः तुम लोग हर्ष मनाओ।

अमित तेजस्वी वानरश्रेष्ठ हनुमान् जी जब इस प्रकार गर्जना कर रहे थे, उस समय सभी वानर अत्यन्त हर्ष में भर कर चकित भाव से उनकी ओर देख रहे थे। हनुमान् जी की बातें सुनकर जाम्बवान् को बड़ी प्रसन्ता हुई और वे बोले–वेगशाली पवनकुमार! तात, तुमने अपने बन्धुओं का महान् शोक नष्ट कर दिया। यहाँ आये सभी वानर तुम्हारे कल्याण की कामना करते हैं। अब वे कार्य की सिद्धि के उद्देश्य से एकाग्रचित हो तुम्हारे लिए मंगल कृत्य, स्वस्तिवाचन आदि का अनुष्ठान करेंगे। ऋषियों के प्रसाद, वृद्ध वानरों की अनुमति तथा गुरुओं की कृपा से तुम इस महासागर के पार हो जाओ। जब तुम लौट कर यहाँ आओगे, तब तक हम तुम्हारी प्रतीक्षा में एक पैर से खड़े रहेंगे।

तदनंतर हनुमान् जी ने कहा कि जब मैं यहाँ से छलांग मारूंगा, उस समय संसार में कोई भी मेरे वेग को धारण नहीं कर सकेगा। इन महेन्द्र-शिखरों पर ही वेगपूर्वक पैर रखकर मैं यहाँ से छलांग मारूंगा। यों कहकर हनुमान् जी पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र पर चढ़ गये और वे इधर-उधर टहलने लगे। हनुमान् जी का मन वेगपूर्वक छलांग मारने की योजना में लगा हुआ था। उन्होंने चित्त को एकाग्र करके मन ही मन लंका का स्मरण किया।

(किष्किन्धाकाण्ड पूर्ण)

सुन्दरकाण्ड
प्रथम सर्ग

वीर हनुमान् समुद्र के ऊपर से छलांग लगाकर लंका में कूदे; रात्रि में घर-घर जाकर सीता का अन्वेषण (खोज); नाना दृश्य देखकर अन्ततः अशोक वाटिका में पहुँचे।

महाबली हनुमान् जी ने रावण द्वारा हरी गयी सीता के निवास-स्थान का पता लगाने के लिए आकाश-मार्ग से जाने का विचार किया। उन्होंने मस्तक और ग्रीवा ऊँची की। उस पर्वत पर यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और नाग परिवार-सहित निवास करते थे। बड़े-बड़े गजराजों से भरे हुए उस पर्वत पर कपिवर हनुमान् जी विशालकाय हाथी के समान जान पड़ते थे। उन्होंने सूर्य, इन्द्र, पवन, ब्रह्मा और सर्व भूतों को हाथ जोड़कर उस पार जाने का विचार किया। फिर अपने पिता पवन देव को प्रणाम किया। उन्होंने अपने शरीर को अत्यधिक बढ़ा लिया और अपनी दोनों भुजाओं तथा चरणों से उस पर्वत को दबाया। पर्वत काँप उठा और दो घड़ी तक डगमगाता रहा। पर्वत हिलने से फूल झड़ने लगे, जल के स्रोत बहने लगे, बड़ी बड़ी-शिलाएं गिरने लगीं। सभी जीव गुफाओं में घुस गये तथा चिल्लाने लगे। बड़े-बड़े सर्प उस पर्वत की शिलाओं को डसने लगे। वहाँ रहने वाले तपस्वी और विद्याधर भयभीत होकर अपनी स्त्रियों के साथ वहाँ से ऊपर उठकर अन्तरिक्ष में चले गये। उस समय हनुमान् जी अग्नि के समान जान पड़ते थे। उन्होंने अपने शरीर को हिलाया, रोम झाड़े तथा महान् मेघ के समान गर्जना की। अपनी पूँछ को आकाश में फैंका, भुजाओं को पर्वत पर स्थापित किया (जमाया)। फिर ऊपर के सब अंगों को इस प्रकार सिकोड़ लिया कि वे कटि की सीमा में ही आ गये। साथ ही उन्होंने दोनों पैरों को भी समेट लिया। उस समय उनमें तेज, बल, और पराक्रम, सभी का आवेश हुआ। उन्होंने नेत्रों को ऊपर उठाया और आकाश की ओर देखते हुए, प्राणों को हृदय में रोका। फिर पैरों को अच्छी प्रकार से स्थिर किया। कानों को सिकोड़ कर उन वानर-शिरोमणि ने अन्य वानरों से इस प्रकार कहा– जैसे श्रीराम का छोड़ा हुआ वाण वायुवेग से चलता है, उसी प्रकार मैं रावण द्वारा पालित लंका में जाऊंगा। यदि लंका में सीता को नहीं देखूंगा तो स्वर्गलोक चला जाऊंगा। यदि सीता का दर्शन वहाँ भी नहीं हुआ तो रावण को बाँधकर लाऊंगा। ऐसा कहकर वेगशाली श्री हनुमान् जी ने बड़े वेग से ऊपर की ओर छलांग मारी। आकाश में फैलायी हुई उनकी दोनों भुजाएं ऐसी दिखाई देती थीं मानो पर्वत से दो पंचमुखी सर्प निकले हों। हनुमान् जी ऐसे प्रतीत होते थे मानो महासागर को पी रहे हों। जैसे पुच्छयुक्त उल्का आकाश में जाती देखी जाती है, उसी प्रकार अपनी पूँछ के कारण कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी भी दिखाई देते थे। कपि-केसरी हनुमान् जी की

दस योजन चौड़ी और तीस योजन लंबी छाया, वेग के कारण, अत्यन्त रमणीय जान पड़ती थी। वे आकाश में पंखधारी पर्वत के समान जान पड़ते थे। तीव्र वेग से आगे बढ़ते हनुमान् जी को देखकर देव, गन्धर्व और चारण उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे। हनुमान् जी जिस समय समुद्र पार कर रहे थे, तो समुद्र ने विचार किया कि यदि मैं सहायता नहीं करूंगा तो सर्वथा निन्दनीय हो जाऊंगा। समुद्र ने जल में छिपे, सुवर्णमय गिरिश्रेष्ठ मैनाक से कहा– शैल! ऊपर, नीचे और अलग-बगल, सब ओर बढ़ने की तुममें शक्ति है, इसलिए मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम ऊपर की ओर उठो ताकि हनुमान् तुम्हारे ऊपर कुछ काल तक ठहरें, विश्राम करें। यह सुनकर मैनाक पर्वत तुरन्त ही जल से ऊपर को उठ गया। मैनाक को देखकर हनुमान् जी ने सोचा कि कोई विघ्न उपस्थित हो गया है। हनुमान् जी ने पर्वत के उच्च शिखर को अपनी छाती के धक्के से नीचे गिरा दिया। मैनाक प्रसन्न होकर मनुष्य रूप धारण करके अपने शिखर पर स्थित होकर बोला– आपने दुष्कर कर्म किया है; अब उतरकर विश्राम कर लीजिये, फिर आगे की यात्रा करिये; समुद्र आपका सत्कार करना चाहता है। मैनाक ने हनुमान् जी को बताया कि पहले पर्वत सम्पूर्ण दिशाओं में उड़ते फिरते थे, परन्तु देवराज इन्द्र ने कुपित होकर वज्र से पर्वतों के पंख काट डाले। जब इन्द्र मेरी ओर आ रहे थे, तो महात्मा वायु ने मुझे समुद्र में गिरा दिया। आपके पिता ने मेरे पंखों की रक्षा कर ली, इसलिए मैं आपका आदर करता हूँ। आप मेरे माननीय हैं। मैनाक के ऐसा कहने पर हनुमान् जी ने कहा– मैनाक! मुझे भी आप से मिलकर प्रसन्नता हुई। मेरा अतिथ्य हो गया। मेरे कार्य का समय मुझे शीघ्रता करने के लिए प्रेरित कर रहा है। ऐसा कहकर हनुमान् जी ने हँसते हुए मैनाक का अपने हाथ से स्पर्श किया और आकाश में चलने लगे। तदनन्तर देव, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियों ने नागमाता सुरसा से कहा कि हनुमान् समुद्र के ऊपर जा रहे हैं, तुम दो घड़ी इनके मार्ग में विघ्न डालो। हम लोग पुनः हनुमान् के बल और पराक्रम की परीक्षा लेना चाहते हैं। देवताओं के ऐसा कहने पर सुरसा ने राक्षसी का रूप धारण किया और हनुमान् जी को घेर कर बोली– देवेश्वरों ने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताकर अर्पित कर दिया है। तुम मेरे मुँह में चले आओ। तुरन्त ही वह विशाल मुँह फैलाकर हनुमान् जी के सामने खड़ी हो गयी। सुरसा के ऐसा कहने पर हनुमान् जी ने प्रसन्नमुख होकर अपने जाने का अभिप्राय बताया और कहा कि तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये, अथवा मैं सीता जी के दर्शन करके श्रीराम से मिल लूंगा तो फिर तुम्हारे मुख में आ जाऊंगा। सुरसा ने कहा– मुझे वर मिला है कि कोई मुझे लांघकर नहीं जा सकता, और अपना मुँह बहुत बड़ा बना लिया। हनुमान् जी ने भी स्वयं को उतना ही बढ़ाया। फिर उसने और विशाल मुँह बनाया; हुनमान् जी ने अपना शरीर दुगना कर लिया। यह देखकर सुरसा ने अपना मुँह सौ योजन कर लिया। उसे देखकर हनुमान् जी ने अपने शरीर को अंगूठे के बराबर कर लिया और सुरसा के मुँह में प्रवेश करके बाहर आकर बोले–दक्षकुमारी! तुम्हें

नमस्कार है। मैं अब तुम्हारे मुँह में प्रवेश कर चुका। तुम्हारा वर भी सत्य हो गया। अब मैं सीता को देखने जाऊंगा। सुरसा ने अपना वास्तविक रूप धारण करके कहा– सुखपूर्वक जाओ, सीता को महात्मा श्रीराम से शीघ्र मिलाओ। हनुमान् जी फिर आगे बढ़ने लगे। इस प्रकार जाते हुए हनुमान् जी को इच्छानुसार रूप धारण करने वाली, सिंहिका नाम की राक्षसी ने देखा। उसने मन ही मन सोचा कि दीर्घ काल के बाद यह विशाल जीव मेरे वश में आया है। ऐसा सोचकर राक्षसी ने हनुमान् जी की छाया पकड़ ली। हनुमान् जी ने सोचा– अहो, सहसा किसने मुझे पकड़ लिया? यही सोचते हुए अगल, बगल, ऊपर और नीचे दृष्टि डाली। इतने ही में उन्हें एक विशालकाय प्राणी दिखाई दिया और वे सोचने लगे कि सुग्रीव ने इस अद्भुत जीव की चर्चा की थी। यह वास्तव में सिंहिका है। फिर शरीर को बढ़ाया और विशालकाय हो गये। सिंहिका गर्जना करते हुए वानर वीर की ओर दौड़ी। हनुमान् जी ने उसका अत्यन्त विकराल और बढ़ा हुआ मुँह देखा और शरीर को छोटा बनाकर उसके विकराल मुँह में आ गये तथा अपने तीखे नखों से उस राक्षसी के मर्मस्थानों को विदीर्ण कर डाला और बाहर निकल आये। सिंहिका प्राणशून्य होकर समुद्र के जल में गिर पड़ी। यह देखकर आकाशचारी प्राणियों ने हनुमान् जी की प्रशंसा की तथा कहा कि कार्य सिद्ध करो। जिस पुरुष में तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता, ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्य में कभी असफलता नहीं मिलती। इसके बाद हनुमान् जी आकाश में वेग से चलने लगे। सौ योजन समुद्र के पार पहुँचकर उन्होंने दृष्टि डाली, तो हरी-भरी वन-श्रेणी दिखाई दी। भाँति-भाँति के वृक्षों से सुशोभित लंका नामक द्वीप उन्होंने देखा। हनुमान् जी ने विचार किया कि मेरी विशालता तथा वेग देखते ही राक्षसों के मन में मेरे प्रति कौतूहल उत्पन्न होगा, वे मेरा भेद जानने के लिए उत्सुक हो जायेंगे। अतएव अपना विशाल शरीर संकुचित करके पुनः अपने सामान्य स्वरूप में स्थित हो गये। फिर अपने कर्तव्य का विचार करके छोटा-सा रूप धारण कर लिया तथा नारियल के वृक्षों से विभूषित लम्ब पर्वत के विचित्र लघु शिखरों वाले, महान् समृद्धिशाली शृंग पर कूद पड़े और वहाँ से अमरावती के समान सुशोभित लंका पुरी की शोभा देखी।

महाबली हनुमान् समुद्र को पार करके त्रिकूट (लम्ब) नामक पर्वत के शिखर पर स्वस्थ भाव से खड़े हो, लंका पुरी की ओर देखने लगे। सौ योजन समुद्र लांघकर भी वे लंबी साँस नहीं खींच रहे थे और न ग्लानि का ही अनुभव करते थे। वे वृक्षों से आच्छादित, पर्वतों और फूलों से भरी हुई वन-श्रेणियों में विचरने लगे और वहाँ से लंका का भी अवलोकन किया। हनुमान् जी ने बहुत सी बावड़ियाँ, रमणीय क्रीड़ास्थान तथा नाना प्रकार के जलाशय व उद्यान देखे। धीरे-धीरे वे लंका पुरी के पास पहुँचे। उसके चारों ओर खाइयाँ खुदी हुई थीं। भयंकर राक्षस धनुष धारण करके घूम रहे थे। वह पुरी सोने की चारदीवारी से घिरी हुई थी तथा श्वेत भवनों से भरी हुई थी। ऊँची-ऊँची, सज्जायुक्त सड़कें तथा अट्टालिकाओं पर फहराती

हुई ध्वजा-पताकाऐं पुरी की शोभा बढ़ा रही थीं। उस नगर की बड़ी भारी चौकसी, चारों ओर समुद्र की खाई तथा रावण जैसे भयंकर शत्रु को देखकर हनुमान् जी विचारने लगे कि यदि वानर यहाँ तक आ जायें, तो भी लंका पर विजय नहीं पा सकते। अच्छा, पहले यह तो पता लगाऊँ कि सीता जीवित हैं या नहीं; सीता जी के दर्शन करने के पश्चात् ही इस विषय पर कोई विचार करूंगा। पता लगाने के उपाय पर दो घड़ी तक विचार वे करते रहे। उन्होंने सोचा– मैं इस रूप से राक्षसों की इस नगरी में प्रवेश नहीं कर सकता। अभी बलवान् राक्षसों से आँख बचानी होगी। मुझे रात्रि में प्रवेश करना चाहिये। मैं कार्य सिद्ध करने के लिए रात में छोटा-सा रूप धारण करके लंका में प्रवेश करूंगा। सूर्यास्त के पश्चात् रात में उन्होंने अपना शरीर छोटा बना लिया तथा बिल्ली के बराबर होकर दिखाई देने लगे। तब हनुमान् जी तुंरत ही उछलकर पुरी में घुस गये।

उस पुरी के सुन्दर फाटकों पर मतवाले हाथी शोभा पाते थे। ग्रहों और नक्षत्रों के सदृश विद्युत्-दीपों के प्रकाश से वह पुरी प्रकाशित थी। हनुमान् जी परकोटे पर चढ़ गये। लंका पुरी का अवलोकन करके उनका चित्त आश्चर्य से चकित हो उठा। तदनंतर महाकपि हनुमान् जी पुरी में प्रवेश करने लगे। इतने में ही उस नगरी की अधिष्ठात्री देवी लंका ने अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट होकर उन्हें देखा और सामने खड़ी होकर गर्जना करती हुई बोली– वनचारी वानर! तू कौन है और किस कार्य से आया है? हनुमान् जी ने कहा– तू मुझसे जो पूछ रही है वह मैं ठीक-ठीक बता दूंगा। परन्तु पहले यह बता कि तू कौन है ? इतना सुनते ही वह कठोर वाणी में बोली– मैं राक्षसराज रावण की सेविका हूँ। मैं इस नगरी की रक्षा करती हूँ। मेरी अवहेलना करके इस पुरी में प्रवेश करना सम्भव नहीं है। हनुमान् जी ने उससे कहा कि मैं अट्टालिकाओं, परकोटों, नगर-द्वारों सहित इस लंका नगरी को देखूंगा। इसी प्रयोजन से यहाँ आया हूँ। लंका फिर कठोर वाणी में बोली कि तू मुझे परास्त किये बिना इस पुरी को नहीं देख सकता। हनुमान् जी ने कहा– भद्रे! इस पुरी को देखकर मैं फिर जैसे आया हूँ उसी प्रकार लौट जाऊंगा। यह सुनकर लंका ने हनुमान् को एक थप्पड़ मारा। इस प्रकार पीटे जाने पर हनुमान् ने कुपित होकर एक मुक्का जड़ दिया। उस लघु प्रहार से ही उस निशाचरी के सारे अंग व्याकुल हो गये। वह सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ी। हनुमान् जी को उस पर दया आ गयी। वह भी अत्यन्त उद्विग्न हुई हनुमान् जी से बोली– महाबाहो! प्रसन्न होइये, मेरी रक्षा कीजिये। आपने अपने पराक्रम से मुझे परास्त कर दिया। मैं आपसे एक सच्ची बात कहती हूँ। ब्रह्माजी ने वरदान देते समय मुझसे कहा था कि जब कोई वानर तुम्हें अपने पराक्रम से वश में कर लेगा तो समझ लेना कि राक्षसों पर बड़ा भय आ पहुँचा है। अब सीता के कारण रावण तथा समस्त राक्षसों के विनाश का समय आ पहुँचा है। कपिश्रेष्ठ! आप पुरी में प्रवेश करिये और उस वर को पूर्ण करिये। सर्वत्र विचरण करके सीता की खोज करिये।

लंका राक्षसी को परास्त करके हनुमान् जी परकोटे को फाँद गये और लंका में घुस गये तथा विचरण करने लगे। एक भवन से दूसरे भवन में प्रवेश करते गये। कहीं मनोहर गीत सुने तथा कहीं पुरुषों के ताल ठोकने और गर्जने की भी आवाजें सुनाई दीं। बहुतों को मन्त्र जपते तथा स्वाध्याय में तत्पर देखा। रावण की स्तुति करते निशाचरों की भीड़ देखी। मध्य भाग में बहुत से गुप्तचर दिखाई दिये। निशाचरों के विचित्र-विचित्र रूप देखे। अनेक मदिरापान से मतवाले राक्षसों को देखा जो अनेक प्रकार के विचित्र व्यवहार कर रहे थे। रूप-सौन्दर्य से प्रकाशित, अनेक स्त्रियाँ भी दिखाई पड़ीं। परन्तु सीता को उन्होंने वहाँ कहीं नहीं देखा। बहुत देर तक खोजने के बाद भी जब हनुमान् जी सीता को नहीं देख पाये तो वे दुःखी और शिथिल हो गये।

फिर हनुमान् जी रावण के महल में पहुँचे और आस-पास विचरने लगे। वे सभी भवनों को देखते हुए प्रहस्त के घर में कूद गये। फिर महापार्श्व के महल में पहुँचे। तदनंतर वे कुम्भकर्ण के तथा फिर विभीषण के महल में कूद गये। अनेक घरों में गये। फिर रावण के महल पर आ गये। उसमें सैकड़ों अट्टालिकाएं थीं। ऐसे विशाल प्रासाद में हनुमान् जी ने प्रवेश किया।

हनुमान् जी ने रावण के महल में अनेक दुर्लभ तथा अद्भुत वस्तुऐं देखीं। उन्होंने अनुपम भवन जैसा पुष्पक विमान देखा जो मेघ के समान ऊँचा तथा मनोहर था। उसकी सजावट तथा छटा अद्भुत थी। उस विमान में श्वेत भवन बने हुए थे। उसे देखकर हनुमान् जी बड़े विस्मित हुए, परन्तु सीता को न देखकर बड़ी चिन्ता में पड़ गये।

हनुमान् जी ने उस विशाल विमान को पुनः देखा। उसकी रचना को सौन्दर्य आदि की दृष्टि से मापा नहीं जा सकता था। स्वयं विश्वकर्मा ने ही उसे बनाया था। उसमें जो विशेषताएं थीं वे देवताओं के विमानों में भी नहीं थीं। रावण ने उसे प्राप्त करने के लिए तप किया था तथा भगवान् के चिन्तन में चित्त को एकाग्र किया था। वह स्वामी के मन का अनुसरण करते हुए बड़ी शीघ्रता से चलने वाला था। आश्चर्यजनक विचित्र वस्तुओं का समुदाय उसमें एकत्र किया गया था। ऐसे उत्तम पुष्पक विमान को हनुमान् जी ने वहाँ देखा।

हनुमान् ने एक निर्मल व विस्तृत भवन, जिसकी लम्बाई एक योजन तथा चौड़ाई आधा योजन थी, देखा। वे उस भवन में चक्कर लगाते रहे और ऐसे सुन्दर गृह में जा पहुँचे जो रावण का निजी निवास-स्थान था। हाथों में हथियार लिये हुए बहुत से राक्षस उसकी रक्षा करते थे। वह रावण की राक्षसजातीय पत्नियों तथा पराक्रमपूर्वक हरकर लायी हुई राजकन्याओं से भरा हुआ था। भवन की अद्भुत शोभा देखकर हनुमान् जी तर्क-वितर्क करने लगे कि सम्भव है यही स्वर्गलोक या देवलोक हो। रावण का वह महल स्त्रियों से प्रकाशित होकर शोभा पा रहा था। स्त्रियों से घिरा हुआ रावण चन्द्रमा के समान शोभा पा रहा था। राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, दैत्यों, गन्धर्वों तथा राक्षसों की कन्याएं काम के वशीभूत होकर रावण की पत्नियाँ बन गयी थीं। वहाँ ऐसी कोई स्त्री दिखाई नहीं देती थी जिसे बल-पराक्रम से सम्पन्न होने

पर भी रावण, उसकी इच्छा के विरुद्ध, बलात् हर लाया हो। फिर उन्होंने सोचा–निश्चय ही सीता, गुणों की दृष्टि से, इन सबकी अपेक्षा बहुत ही बढ़-चढ़कर हैं। रावण ने मायामय रूप धारण करके सीता को छल कर नीच कर्म किया है।

एक उत्तमोत्तम विछौने पर रावण को सोते देखा। उसके चारों ओर खड़ी बहुत सी स्त्रियाँ हाथों में चँवर लिये हवा कर रही थीं। साँस लेता रावण फुफकारते हुए सर्प के समान जान पड़ता था। रावण की फैलायी हुई दो भुजाएं सोने के बाजूबंद से विभूषित थीं। उन पर वज्र के द्वारा आघात के भी चिह्न थे। हनुमान् जी ने उन पत्नियों को भी देखा जो उसके चरणों के आस-पास सो रही थीं। उन सबकी शय्याओं से पृथक्, एकान्त में विछी हुई एक सुन्दर शय्या पर सोयी हुई एक रूपवती युवती को भी हनुमान् जी ने देखा। उसे देखकर हनुमान् जी ने अनुमान किया कि ये ही सीता जी हैं। वास्तव में वह मन्दोदरी थी। वे आनन्दमग्न हो गये।

फिर इस विचार को असंगत जानते हुए छोड़ कर हनुमान् जी ने सोचा– सीता श्रीराम से बिछुड़ गयी हैं; इस दशा में वे न तो सो सकती हैं, न भोजन कर सकती हैं, शृंगार और अलंकार का तो प्रश्न ही नहीं है। अतः अवश्य ही यह सीता नहीं, कोई दूसरी स्त्री है। अतः वे पुनः विचरने लगे। उस भवन में हनुमान् ने पानभूमि देखी जो सम्पूर्ण भोगों से सम्पन्न थी। वहाँ अनेक प्रकार की भोजन-सामग्री रक्खी थी। इस प्रकार हनुमान् जी ने रावण का सारा अन्तःपुर छान डाला, परन्तु उन्हें सीता जी का दर्शन नहीं हुआ। सोती हुई स्त्रियों को देखकर, हनुमान् जी धर्म के भय से शंकित हो उठे– मैंने कभी परस्त्रियों पर विषयी दृष्टि नहीं डाली। यहाँ सोयी हुई परायी स्त्रियों को देखना अच्छा नहीं है। तदनंतर हनुमान् जी के मन में एक दूसरी विचारधारा उत्पन्न हुई कि सीता को दूसरे स्थानों पर मैं ढूँढ भी तो नहीं सकता था, क्योंकि स्त्रियाँ तो स्त्रियों के बीच में ही देखी जाती हैं। मेरे मन में कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ। और उन्होंने पानभूमि छोड़कर अन्य स्थानों पर खोजना आरम्भ किया।

सीता जब कहीं भी दिखाई नहीं दी, तो हनुमान् जी को चिन्ता हुई कि सीता जीवित नहीं हैं। इस प्रकार थोड़ी देर तक हताश-से होकर फिर सोचने लगे– हताश न होकर उत्साह को बनाये रखना ही सफलता और सुख-सम्पत्ति का मूल कारण है। अब मैं उन स्थानों में सीता का अन्वेषण करूंगा जहाँ अब तक नहीं किया। वे भूमि के भीतर बने हुए घरों (तहखानों) में गये तथा अन्य स्थानों को भी छान मारा।

हनुमान् जी मन ही मन कहने लगे कि मैंने तो सब स्थान देख डाले। गृध्रराज सम्पाति ने तो सीता जी को रावण के महल में ही बताया था। फिर वे सीता के न मिलने पर अनेक विकल्प सोचने लगे। उन्होंने सोचा– यदि मैं सीता जी को देखे बिना ही लौट जाऊंगा तो मेरा पुरुषार्थ ही क्या रह जायेगा! सब प्रयास व्यर्थ गया। सीता के न मिलने के समाचार से श्रीराम की क्या दशा होगी, यह सोचने लगे। मैं सीता को देखे बिना यहाँ से कदापि नहीं लौटूंगा। तदनंतर पराक्रम का सहारा लेकर सोचा कि रावण का ही वध क्यों न कर डालूं,

अथवा इसे लेजाकर श्रीराम के हाथ सौंप दूँ। जब तक मैं सीता का दर्शन न कर लूंगा, तब तक बारंबार उनकी खोज करता रहूंगा। इधर यह बहुत बड़ी अशोक वाटिका है। इसके भीतर बड़े-बड़े वृक्ष हैं। अभी तक यहाँ खोज नहीं की, अब यहाँ भी करूंगा। इस प्रकार दो घड़ी सोचकर हनुमान् जी सहसा खड़े हो गये और सभी देवताओं तथा श्रीराम व सीता को नमस्कार किया और सोचने लगे कि अशोक वाटिका की रक्षा के लिए वहाँ निश्चय ही बहुत से राक्षस तैनात होंगे। मैंने अदृश्य रहने के लिए शरीर लघु (छोटा) बना लिया है। समस्त देवगण सिद्धि-सफलता प्रदान करें। अब सीता किस प्रकार, कब मेरे दृष्टि-पथ में आती हैं!

इस प्रकार विचार करते हुए हनुमान् जी अशोक वाटिका की बाहरी दीवार पर चढ़ गये। उन्होंने वहाँ से वाटिका में नाना प्रकार के वृक्ष फलों से लदे देखे और वे कूदकर वाटिका में जा पहुँचे तथा उसकी सुंदरता का अवलोकन करने लगे। तदनंतर महाकपि हनुमान् ने एक सुवर्णमय शिंशपा का वृक्ष देखा और उस पर चढ़कर सोचा कि सीता के लिए यह सुन्दर अशोक वाटिका सब प्रकार से अनुकूल ही है। वे यदि जीवित हैं तो यहाँ अवश्य पदार्पण करेंगी। वे घने पत्तों के बीच छिपकर देखने लगे।

अशोक वाटिका में सीता के दर्शन; रावण का आगमन और क्रुद्ध होकर वापसी; हनुमान् द्वारा सीता को श्रीराम का सन्देश और सान्त्वना प्रदान।

उस अशोक वाटिका में हनुमान् जी ने थोड़ी ही दूरी पर एक मंदिर देखा। उस मन्दिर को देखने के अनन्तर उनकी दृष्टि वहाँ एक सुन्दर स्त्री पर पड़ी, जो मलिन वस्त्र धारण किये, राक्षसियों से घिरीं हुई बैठी थी। उसका अवलोकन करके हनुमान् जी ने अनुमान किया कि हो न हो, यही सीता हैं। उनका शरीर बहुत ही सुन्दर था। वे तापसी के समान भूमि पर बैठी थीं। इस प्रकार इस अवस्था में सीता का दर्शन पाकर पवनपुत्र हनुमान् जी बहुत प्रसन्न हुए। वे मन ही मन श्रीराम के पास जा पहुँचे।

लगभग दो घड़ी तक कुछ सोच-विचार के बाद हनुमान् जी के नेत्रों में आँसू भर आये और वे विलाप करने लगे। वे राम के पराक्रम, शील तथा सीता के गुणों की प्रसंशा करते जाते थे और ये ही सीता हैं, ऐसा सोचकर उसी वृक्ष पर बैठे रहे। कुछ देर में चन्द्रमा उदित हो गया जिससे सीता जी स्पष्ट दिखाई देने लगीं।

हनुमान् जी ने जब भी सीता को देखने के लिए दृष्टि दौड़ायी, तब उनके पास भयानक रूपों वाली बहुत-सी राक्षसियाँ दिखाई दीं। सीता देवी वृक्ष के नीचे जड़ से सटी हुई बैठी थीं। पराक्रमी हनुमान् उसी वृक्ष की शाखा पर पत्तों में छिपे रहे।

वहाँ बैठे-बैठे जब केवल एक पहर रात शेष रह गयी तो उस पिछले पहर में वेदपाठ की ध्वनि सुनाई देने लगी तथा रावण को जगाया गया। जागते ही उसने सीता का चिन्तन

किया और आभूषण धारण करके अशोक वाटिका में प्रविष्ट हुआ। रावण के साथ लगभग एक सौ सुन्दरियाँ चल रही थीं। हनुमान् जी जिस डाली पर बैठे थे, वहाँ से कुछ नीचे उतर आये और सघन पत्तों में घुसकर छिप गये। सीता के पास रावण गया।

रावण को आते देख भय के मारे सीता थर-थर काँपने लगीं। इस अवस्था में उन्हें देखकर रावण लुभाने की चेष्टा करने लगा। रावण मधुर शब्दों द्वारा सीता के रूप की प्रसंशा करने लगा तथा कहा कि मैं तुम्हें चाहता हूँ, प्रेम करता हूँ, मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। यहाँ तुम्हारे लिए कोई भय नहीं है। मैंने कोई अधर्म नहीं किया है। बलपूर्वक हर लाना राक्षसों का सदा ही स्वधर्म रहा है। ऐसी अवस्था में भी जब तक तुम मुझे न चाहोगी, तब तक मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूंगा। फिर अनेक प्रकार की लुभावनी बातें करने लगा तथा अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये और कहा कि राम मेरी समानता नहीं कर सकता है।

उस भयंकर राक्षस की बातें सुनकर सीता को बड़ी पीड़ा हुई। उन्होंने दुःख के साथ, धीरे-धीरे, तिनके की ओट करके रावण को उत्तर दिया– तुम मेरी ओर से अपना मन हटा लो और अपने आत्मीय जनों से प्रेम करो। जो पतिव्रता के लिए निन्दित है, वह मैं कदापि नहीं कर सकती। निशाचर! तुम श्रेष्ठ धर्म की ओर ध्यान करो। जैसे प्रभा सूर्य से अलग नहीं होती, उसी प्रकार मैं श्रीराम से अभिन्न हूँ। ऐश्वर्य या धन के द्वारा तुम मुझे लुभा नहीं सकते। तुम शरणागतवत्सल श्रीराम की शरण लेकर उन्हें प्रसन्न करो और शुद्धहृदय होकर मुझे उनके पास लौटा दो। इसके विपरीत आचरण करने पर तुम बड़ी भारी विपत्ति में पड़ जाओगे। काल भी बहुत दिनों तक तुम्हारी उपेक्षा कर सकता है, किन्तु क्रोध में भरे हुए लोकनाथ श्रीराम कदापि नहीं छोड़ेंगे। राक्षस! जब राक्षसों की सेना का संहार हो जाने से जनस्थान नष्ट हो गया और तुम युद्ध करने में असमर्थ थे, तब तुमने छल और चोरी से यह नीच कर्म किया है। श्रीराम और लक्ष्मण की तो गन्ध पाकर भी तुम उनके सामने नहीं ठहर सकते। क्या कुत्ता कभी दो-दो बाघों के सामने टिक सकता है? तुम श्रीराम के वाण से मारे जाकर तत्काल प्राण से हाथ धो बैठोगे, इसमें संशय नहीं है, क्योंकि काल तुम्हें पहले से ही मार चुका है।

सीता के कठोर वचन सुनकर रावण ने अप्रिय उत्तर दिया– मैं तुम से ज्यों-ज्यों मीठे वचन बोलता हूँ, त्यों ही त्यों तुम मेरा तिरस्कार करती जा रही हो। तुम जैसे-जैसी कठोर बातें कह रही हो, उनके बदले तुम्हें प्राणदण्ड देना ही उचित है। मैंने तुम्हारे लिए दो महीने की अवधि निश्चित की है, तत्पश्चात् तुम्हें मेरी शय्या पर आना होगा। यदि तुम नहीं मानोगी तो रसोइये मेरे कलेवे के लिए तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े डालेंगे। यह सुनकर सीता ने फिर रावण से कहा– निश्चय ही इस नगर में कोई भी पुरुष तेरा भला चाहने वाला नहीं है जो तुझे इस निन्दित कर्म से रोके। दशमुख रावण! मेरा तेज ही तुझे भस्म कर डालने के लिए पर्याप्त है। केवल श्रीराम की आज्ञा न होने से मैं तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ। मैं मतिमान् श्रीराम की भार्या हूँ, मुझे हर ले आने की शक्ति तेरे अंदर नहीं थी। तेरे वध के लिए ही विधाता

ने यह विधान रच दिया है। तू तो बड़ा शूरवीर बनता है, कुबेर का भाई है और तेरे पास सेनाएं भी बहुत हैं, फिर श्रीराम को छल से दूर हटाकर क्यों तूने उनकी स्त्री की चोरी की है? सीता की बातें सुनकर रावण ने आँखें तरेर कर देखा और कहा– अन्यायी और निर्धन मनुष्य का अनुसरण करने वाली नारी! मैं आज तेरा विनाश किये देता हूँ। फिर भयंकर दिखने वाली राक्षसियों की ओर देखकर कहा– तुम सब मिलकर प्रयत्न करो कि यह शीघ्र मेरे वश में आ जाय। तदनंतर धान्यमालिनी नाम वाली राक्षस-कन्या रावण के पास आयी तथा कहा– आप मेरे साथ क्रीड़ा कीजिये, इस कान्तिहीना, दीन मानवकन्या सीता से आपको क्या प्रयोजन है? ऐसा कहकर उसे दूसरी ओर हटा ले गयी। राक्षस रावण अट्टहास से हँसता हुआ महल की ओर लौट पड़ा।

रावण के जाने के बाद भयानक रूपवाली राक्षसियाँ सीता जी के पास आयीं तथा कठोर वाणी में कहना प्रारम्भ किया कि तुम दशग्रीव रावण की भार्या बनना भी कोई बड़ी बात नहीं समझती? फिर रावण की वंशावली का महत्त्व बताने लगीं तथा उसके महान् पराक्रम का बखान करके, उसकी भार्या बनने के लिए समझाने लगीं।

राक्षसियों की बातें सुनकर सीता ने आँसू भरे नेत्रों से उनकी ओर देखकर कहा कि तुम सब मिलकर यह लोकविरुद्ध प्रस्ताव कर रही हो! यह पापपूर्ण विचार मेरे हृदय में एक क्षण के लिए भी नहीं आ सकता। तुम लोग मुझे भले ही खा जाओ, किन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती। सीता की बात सुनकर राक्षसियों के क्रोध की सीमा न रही। वे कठोर शब्दों द्वारा धमकाने लगीं। अशोक वृक्ष में छिपे हुए हनुमान् जी ये बातें सुनते रहे। सीता जी अशोक वृक्ष के नीचे चुप-चाप बैठ गयीं। फिर राक्षसियाँ घेर कर अनेक प्रकार की ताड़ना देने लगीं। इस प्रकार धमकायी जाने पर सीता धैर्य छोड़कर फूट-फूट कर रोने लगीं। वे विलाप करते हुए 'हा राम! हा लक्ष्मण! मेरी सास कौसल्या! आर्या सुमित्रा!' कह कर रोने लगीं। 'हाय! पण्डितों ने ठीक ही कहा है कि किसी भी स्त्री या पुरुष की मृत्यु बिना समय आये नहीं होती। पता नहीं मैंने पूर्व-जन्म में दूसरे शरीर से कैसा महान् पाप किया था, जिससे यह कठोर, घोर और महान् दुःख मुझे प्राप्त हुआ है। इस मानव जीवन और परतन्त्रता को धिक्कार है जहाँ अपनी इच्छा के अनुसार प्राणों का परित्याग भी नहीं किया जा सकता। अब मैं राक्षसियों के वश में पड़ी हूँ। मैं जीवित नहीं रह सकती। श्रीराम के बिना मुझे न तो जीवन से कोई प्रयोजन है न धन की आवश्यकता है, और न ही आभूषणों से कोई काम! मेरा हृदय लोहे का बना है जो इस महान् दुःख में पड़कर फटता नहीं है। मैं बड़ी अनार्या और असती हूँ। मुझे धिक्कार है कि इस पापी जीवन को धारण किये हूँ। यदि श्रीराम को मेरे यहाँ रहने का पता लग जाता, तो वे सारे संसार को राक्षसों से शून्य कर डालते। अब थोड़े ही समय में यह लंका पूरी श्मशान-भूमि के समान हो जायेगी। वह समय शीघ्र आने वाला है जब मेरा यह मनोरथ पूर्ण होगा। मैं श्रीराम से बिछुड़ गयी हूँ, अतः अब इन प्राणों का परित्याग कर दूंगी।'

सीता ने जब ऐसी भयंकर बात कही, तो राक्षसियाँ अत्यधिक क्रुद्ध हो गयीं तथा कुछ रावण से यह संवाद कहने चली गयीं, कुछ सीता को फिर भयभीत करने लगीं। सीता को इस प्रकार डरायी जाती देखकर बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा ने, जो अभी सोकर उठी थी, कहा– नीच निशाचरियो! तुम लोग अपने आपको ही खा जाओ। सीता को नहीं खा सकोगी। आज मैंने एक भयंकर स्वप्न देखा है जो राक्षसों के विनाश और श्रीराम के अभ्युदय की सूचना देने वाला है। भयभीत होकर राक्षसियाँ बोलीं– बताओ, क्या स्वप्न देखा है? वह बोली– आज स्वप्न में मैंने देखा कि आकाश में चलने वाली एक दिव्य शिविका है जिस पर श्रीराम लक्ष्मण के साथ यहाँ पधारे हैं। सीता श्वेत वस्त्र धारण किये बैठी है और वह श्रीराम से मिली। फिर देखा कि श्रीराम गजराज पर लक्ष्मण के साथ बैठे हैं तथा वे जानकी के पास आये और हाथी पर जानकी जी भी जा पहुँचीं। फिर सीता उछलकर चन्द्रमा और सूर्य के पास पहुँच गयीं। वह गजराज लंका के पास आकर खड़ा हो गया। इसके बाद श्रीराम को सीता और लक्ष्मण के साथ दिव्य पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो उत्तर दिशा में जाते देखा। श्रीराम महातेजस्वी हैं, उन्हें कोई जीत नहीं सकता। मैंने रावण को भी सपने में देखा है। वह मूँड़ मुड़ाये, तेल से नहाकर, लाल कपड़ा पहने हुए था। रावण पुष्पक विमान से पृथ्वी पर गिर पड़ा। एक स्त्री उस रावण को कहीं खींचे ले जा रही थी। पागलों की भाँति उसका चित्त भ्रान्त और इन्द्रियाँ व्याकुल थीं। वह गधे पर आरूढ़ हो दक्षिण दिशा की ओर जा रहा था। फिर गधे से भी गिर गया और नंग-धड़ंग, दुर्वचन बकता हुआ आगे बढ़ गया। सामने ही नरकतुल्य मल का पंक था, रावण उसी में घुसा और डूब गया। एक लाल वस्त्र पहने युवती रावण का गला बाँध कर दक्षिण दिशा को खींच रही थी। यही अवस्था कुम्भकर्ण की भी थी। रावण के सभी पुत्र तेल में नहाये दिखाई देते थे। राक्षसों में से एकमात्र विभीषण को देखा जो श्वेत छत्र लगाये, श्वेत माला पहने थे। उनके पास शंखध्वनि हो रही थी। समस्त लंकापुरी समुद्र में गिरी थी। राम के एक दूत वानर ने लंका पुरी को भस्म कर दिया। अतः अब इस प्रकार कठोर बात सुनाना छोड़ो। जिस दुःखिनी के विषय में ऐसा स्वप्न देखा जाता है, वह दुःखों से छुटकारा पा जाती है। रावण के विनाश और राम की विजय में अब अधिक विलम्ब नहीं है। इन्हें शीघ्र ही अत्यन्त प्रिय संवाद सुनने को मिलेगा। इस प्रकार पति देव की विजय के संवाद से हर्ष में भरी सीता बोलीं– यदि तुम्हारी बात ठीक हुई तो मैं तुम सबकी रक्षा करूंगी।

सीता जी पुनः शोक से विह्वल होकर प्राण-त्याग के लिए उद्यत हुईं तो उसी समय लोकप्रसिद्ध श्रेष्ठ शकुन प्रकट हुए तथा उनका शोक जाता रहा, सारी थकावट दूर हो गयी।

हनुमान् जी ने सीता जी का विलाप, त्रिजटा की स्वप्न-चर्चा इत्यादि प्रसंग सुन लिये तो फिर अपने कर्तव्य पर सोचने लगे। सीता का तो पता चल गया, परन्तु बिना सान्त्वना दिये जाना दोषयुक्त लगा और वे विचार करने लगे कि किस प्रकार सीता जी मेरी सारी बातें सुन लें। हनुमान् जी ने निश्चय किया कि मैं यहीं बैठकर श्रीराम के श्रेष्ठ चरित्र और धर्मानुकूल

वचनों को सुनाता रहूंगा, जिससे सीता का उन वचनों पर विश्वास हो। यह सोचकर वे मधुर एवं यथार्थ बात कहने लगे।

हनुमान् जी ने राजा दशरथ की कीर्ति का वर्णन किया, फिर श्रीराम का बालपन से सीताहरण तक का वृत्तान्त सुनाया, तदनंतर सुग्रीव के साथ मैत्री और वानरों द्वारा खोज के प्रयास का वर्णन किया। उनकी बातें सुनकर सीता को बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने अपना मुख ऊपर उठाकर अशोक वृक्ष की ओर देखा तथा इधर-उधर दृष्टिपात करके उन्होंने हनुमान् जी को देखा।

सीता जी मन-ही-मन सोचने लगीं कि वानर योनि का यह जीव बड़ा भयंकर है। वे भय से 'हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!' कहकर विलाप करने लगीं। इतने में ही उन्होंने देखा कि वह श्रेष्ठ वानर बड़े विनय के साथ निकट आ बैठा। सीता जी अपने मन में अनेक तर्क-वितर्क करने लगीं।

हनुमान् जी ने प्रणाम करके मधुर वाणी में कहा– देवी आप कौन हैं ? आप क्यों शोक कर रही हैं? आप बारम्बार किसी राजा का नाम ले रही हैं, अतएव आप किसी राजा की महारानी तथा किसी नरेश की कन्या हैं। जनस्थान से रावण जिन्हें हर लाया था, यदि आप वही सीता हैं तो आपका कल्याण हो। मैं आपके विषय में जानना चाहता हूँ। हनुमान् जी की बात सुनकर सीता जी ने अपना परिचय तथा समस्त वृत्तान्त सुनाया।

सीता जी की बात सुनकर हनुमान् ने कहा– देवी! मैं श्रीराम का दूत हूँ। उन्होंने आपका कुशल-समाचार पूछा है। लक्ष्मण ने आपके चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम कहलाया है। यह सुनकर सीता को रोमाञ्च हो आया और वे बोलीं कि तुम मायावी हो, मुझे कष्ट दे रहे हो। यदि तुम सचमुच श्रीराम के दूत हो तो मैं उनकी बातें पूछती हूँ। हनुमान् जी ने श्रीराम का वृत्तान्त सुनाया और कहा कि आप आशंका छोड़ दीजिये तथा मेरी बात पर विश्वास कीजिये।

हनुमान् जी की बात सुनकर सीता जी मधुर वाणी में बोलीं– कपिवर! तुम्हारा सम्बन्ध श्री राम से कहाँ और कैसे हुआ? मनुष्य और वानरों में मेल कैसे सम्भव है? श्रीराम और लक्ष्मण के चिह्नों का फिर से वर्णन करो। हनुमान् जी ने यथावत् फिर वर्णन किया और वानरों के साथ उनका कैसे सम्बन्ध आया, यह बताया। तब कहा कि आपने जो पूछा था, वह सब बता दिया, अब मैं आपकी कैसी और क्या सेवा करूँ ? मैं परम बुद्धिमान् श्रीराम का दूत वानर हूँ। यह श्रीराम-नाम अंकित मुद्रिका है। इसे लेकर देखिये।

उस मुद्रिका को लेकर सीता जी देखने लगीं। उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई और कहा– तुम अवश्य इस योग्य हो कि मैं तुमसे बातचीत करूँ। यदि श्रीराम कुशल से हैं तो कुपित होकर सारी पृथ्वी को दग्ध क्यों नहीं कर देते! अच्छा, यह बताओ कि श्री राम के मन में कोई व्यथा तो नहीं है ? दीनता या घबराहट तो नहीं है ? क्या वे मुझे इस संकट से कभी

छुड़ायेंगे? सीता के अनेक वचन सुनकर हनुमान् ने हाथ जोड़ कर कहा कि श्रीराम को यह पता ही नहीं कि आप लंका में रह रही हैं। मेरे द्वारा समाचार पाने के बाद वे विशाल सेना लेकर चल देंगे। तत्पश्चात् हनुमान् जी ने श्रीराम की मनःस्थिति का वर्णन किया।

हनुमान् जी की बातें सुनकर सीता जी ने कहा कि श्रीराम का चित्त दूसरी ओर नहीं जाता और वे शोक में डूबे रहते हैं, यह सुनकर मुझे विष-मिश्रित अमृत के समान लगा है। तुम जाकर कहना कि वे शीघ्रता करें। यह वर्ष जब तक पूरा नहीं हो जाता, तभी तक मेरा जीवन शेष है। रावण के भाई विभीषण ने मुझे लौटाने की मंत्रणा दी, परन्तु वह नहीं मानता और उसने यह अवधि निश्चित की है। विभीषण की ज्येष्ठ कन्या कला ने मुझे यह बताया है। अविन्ध्य नाम का एक श्रेष्ठ राक्षस है, उसने भी समझाया, किन्तु रावण नहीं मानता। इतना कहकर सीता शोक से पीड़ित हो गयीं। हनुमान् ने कहा– देवि! आप धैर्य धारण करें, श्रीराम शीघ्र विशाल सेना लेकर आयेंगे। अथवा, आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये, मैं अभी आपको इस दुःख से छुटकारा दिलाता हूँ। सीता जी ने कहा– इस दुःसाहस को मैं वानर-चित्त की चपलता समझती हूँ। तुम्हारा शरीर तो बहुत अल्प (छोटा) है। यह सुनकर हनुमान् जी ने सीता को मेरु पर्वत और मन्दराचल के समान अपना रूप दिखाया। वह अग्नि जैसा तेजोमय, विशालकाय था। तब वे बोले–मुझमें रावण सहित समूची लंका को ही उठा ले जाने की शक्ति है। सीता जी ने कहा– महाकपे! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रम को जान गयी हूँ, किन्तु तुम्हारे साथ मेरा जाना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। यदि श्रीराम यहाँ राक्षसों सहित रावण का वध करके मुझे ले चलें तो वह उनके योग्य होगा। तुम उन्हें शीघ्र यहाँ बुला लाओ।

हनुमान् जी ने सीता से कहा– देवि! आप का कहना ठीक है। यदि आपके मन में मेरे साथ चलने का उत्साह नहीं है तो आप अपनी कोई पहचान ही दे दीजिये जिससे श्रीराम जान लें कि मैंने आपका दर्शन किया है। सीता जी बोलीं– वानरश्रेष्ठ! तुम मेरे प्रियतम से यह उत्तम पहचान बताना कि मन्दाकिनी नदी के समीप एक कौआ आकर मुझे चोंच मारने लगा। मैं उस पक्षी पर बहुत कुपित थी। उस समय मेरा वस्त्र कुछ नीचे खिसक गया और उसी अवस्था में आपने देख लिया, देखकर मेरी हँसी उड़ायी। इतने में उस कौए ने फिर चोंच मारी और उसी अवस्था में मैं आपके पास आयी। वह कौआ फिर वहाँ आया और झपटकर मेरी छाती में चोंच मारी। आप कुपित हो गये तथा कुश की चटाई से एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्र के मन्त्र से अभिमन्त्रित करके कौए की ओर छोड़ा। फिर तो कुश आकाश में उसका पीछा करने लगा। वह कौआ इन्द्र का पुत्र था, अपने प्राण बचाने के लिए सम्पूर्ण जगत् में भागता फिरा। इन्द्र तथा श्रेष्ठ महर्षियों ने भी उसका परित्याग कर दिया। वह तीनों लोकों में घूमकर पुनः श्रीराम की ही शरण में आया और पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब उन्हें उस पर दया आ गयी। ब्रह्मास्त्र को तो व्यर्थ किया नहीं जा सकता, श्रीराम ने उस अस्त्र से उसकी दाहिनी आँख नष्ट कर दी। तुम मेरे स्वामी से कहना– आपने मेरे लिए एक साधारण

अपराध करने वाले कौए पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था, फिर जो मुझे हर ले आया उसको कैसे क्षमा कर रहे हैं? इसे सुनकर हनुमान् जी बोले– अब शोक करने का अवसर नहीं है। श्रीराम समस्त राक्षस-जगत् को भस्म कर देंगे। अब आपको कुछ और कहना हो तो कहिये। सीता ने कहा कि मेरी ओर से श्रीराम को मस्तक झुकाकर प्रणाम करना और उनका कुशल-समाचार पूछना। लक्ष्मण से भी तुम मेरी ओर से कुशल पूछना। अधिक क्या कहूँ? जैसे यह कार्य सिद्ध हो सके, वही उपाय तुम्हें करना चाहिये। ऐसा कह कर सीता ने दिव्य चूड़ामणि निकाली और श्रीराम को देने के लिए दी। वह मणिरत्न लेकर हनुमान् ने सीता को प्रणाम किया और प्रदक्षिणा करके उनके पास खड़े हो गये। तदनंतर लौटने की तैयारी की।

हनुमान् जी को लौटने के लिए उद्यत जान, सीता का गला भर आया और वे बोलीं– श्रीराम जिस प्रकार इस दुःख से मेरा उद्धार करें, वैसा ही यत्न तुम्हें करना चाहिये। हनुमान् जी ने श्रीराम के पराक्रम का बखान करके उन्हें फिर सान्त्वना दी। हनुमान् जी की ओर बार-बार देखकर सीता ने कहा– यदि तुम ठीक समझो तो यहाँ एक दिन गुप्त स्थान में निवास करके चले जाना, मेरे शोक का थोड़ी देर के लिए निवारण हो जायेगा। यदि श्रीराम रावण को युद्ध में पराजित करके मुझे साथ ले अपनी पुरी को पधारें, तो वह उनके अनुरूप कार्य होगा। हनुमान् जी ने कहा– देवी! इस भयंकर देश में आपको अधिक दिन नहीं रहना पड़ेगा।

हनुमान् जी को वहाँ से छलांग मारने के लिए तैयार देख कर सीता के मुख पर आँसुओं की धारा बहने लगी और कहा कि मेरा कुशल-मंगल कहना। हनुमान् जी ने थोड़े से शेष कार्य का विचार करते हुए उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया।
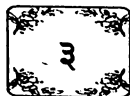
लौटने से पूर्व वाटिका-विध्वंस; राक्षस-वध और लंका-दहन;
सीता का संदेश लेकर श्रीराम के पास वापस।

हनुमान् जी ने प्रस्थान से पूर्व राक्षसों को चुनौती देने का विचार करके उस प्रमदावन को उजाड़ डाला और युद्ध करने का उत्साह लेकर उस वन के मुख्य द्वार पर आ गये।

प्रमदावन में सोयी हुई राक्षसियों की निद्रा टूट गयी, साथ ही उनकी दृष्टि उन वीर हनुमान् जी पर गयी। वे सीता जी से पूछने लगीं– यह कौन है? सीता ने कहा– तुम्हीं जानो यह कौन है और क्या करेगा। सीता की बात सुनकर कुछ राक्षसियाँ रावण को सूचना देने चली गयीं और उसे प्रमदावन के विनाश का समाचार दिया। रावण ने क्रुद्ध होकर वीर राक्षसों को हनुमान् जी को पकड़ लाने की आज्ञा दी। हनुमान् जी ने उन्हें बताया कि मैं कोशलनरेश

श्री राम का दास हूँ; लंका पुरी को तहस-नहस कर डालूंगा। राक्षसों द्वारा घेरे जाने पर हनुमान् जी ने द्वार पर रक्खा लोहे का एक परिघ उठाकर राक्षसों का संहार आरम्भ किया। तदनंतर राक्षसों ने रावण के पास जाकर समाचार सुनाया। रावण ने प्रहस्त के पराक्रमी के पुत्र को हनुमान् जी का सामना करने के लिए भेजा।

प्रमदावन-विध्वंस करने के बाद हनुमान् जी चैत्य-प्रासाद को भी तोड़ने लगे। उससे, फिर सैकड़ों रक्षक हथियार लेकर आये। हनुमान् जी ने सबको मार डाला और कहा– अब न तो यह लंका पुरी रहेगी, न तुम लोग, और न वह रावण रहेगा जिसने श्रीराम के साथ वैर बाँध रक्खा है। फिर हनुमान् जी का युद्ध प्रहस्त-पुत्र जम्बुमाली से होने लगा। बलशाली हनुमान् जी ने परिघ को जम्बुमाली की छाती पर दे मारा और वह धराशायी हो गया। रावण ने अपने मन्त्रियों के सात पुत्रों को भेजा, वे भी सब मारे गये।

फिर रावण ने अपने महान् पराक्रमी पाँच सेनापतियों को भेजा और कहा कि मुझे इसमें संदेह है कि यह वानर है। वानर के रूप में कोई बड़ा शक्तिशाली जीव प्रकट हुआ है। उसे बन्दी बनाओ। वे सब चारों ओर से हनुमान् जी पर टूट पड़े। परन्तु हनुमान् जी ने उन सबको मौत के घाट उतार दिया।

तदनंतर रावण ने अपने पुत्र अक्ष कुमार को भेजा। उसने महान् पराक्रम दिखाया। भयंकर युद्ध करते हुए हनुमान् जी ने उसके दोनों पैर पकड़ कर उसे उठा लिया और सैकड़ों बार घुमाकर भूमि पर पटक दिया। इस प्रकार अक्ष कुमार मारा गया।

अक्ष कुमार के मारे जाने पर रावण रोष से जल उठा और अपने पराक्रमी पुत्र इन्द्रजीत (मेघनाद) को हनुमान् को पराजित करने की आज्ञा दी। मेघनाद बड़े उत्साह के साथ चला और दोनों के मध्य भयंकर युद्ध होने लगा। मेघनाद विचार करने लगा कि इसे किसी प्रकार भी बन्दी बना लेना चाहिये। फिर उसने ब्रह्मा जी के दिये अस्त्र का संधान किया और अस्त्र से बाँध लिया। हनुमान् जी निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उसी समय उन्हें ब्रह्मा जी के वरदान का स्मरण हुआ कि ब्रह्मास्त्र मुझे एक ही मुर्हूत में बन्धन से मुक्त कर देगा। उन्होंने सोचा कि राक्षसों द्वारा पकड़े जाने पर लाभ ही होगा, इसलिए वे निश्चेष्ट हो गये। राक्षसों ने देखा कि यह हाथ-पैर नहीं हिलाता है, तो वे हनुमान् जी को रस्सों से बाँधने लगे। रस्से से बाँधने के कारण हनुमान् जी ब्रह्मास्त्र से मुक्त हो गये। इन्द्रजीत ने देखा कि यह दिव्यास्त्र से मुक्त हो गया है तो उसे चिन्ता हुई, परन्तु उसने अनुभव किया कि यह तो बँधे हुए की भाँति बर्ताव कर रहा है। क्रूर राक्षस उन्हें खींचकर ले चले और रावण के पास जा पहुँचे। रावण ने हनुमान् से उनका कार्य, प्रयोजन इत्यादि पूछा तो उन्होंने बताया कि मैं सुग्रीव के पास से उनका दूत होकर आया हूँ।

हनुमान् जी ने रावण के भयंकर होते हुए भी अतिप्रभावशाली रूप को देखा तथा उसकी सभा के वैभवपूर्ण दृश्य का अवलोकन किया और वे सोचने लगे कि यह यदि

अधर्मी न होता तो देवराज इन्द्र से भी बढ़कर होता, किन्तु इसके क्रूर कर्मों से तो सारा लोक पीड़ित है!

रावण ने अपने मंत्री से हनुमान् के बारे में पूछने के लिए कहा। प्रहस्त ने कहा– वानर! तुम सच-सच बताओ, कौन हो ? डरो मत, छोड़ दिये जाओगे। हनुमान् ने कहा– मैं जन्म से वानर हूँ। राक्षस रावण से मिलने के लिए ही मैंने वन उजाड़ा। श्रीराम का कुछ कार्य है जिसके लिए आया हूँ। फिर रावण से कहा– राक्षसराज! मैं वानरराज सुग्रीव का संदेश लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। वे तुम्हारे भाई हैं। तुमने श्रीराम की पत्नी सीता को धोखे से अपहृत कर लिया है। सुग्रीव ने ढूँढ निकालने की प्रतिज्ञा की है। उन्होंने मुझे इस ओर भेजा। मेरा नाम हनुमान् है। मैंने यहाँ सीता को देखा है। तुम सीता को श्री राम के पास लौटा दो, अन्यथा श्रीराम तुम्हारा विध्वंस कर देंगे। इस पर रावण ने क्रोध से हनुमान् जी के वध की आज्ञा दी।

जिस समय रावण ने वध की आज्ञा दी, वहाँ विभीषण भी उपस्थित थे। उन्होंने उस आज्ञा का अनुमोदन नहीं किया और रावण से कहा– क्षमा कीजिये, क्रोध को त्याग दीजिये। श्रेष्ठ राजा दूत का वध नहीं करते। किन्तु रावण ने हनुमान् के प्रति क्रुद्ध होकर कहा कि दण्ड नहीं बदलेगा। तब फिर विभीषण ने कहा कि दूत के लिए अन्य प्रकार के बहुत से दण्ड देखे गये हैं। किसी अंग को भंग या विकृत कर देना, अथवा अन्य उपाय, परन्तु वध का दण्ड मैंने कभी नहीं सुना है। विभीषण के अनेक तर्कयुक्त उत्तम तथा प्रिय वचनों को सुनकर रावण ने सोच-विचार कर वह स्वीकार कर लिया।

दशानन ने कहा– विभीषण! तुम्हारा कहना ठीक है। वध के अतिरिक्त दूसरा कोई दण्ड इसे अवश्य देना चाहिये। वानरों को अपनी पूँछ बड़ी प्यारी लगती है, इसकी पूँछ को जला दो। जली पूँछ लेकर यह वहाँ जाये। फिर रावण ने आज्ञा दी कि इसकी पूँछ में आग लगाकर इसे प्रमुख पथों (सड़कों) और चत्वरों (चौराहों) सहित समूचे नगर में घुमाया जाय। आदेश सुनकर राक्षस हनुमान् जी की पूँछ में सूती कपड़े लपेटने लगे। उस समय हनुमान् जी का शरीर बहुत बड़ा हो गया। राक्षसों ने तेल छिड़कर कर आग लगा दी। हनुमान् जी क्रुद्ध होकर जलती हुई पूँछ से राक्षसों को मारने लगे। फिर से राक्षसों ने उन्हें बाँध दिया और हर्ष के साथ लंकापुरी में सब ओर घुमाने लगे। हनुमान् जी बड़ी मौज से आगे बढ़ने लगे। वे लंका को अच्छी प्रकार से देखना चाहते थे। राक्षसियों ने सीता जी को भी यह समाचार सुनाया। उन्होंने अग्निदेव से प्रार्थना की कि तुम हनुमान् के लिए शीतल हो जाओ। उधर पूँछ में आग लगायी जाने पर हनुमान् जी सोचने लगे कि यह आग मुझे जलाती क्यों नहीं है ? निश्चय ही सीता जी की दया, श्रीराम के तेज तथा मेरे पिता की मैत्री के कारण अग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं। तदनंतर हनुमान् जी ने सोचा– मुझे इसका प्रतिकार करना चाहिये। वे उन बन्धनों को तोड़कर उछले और गर्जना करने लगे। फिर उछल कर नगर-द्वार पर जा पहुँचे और एक परिघ उठाकर रक्षकों को मार गिराया।

तदनंतर हनुमान् जी महलों पर घूमने लगे। एक महल में आग लगाकर दूसरे पर कूद पड़ते थे। सभी राक्षस-सेनापतियों और इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण इत्यादि के महल फूँक डाले। उस समय हनुमान् जी ने विभीषण का घर छोड़कर सब घरों में क्रमशः आग लगा दी। हाहाकार मच गया। लंकापुरी को दग्ध हुई देखकर सब विस्मित हुए और सब प्राणी थर्रा उठे।

हनुमान् जी ने सारी लंकापुरी को जलते देखा तो उन्हें सीता के लिए चिन्ता हुई। वे अपने को कोसने लगे। इस प्रकार चिन्ता में पड़े हनुमान् जी को शुभ शकुन दिखाई पड़े, तो उन्होंने सोचा कि सम्भवतः सीता अपने तेज से ही सुरक्षित हों, और पुनः उनका प्रत्यक्ष दर्शन करने का विचार किया।

अशोक वृक्ष के नीचे बैठी सीता जी के पास जाकर हनुमान् जी ने प्रणाम किया और बोले– आर्ये! सौभाग्य की बात है कि आप सकुशल हैं। सीता ने उन्हें देख कर एक दिन विश्राम करके जाने के लिए कहा और यह भी कहा कि तुम ऐसा उपाय करना जिससे श्रीराम का पराक्रम प्रकट हो। सीता की बात सुनकर हनुमान् जी ने कहा– आपका कल्याण हो, आप समय की प्रतीक्षा करें। रावण शीघ्र ही रणभूमि में श्रीराम के हाथों मारा जायेगा। पुनः सीता को प्रणाम करके लौट जाने का विचार किया और उत्तम अरिष्टगिरि पर चढ़ गये। उत्तर-तट पर जाने की इच्छा से उन्होंने अपने शरीर को बहुत बड़ा बना लिया और बड़े वेग से चले।

उत्तरतट के कुछ निकट पहुँचने पर महागिरि महेन्द्र पर दृष्टि पड़ी और उन्होंने उच्च स्वर से गर्जना की। तट पर बैठे अन्य वानर भी उनकी गर्जना सुनकर सिंहनाद करने लगे। जाम्बवन्त ने कहा कि हनुमान् जी कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। उसी समय हनुमान् महेन्द्र गिरि के शिखर पर कूद पड़े। सभी वानर उन्हें घेर कर खड़े हो गये। हनुमान् जी ने कहा– सीता जी के दर्शन हो गये। यह सुनकर सभी हर्षनाद करने लगे। अंगद ने हनुमान् जी के धैर्य और पराक्रम की प्रशंसा की।

वानरों के साथ जाम्बवन्त ने प्रसन्नतापूर्वक हनुमान् जी से पूरा वृत्तान्त पूछा। हनुमान् जी ने आदि से अन्त तक की बात बतायी और कहा– जो कार्य शेष रह गया है वह आप लोग पूर्ण करें। आप सब की सम्मति लेकर हम सीता के साथ ही श्रीराम और लक्ष्मण का दर्शन करें।

अंगद ने हनुमान् जी की बात का अनुमोदन करते हुए कहा कि हम लोग इतने समर्थ हैं कि लंका को जीत सकते हैं। सब की बात सुनकर जाम्बवान् ने कहा कि तुम बड़े बुद्धिमान् हो, परन्तु इस समय बुद्धिमानी की बात नहीं कर रहे हो। इस समय हमें खोजने की आज्ञा थी, साथ ले आने की नहीं। इसलिए हम लोग इस कार्य की सूचना देने श्रीराम के पास चलें।

सब ने जाम्बवान् की बात मानकर शीघ्र वहाँ से प्रस्थान किया तथा सुग्रीव के मधुवन नामक आरक्षित वन में आ गये। सुग्रीव का मामा दधिमुख उस वन की रक्षा करता था। अंगद की आज्ञा पाकर सभी वानर प्रफुल्लित होकर फल-मूलों का भक्षण करने लगे। दधिमुख ने

ऐसा करने से रोका, परन्तु निर्भय होकर नाचते-गाते वे फल-भक्षण करते रहे। रोकने के लिए आये रक्षकों पर वे सब वानर क्रुद्ध होते तथा उछल कर मारते थे और मधुवन का मधु पीने तथा फल एवं मूल खाने में लगे हुए थे। दधिमुख भी जब पिट गया और वानरों को नहीं रोक सका तो क्रुद्ध होकर वह सुग्रीव के पास गया तथा उसके पाँव पकड़ लिये।

सुग्रीव ने कहा– उठिये-उठिये, मेरे पाँव क्यों पड़ते हैं? सब कुशल तो है? और दधिमुख से आने का कारण पूछा। दधिमुख ने बताया कि हनुमान् आदि ने मधुवन का नाश कर दिया और रोकने पर सभी रक्षकों तथा मुझ को मारा। उसकी बात सुनकर सुग्रीव ने लक्ष्मण से कहा– इनकी बात सुनकर मैं अनुमान कर रहा हूँ कि जिस कार्य के लिए वे गये थे, वह सिद्ध कर आये। सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए। फिर सुग्रीव ने दधिमुख से कहा– मामा! जिस कार्य के लिए उन्हें भेजा था, वे उसे सिद्ध करके आये हैं; इसलिए उन्होंने मधु पिया, फल खाये, मारपीट की, तब भी मैं प्रसन्न हूँ। तुम शीघ्र जाओ और हनुमान् आदि वानरों को शीघ्र यहाँ भेज दो।

दधिमुख ने लौट कर अंगद से हर्षयुक्त वाणी में कहा कि मैंने अज्ञानवश रोका था, अतः जितनी इच्छा हो फल खाओ तथा सुग्रीव ने बड़े हर्ष के साथ मुझसे कहा है कि उन्हें शीघ्र भेजो। यह सुनकर अंगद के साथ हनुमान् को आगे करके, सब वानर वहाँ पहुँच गये। श्रीराम ने परम प्रीति और महान् सम्मान के साथ हनुमान् जी की ओर देखा।

सभी वानरों ने अंगद को आगे करके श्रीराम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव को प्रणाम किया तथा सीता का समाचार बताना प्रारम्भ किया। सीता के सकुशल होने का वृत्तान्त सुनकर श्रीराम ने कहा– वानरो! देवी सीता कहाँ है? मेरे प्रति उसका कैसा भाव है? मुझसे कहो। हनुमान् ने सीता जी के उद्देश्य से दक्षिण दिशा की ओर प्रणाम किया। फिर श्री राम से सीता का दर्शन कैसे हुआ, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया और दिव्य काञ्चन-मणि श्रीराम के हाथ में दी तथा कहा कि मैंने सब निवेदन कर दिया, अब समुद्र को पार करने का प्रयत्न कीजिये।

श्रीराम मणि को छाती से लगाकर रोने लगे, साथ ही लक्ष्मण भी रो पड़े और अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। तदनंतर हनुमान् ने सीता जी की कही हुई सब बातें उनसे निवेदित कर दीं। उन घटनाओं का भी वर्णन किया जो सीता ने बतायी थीं और कहा– सीता जी के कष्ट को देखकर मैं उन्हें अपनी पीठ पर बैठा कर लाना चाहता था, परन्तु सीता जी ने कहा कि मेरा यह धर्म नहीं है कि मैं स्वेच्छा से तुम्हारी पीठ का आश्रय लूँ। श्रीराम! सीता ने मेरे आने के समय कहा कि तुम श्रीराम से अनेक प्रकार से ऐसी बातें कहना जिससे वे समरांगण में शीघ्र ही रावण का वध करके मुझे प्राप्त करें। मैंने उन्हें सान्त्वना दी कि अब संताप करने की आवश्यकता नहीं है। आप शीघ्र देखेंगी कि सिंह के समान पराक्रमी श्रीराम व लक्ष्मण लंका के द्वार पर आ पहुँचे हैं। मेरे वचनों द्वारा उनके मन को कुछ शान्ति मिली।

(सुन्दरकाण्ड पूर्ण)

युद्धकाण्ड
प्रथम सर्ग

श्रीराम ने हनुमान् को गले लगाया; समुद्र पार करने की चिन्ता;
शत्रु के स्थान और बल की जानकारी।

हनुमान् जी द्वारा वृत्तान्त सुनकर श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और बोले–हनुमान् ने बड़ा भारी काम किया..... गरुड़, वायु और हनुमान् को छोड़कर किसी को मैं ऐसा नहीं देखता जो महासागर को लांघ सके। आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तु का अभाव है। इस समय हनुमान् को मैं अपना प्रगाढ़ आलिंगन प्रदान करता हूँ। यह कहते हुए हनुमान् को हृदय से लगा लिया। फिर सुग्रीव से बोले– सीता की खोज का काम तो सम्पन्न हो गया, परन्तु समुद्र की दुस्तरता का विचार करके मेरे मन का उत्साह फिर नष्ट हो गया है। और यह कहकर श्रीराम चिन्ता में डूब गये।

शोक-संतप्त श्रीराम की ओर देखकर सुग्रीव ने कहा– आप साधारण मनुष्यों की भाँति क्यों शोक-संतप्त हो रहे हैं! अब सीता का पता चल गया। हम लोग समुद्र को लांघकर लंका पर चढ़ाई करेंगे और शत्रु को नष्ट कर डालेंगे। रघुनन्दन! अब आप ऐसा उपाय कीजिये जिससे हम समुद्र पर सेतु बाँध सकें और हमारी समस्त सेना उस पार चली जा सके।

सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम ने हनुमान् से कहा– मैं तपस्या से पुल बाँधकर और समुद्र को सुखाकर भी, सब प्रकार से महासमुद्र को लांघ जाने में समर्थ हूँ। हनुमान् ! मुझे तुम लंकापुरी के दुर्ग, सेना का परिमाण तथा राक्षसों के क्या उपाय या साधन हैं, यह सब बताओ। हनुमान् जी ने भगवान् से कहा– उस पुरी के चार बड़े-बड़े तथा बहुत लम्बे द्वार हैं। द्वारों पर विशाल यन्त्र लगे हैं जो तीन ओर पत्थर के गोले बरसाते हैं। चारों ओर सोने का बना ऊँचा प्राकार (परकोटा) है जिसमें मणि, मूंगे, नीलम और मोतियों का काम किया गया है। चारों ओर खाइयाँ बनी हैं जिनमें ग्राह और बड़े-बड़े मत्स्य निवास करते हैं। इस प्रकार हनुमान् जी ने विस्तृत वर्णन किया और कहा कि वह पुरी देवों के लिए भी दुर्गम और बड़ी भयावनी है। राजधानी समुद्र के किनारे पर बसी हुई है। फिर हनुमान् जी ने राक्षस के सैनिकों की संख्या और उनकी तैयारी बतायी और कहा कि एक बार समुद्र को पार कर लें, फिर केवल अंगद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवन्त, पनस, नल और नील ही पर्याप्त हैं। लंका को विजय करने के लिए आप उचित मुहूर्त में प्रस्थान की इच्छा कीजिये।
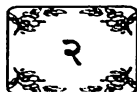
लंका-विजय-हेतु प्रस्थान; रावण द्वारा आसन्न संकट पर विचार-विमर्श, विभीषण द्वारा समझाने का प्रयास; रावण का दुराग्रह और विभीषण का तिरस्कार।

श्रीराम ने कहा– हनुमान् ! तुमने जिस लंकापुरी का वर्णन किया, उसे मैं शीघ्र ही नष्ट कर डालूंगा। सुग्रीव! तुम इसी मुहूर्त में प्रस्थान की तैयारी करो। रावण सीता को हर कर ले गया, किन्तु वह जीवित बचकर कहाँ जायेगा? फिर श्रीराम ने सेना की यात्रा का रूप बताया। तदनन्तर लाखों वानरों से घिरे हुए श्रीराम आगे बढ़ने लगे। श्रीराम हनुमान् के तथा लक्ष्मण अंगद के कन्धे पर विराजमान होकर चलने लगे। शीघ्र ही श्रीराम सेना सहित सागर-तटवर्ती उत्तम वन में जा पहुँचे। सागर-तट के पास समस्त वानर-सेना ने पड़ाव डाल दिया।

श्रीराम सीता के वियोग में फिर व्यथित हो गये। उधर रावण हनुमान् के कर्म का ध्यान करके राक्षसों से कहने लगा कि एक वानर मात्र इस पुरी में घुस आया, सीता से मिला, महल धराशायी कर दिये, वनों को नष्ट किया। तुम लोग सोचो कि क्या किया जाय। राम धीर-वीर वानरों के साथ लंकापुरी पर चढ़ाई के लिए आ रहे हैं। वे समुद्र को पार कर लेंगे।

रावण के मन्त्रियों ने कहा– हमारे पास श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्र तथा बड़ी सेना है, फिर आप विषाद क्यों करते हैं? फिर वे रावण के पूर्वकाल के पराक्रमों का वर्णन करने लगे।

सेनापति प्रहस्त ने हाथ जोड़कर रावण से कहा कि आप तो सबको पराजित कर चुके हैं, फिर दो मनुष्यों को हराना कौन-सी बड़ी बात है ? प्रत्येक श्रेष्ठ राक्षस अपनी वीरता का बखान करके उन्हें अकेले हराने की बात करने लगा।

जब राक्षस इस प्रकार डींगें मार रहे थे तो विभीषण ने रावण से कहा– श्रीराम प्रमाद-ग्रस्त नहीं हैं, वे तुम लोगों के लिए इतने सुगम नहीं हैं। राम ने रावण का कोई अपकार नहीं किया था, ये ही उनकी पत्नी को हर ले आये। श्रीराम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं, उनके साथ व्यर्थ वैर करना उचित नहीं है। सीता को लौटा देना चाहिये। विभीषण की बात सुनकर रावण सभासदों को विदा करके अपने महल में चला गया।

दूसरे दिन विभीषण फिर रावण के महल गया। वहाँ पर उसने वेद-वेत्ता ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन के पवित्र घोष सुने। राक्षसों ने उसका स्वागत-सत्कार किया, रावण ने उचित सिंहासन पर उसे बैठाया। विभीषण ने बताया कि राजन् ! जब से सीता आयी है, अनेक अपशकुन दिखाई दे रहे हैं, और परामर्श दिया कि आप सीता को लौटा दें। रावण ने उत्तर दिया– विभीषण! मैं तो कहीं से भी भय नहीं देखता। राम सीता को कभी नहीं पा सकते।

रावण ने तुरन्त ही अपने मन्त्रियों तथा श्रेष्ठ जनों की सभा बुलायी। सभी की ओर दृष्टिपात करके उसने सेनापति प्रहस्त से कहा– तुम ऐसी व्यवस्था करो कि सेना नगर की रक्षा में तत्पर रहे। फिर उसने सभासदों से कहा– मैंने जो काम किया है, आपके द्वारा

उसका समर्थन चाहता हूँ। मैं राक्षसों के विचरने के स्थान से राम की पत्नी सीता को हर लाया हूँ। उसे मैं अपनी भार्या बनाना चाहता हूँ। उसके पति राम अपने सहायकों के साथ समुद्र-तट तक पहुँच चुके हैं। आप लोग विचार-विमर्श कीजिये और कोई ऐसा उपाय (नीति) बताइये जिससे सीता को न लौटाना पड़े तथा राम व लक्ष्मण मारे जायें।

रावण की बात सुनकर कुम्भकर्ण को क्रोध आ गया और उसने कहा– महाराज! यह सब तुम्हारे लिए अनुचित है। इस पापकर्म को करने से पूर्व ही तुमको हमारे साथ परामर्श कर लेना चाहिये था। तुमने बड़ा दुष्कर्म किया है। अभी तक श्रीराम ने तुम्हें नहीं मार डाला, यही सौभाग्य की बात है। यद्यपि तुमने अनुचित कर्म किया है, तथापि मैं तुम्हारे सब शत्रुओं का संहार कर दूंगा। तुम सुखपूर्वक विहार करो। मेरे द्वारा राम को यमलोक भेज दिये जाने पर सीता चिरकाल के लिए तुम्हारे अधीन हो जायेगी।

महाबली महापार्श्व ने रावण के दुष्कर्मों को उचित बताया और शत्रुओं को पूर्णतया नष्ट करने का संकल्प व्यक्त किया। उसने सीता को बलपूर्वक वश में लेने के लिए उसे उकसाया। रावण ने महापार्श्व की प्रशंसा करते हुए एक गुप्त घटना बतायी कि एक बार मैंने पुंजिकस्थला नाम की अप्सरा को देखा जो ब्रह्मा जी के भवन की ओर जा रही थी और उसे विवश करके रमण किया। इसके बाद वह ब्रह्मा जी के भवन गयी तो ब्रह्मा जी को अप्सरा की दुर्दशा ज्ञात हो गयीं। तब वे कुपित होकर बोले– आज से यदि तू किसी नारी के साथ बलपूर्वक समागम करेगा तो तेरे मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे। इसलिए उस शाप के भय से मैं सीता को बलपूर्वक अपनी शय्या पर नहीं लाने वाला, परन्तु मेरे बल और वेग को राम नहीं जानते।

रावण के वचन तथा कुम्भकर्ण की गर्जना सुनकर विभीषण ने कहा– राजन् ! कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, इत्यादि कोई श्री राम के सामने नहीं ठहर सकते। आप सीता को श्रीराम की सेवा में समर्पित कर दें। विभीषण की बात सुनकर इन्द्रजीत ने कहा– मेरे कनिष्ठ चाचा! आप बहुत भयभीत हैं तथा निरर्थक बात कर रहे हैं। हमारे कुल में ऐसी बात कोई नहीं करेगा, अकेले आप ही तेज से रहित हैं। फिर वह अपने पराक्रम का वर्णन करने लगा। उसकी बात सुनकर विभीषण ने कहा– तात! अभी तुम बालक हो, इसलिए तुम निरर्थक बात कर रहे हो। और भी अनेक प्रकार से इन्द्रजीत को फटकारा।

विभीषण की हितकारी बात सुनकर रावण कठोर वाणी में बोला– किसी को शत्रु और विषधर सर्प के साथ भी रहना पड़े तो रह लें, परन्तु जो मित्र कहलाकर शत्रु की सेवा कर रहा है, उसके साथ कदापि न रहे। कुलकलंक निशाचर! तुझे धिक्कार है। यदि तेरे अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसी बातें कहता तो उसे इसी मुहूर्त में अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता। रावण ने कठोर वचन कहे तो विभीषण अन्य चार राक्षसों के साथ उछलकर आकाश में चले गये और कहा– राजन् ! तुम धर्म के मार्ग पर नहीं हो। बड़े भाई होने के कारण आदरणीय हो,

इसलिए जो चाहे कह लो। परन्तु मैं अब ऐसे कठोर वचन नहीं सुनूंगा। मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ। मीठी बात करने वाले चाटुकार तो बहुत मिलते हैं, हितकर अप्रिय बात के वक्ता और श्रोता दुर्लभ होते हैं। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं यहाँ से चला जाऊंगा। तुम मेरे बिना सुखी रहो।
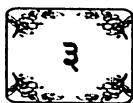
विभीषण का श्री राम से आ मिलना; राम की आज्ञा से लक्ष्मण द्वारा समुद्र-जल से विभीषण का राज्याभिषेक; श्री राम द्वारा सागर से मार्ग की याचना।

विभीषण दो घड़ी में उस स्थान पर आ गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे। पृथ्वी पर खड़े वानर-यूथपतियों ने चार राक्षसों के साथ विभीषण को आकाश में देखा और कहने लगे कि यह हम लोगों को मारने के लिए आ रहा है। उसी समय सुग्रीव भी वहाँ आ गये। विभीषण ने आकाश से ही उच्च स्वर में अपना परिचय दिया और रावण के साथ जो बात हुई उसका वृत्तान्त सुनाया तथा कहा कि मैं श्रीराम की शरण में आया हूँ। सुग्रीव ने शीघ्र ही श्रीराम से आवेश के साथ कहा कि राक्षसों ने हमारी सेना में फूट डालने के लिए अपना कोई गुप्तचर भेजा है। वह अपने को रावण का भाई तथा नाम विभीषण बताता है और कहता है कि मैं राम की शरण में आया हूँ। आप राक्षसों की चाल को अच्छी प्रकार समझिये। मैं तो चाहता हूँ कि इसे कठोर दण्ड देकर मार डालना चाहिये। सुग्रीव की यह बात सुनकर श्रीराम के निकट बैठे हनुमान् जी ने अनेक बातें बताकर समझाया कि विभीषण कोई गुप्तचर नहीं हो सकता। यही उपयुक्त अवसर है हमारे पक्ष में आने का। इसलिए उसे अपना लेना मुझे उचित जान पड़ता है।

श्रीराम ने युक्तिपूर्वक बात करते हुए कहा कि मैं विभीषण को अपनाऊंगा। सुग्रीव का विरोध फिर भी रहा, परन्तु श्रीराम ने सुग्रीव की सभी शंकाओं का समाधान करते हुए कहा कि नीतिशास्त्र के यह अनुकूल है कि हम विभीषण को अपनायें तथा धर्म के नाते भी यह उचित है। शरण में आये व्यक्ति का कभी परित्याग नहीं करना चाहिये। जो एक बार भी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' कहकर रक्षा की प्रार्थना करता है, उसे मैं अभय कर देता हूँ। यह सुनकर सुग्रीव विभीषण को लाये तथा श्रीराम आगे बढ़कर विभीषण से मिले।

विभीषण श्रीराम के चरणों पर गिर पड़े और कहा– भगवन् ! मैं रावण का छोटा भाई हूँ। रावण ने मेरा अपमान किया है। आप समस्त प्राणियों को शरण देने वाले हैं, इसलिए मैंने आपकी शरण ली है। श्रीराम ने मधुर वाणी द्वारा सान्त्वना दी।

तदनन्तर श्री राम ने कहा– विभीषण! तुम मुझे ठीक-ठीक राक्षसों का बलाबल बताओ। यह सुनकर विभीषण ने रावण, कुम्भकर्ण, प्रहस्त तथा इन्द्रजीत के बल और तेज

का परिचय तथा रावण की सम्पूर्ण सेना का विवरण दिया। श्रीराम ने कहा– तुमने रावण के जिन पराक्रमों का वर्णन किया है, वह मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ। सुनो, मैं रावण को पुत्रों सहित मारकर तुम्हें लंका का राजा बनाऊंगा। विभीषण ने श्रीराम से कहा कि मैं आपकी यथाशक्ति सहायता करूंगा तथा प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध के लिए रावण की सेना में भी प्रवेश करूंगा। यह सुनकर श्रीराम ने प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मण से कहा कि तुम समुद्र से जल ले आओ और राक्षसराज विभीषण का लंका के राज्य पर अभिषेक कर दो। तुरन्त ही लक्ष्मण ने अभिषेक किया। तदनन्तर हनुमान् और सुग्रीव ने विभीषण से पूछा कि हम लोग समुद्र को किस प्रकार पार कर सकेंगे? यह सुनकर विभीषण ने कहा– रघुवंशी श्रीराम को समुद्र की शरण लेनी चाहिये। इस महासागर को राजा सगर ने खुदवाया था और श्रीराम उनके वंशज हैं, इसलिए समुद्र को इनका काम अवश्य करना चाहिये। श्रीराम को विभीषण की यह बात अच्छी लगी और वे समुद्र के तट पर कुश बिछाकर बैठ गये।
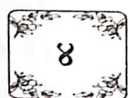
रावण द्वारा सुग्रीव को फोड़ने के लिए भेजे गये राक्षस का पकड़ा जाना; समुद्र से मार्ग न मिलने पर श्रीराम का कोप; समुद्र द्वारा सेतु बनाने की प्रार्थना; सेतु बाँध कर सेना समुद्र पार।

उधर रावण का गुप्तचर राक्षस शार्दूल वानरों की विशाल सेना को देखकर लंका लौट आया और उसने रावण को सब समाचार बताया। रावण ने सुग्रीव व राम में फूट डालने के लिए शुक नामक राक्षस को सुग्रीव के पास भेजा और कहलाया कि मेरा आपसे कोई वैर नहीं है। आप ऋक्षरजा के पुत्र हैं इसलिए मैं आपको भाई के समान समझता हूँ, अतः आप किष्किन्धा को लौट जाइये। शुक तोता नामक पक्षी का रूप धारण करके सुग्रीव के पास पहुँचा और आकाश में स्थित होकर उनसे सारी बातें कहीं। जब वह संदेश सुना रहा था, उसी समय वानरों ने उसे बलपूर्वक पकड़ कर आकाश से उतारा। वे उसे मार डालना चाहते थे, तभी वह चिल्लाया– रघुनन्दन! राजा लोग दूतों का वध नहीं करते हैं। आप वानरों को रोकिये। श्रीराम ने उसकी बात सुनकर कहा– इसे मत मारो। श्रीराम के अभय देने पर वह फिर आकाश में खड़ा हो गया और बोला– सुग्रीव को मेरी बात का उत्तर देना चाहिये। सुग्रीव ने कहा– दूत! तुम रावण से कहना कि तुम न तो मित्र हो, न दया के पात्र हो। तुम श्रीराम के शत्रु हो, इसलिए मेरे लिए वध्य हो। मैं तुम्हारा संहार करूंगा और लंकापुरी को भस्म कर डालूंगा। इसके साथ ही रावण के समस्त कुकृत्यों की सुग्रीव ने निन्दा की।

तत्पश्चात् अंगद ने कहा– महाराज! यह दूत नहीं लगता। यह गुप्तचर है। अतः इसे पकड़ लिया जाय, यह लंका को न जाने पाये। फिर तो सुग्रीव के आदेश से फिर से वानरों

ने उसे पकड़ लिया और बाँध दिया। शुक ने पुनः श्रीराम की दुहाई दी तो श्रीराम ने वानरों से कहा– छोड़ देना, यह दूत होकर ही आया था।

तदनन्तर हाथ जोड़कर समुद्र की ओर मुख करके कुश पर ही श्रीराम लेट गये और वहाँ तीन रातें व्यतीत हो गयीं। श्रीराम के द्वारा यथोचित पूजा और सत्कार पाकर भी महासागर ने अपने आधिदैविक रूप का दर्शन नहीं कराया। श्रीराम कुपित हो गये और लक्ष्मण से बोले– समुद्र को बड़ा अहंकार है। लक्ष्मण! सामनीति के द्वारा इस लोक में न तो कीर्ति प्राप्त की जा सकती है, न यश का प्रसार हो सकता है। इसलिए आज समुद्र मेरे वाणों से सुखा डाला जायेगा, इसके सभी जलचर नष्ट हो जायेंगे तथा वानर पैदल ही लंकापुरी को जायेंगे। ऐसा कहकर श्रीराम ने बड़े भयंकर वाण छोड़े जिनसे समुद्र-जल में उठे भीषण विक्षोभ के साथ समस्त जलचर व्यथित हो उठे। तदनन्तर श्रीराम पुनः धनुष खींचने लगे तो लक्ष्मण ने धनुष पकड़ लिया और कहा कि समुद्र को नष्ट किये बिना भी आपका कार्य सम्पन्न हो जायेगा, कोई दूसरी उत्तम युक्ति सोचें।

श्रीराम ने समुद्र से कठोर शब्दों में कहा कि आज मैं पाताल तक तुझे सुखा डालूंगा। यह कहकर एक भयंकर वाण को ब्रह्मास्त्र से जोड़कर श्रेष्ठ धनुष पर खींचा। खींचे जाते ही पृथ्वी ही नहीं, आकाश के चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र तक डगमगा उठे। पृथ्वी पर चारों ओर प्रलयंकर हलचल मच गयी। तब समुद्र के बीच से सागर स्वयं मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ और हाथ जोड़कर कहा– रघुनन्दन! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज अपने स्वभाव में स्थित रहते हैं। मेरा भी यह स्वभाव ही है कि मैं अगाध और अथाह हूँ, कोई मेरे पार नहीं जा सकता। इसलिए मैं आपको पार होने का यह उपाय बताता हूँ। वानरों के पार जाने के लिए जिस प्रकार सेतु (पुल) बन जाय, वैसा प्रयत्न मैं करूंगा। श्रीराम ने समुद्र से कहा कि यह वाण अमोघ है, बताओ इसे किस स्थान पर छोड़ा जाय। समुद्र बोला– मेरे उत्तर की ओर द्रुमकुल्य नाम से देश है जहाँ आभीरों की अगुवाई में डाकू निवास करते हैं जो सब पापी और लुटेरे हैं। आप अपने उत्तम वाण को वहीं छोड़िये। यह सुनकर श्रीराम ने वाण को छोड़ दिया। वह स्थान दुर्गम मरुभूमि के रूप में परिणत हो गया तथा मरुकान्तार (निर्जन मरुस्थल) नाम से विख्यात हुआ। श्रीराम ने वरदान दिया कि यह भूमि पशुओं के लिए हितकारी होगी। रोग कम होंगे। भूमि फल, मूल, रसों से युक्त और दुग्धबहुला (बहुत दूध वाली), सुगन्धि तथा ओषधियों से सम्पन्न होगी। तदनन्तर समुद्र ने श्रीराम से कहा– आपकी सेना में नल नामक वानर विश्वकर्मा का पुत्र है। वह मेरे ऊपर पुल का निर्माण करे। यह कहकर समुद्र अदृश्य हो गया। तब नल ने श्रीराम से कहा– महासागर ने ठीक कहा है। मैं इस समुद्र पर सेतु का निर्माण करूंगा। अतः आज ही पुल बाँधने का कार्य आरम्भ कर दें।

लाखों वानर बड़े-बड़े जंगलों में घुस गये। वे पर्वत-शिखरों और वृक्षों को तोड़ देते और समुद्र तक खींच लाते थे। बड़े उत्साह और वेग के साथ सब काम में लगे थे। प्रथम

दिन उन्होंने चौदह योजन लम्बा पुल बाँधा, दूसरे दिन बीस योजन। इस प्रकार पाँचवे दिन तक समुद्र में सौ योजन लम्बा, दस योजन चौड़ा पुल तैयार हो गया तथा दस अरव वानर समुद्र के उस पार पहुँच गये। सुग्रीव के आग्रह से श्रीराम हनुमान् ने कंधे पर तथा लक्ष्मण अंगद के कन्धे पर बैठकर वानर-सेना के साथ समुद्र-पार गये।
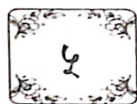
श्रीराम के आदेश से सेना की व्यूह-रचना और सुग्रीव के पास आये दूत शुक की मुक्ति; शुक द्वारा रावण का प्रबोधन; वानर-सेना की जानकारी के लिए भेजे शुक और सारण द्वारा रावण के समक्ष विवरण की प्रस्तुति; पुनः गुप्तचरी का प्रयास भी विफल।

समस्त सेना का नियमानुसार विभाग किया गया। तदनन्तर श्रीराम ने सुग्रीव से कहा– अपनी सेना को व्यूहबद्ध का लिया गया है, अतः अब इस शुक को छोड़ दिया जाय। शुक बन्धनमुक्त कर दिया गया। वह भयभीत हुआ रावण के पास गया और कहा कि सुग्रीव से संधि नहीं हो सकती। श्रीराम समुद्र पर पुल बाँध, उसे पार करके यहाँ खड़े हैं। अतः जब तक वे लंकापुरी के प्राकार (परकोटे) पर नहीं चढ़ आते, उसके पूर्व आप या तो सीता को लौटा दीजिये या सामने खड़े होकर युद्ध कीजिये। यह सुनकर रावण की आँखें रोष से लाल हो गयीं और उसने कहा कि देव, गन्धर्व, दानव, कोई भी मुझे युद्ध का भय दिखाये तो भी मैं सीता को नहीं लौटाऊंगा। राम का मेरे बल-पराक्रम से पाला नहीं पड़ा है, इसलिए वह मेरे साथ लड़ने की इच्छा रखता है। मुझे कोई पराजित नहीं कर सकता।

श्रीराम सेना सहित समुद्र पार कर चुके, यह जानने के पश्चात् रावण ने अपने दो मन्त्रियों शुक और सारण से कहा– यद्यपि समुद्र को पार करना अत्यन्त कठिन था, परन्तु राम के द्वारा सागर पर सेतु बाँध दिया जाना अभूतपूर्व कार्य है। तुम दोनों इस प्रकार वानर-सेना में प्रवेश करो कि तुम्हें कोई पहचान न सके। वहाँ जाकर यह पता लगाओ कि वानरों की संख्या कितनी है, शक्ति कैसी है, मुख्य-मुख्य वानर कौन से हैं, पुल कैसे बाँधा गया तथा राम-लक्ष्मण के पास कैसे अस्त्र-शस्त्र हैं? वानर-वेश में सेना का निरीक्षण करते हुए शुक और सारण को विभीषण ने देखकर पहचान लिया और पकड़कर श्रीराम के पास ले गये। उन्हें बताया कि ये गुप्तचर और रावण के मंत्री हैं। दोनों ने डरते हुए अपने आने का कारण बताया। श्रीराम ने उनसे कहा कि यदि तुम्हें और भी कोई जानकारी लेनी हो तो ले लो। भय मत करो और रावण को जाकर मेरी ओर से संदेश सुना देना कि रावण! जिस बल के भरोसे तुमने सीता का अपहरण किया है, अब आकर उसे दिखाओ। शीघ्र ही तुम्हारी लंकापुरी ध्वस्त की जायेगी। 'श्रीराम की जय हो' कहकर दोनों लंकापुरी लौटे तथा

रावण से बोले कि विभीषण ने हमें पकड़ लिया था, परन्तु श्रीराम ने हमें छुड़वा दिया। श्रीराम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव जहाँ हैं, वहाँ विजय निश्चित है। इसलिए संधि कर लीजिये और सीता को लौटा दीजिये।

शुक और सारण के ये वचन सुनकर रावण ने कहा कि मैं सीता को नहीं दूंगा। भला ऐसा कौन है जो युद्ध में मुझे जीत सके? ऐसा कहकर रावण कई तल ऊँची अट्टालिका पर चढ़कर वानर-सेना का निरीक्षण करने लगा। विशाल सेना को देखकर रावण ने सारण से पूछा– इन वानरों में मुख्य कौन हैं? उनके बलाबल का वर्णन करो। सारण ने सुग्रीव, नल, अंगद, हनुमान् तथा अनेक प्रमुख वानरों का परिचय और पराक्रम बताया।

सारण के कहने के बाद शुक ने बताया कि श्रीराम की सेना में ऐसे भी वीर हैं जो दैत्यों और दानवों के समान शक्तिशाली तथा पराक्रमी हैं। वे सभी इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ हैं। वानरों में मैन्द और द्विविद ऐसे हैं जिनकी युद्ध में बराबरी करने वाला कोई नहीं और दोनों ने ब्रह्मा जी की आज्ञा से अमृतपान किया है। फिर शुक ने श्रीराम के महान् पराक्रम का वर्णन किया और बताया कि लक्ष्मण सदा ही श्रीराम के दाहिने हाथ और प्राण हैं। वे स्वयं बड़े पराक्रमी हैं। साथ में विभीषण हैं जिन्हें श्रीराम ने लंका के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया है। महाराज ! यह सेना एक प्रकाशमान् ग्रह के समान है। इसे देखकर आप ऐसा उपाय सोंचे जिससे आपकी विजय हो।

शुक और सारण द्वारा प्रमुख वानर-यूथपतियों तथा श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव के पराक्रम का वर्णन सुनकर रावण उन पर क्रोधित हो गया और कहा– जो शत्रु एवं अपने विरोधी हैं और युद्ध के लिए आये हैं, उनकी बिना किसी प्रसंग के ही स्तुति करना क्या तुम दोनों के लिए उचित है ? अब तुम दोनों मेरे पास से चले जाओ और कभी मुँह न दिखाना। वे दोनों रावण की जय-जयकार करते हुए चले गये। तब रावण ने पास ही बैठे मंत्री महोदर से कहा कि शीघ्र ही गुप्तचरों को उपस्थित होने की आज्ञा दो। गुप्तचरों को उसने फिर भेजा, परन्तु वे सब पकड़े गये तथा श्रीराम द्वारा छुड़ा दिये जाने के बाद लंका आकर रावण को बताया कि श्रीराम की सेना सुवेल पर्वत के निकट डेरा डाले पड़ी है और सर्वथा अजेय है।

यह सुनकर कि श्रीराम सेना सहित निकट ही आ गये हैं, रावण को कुछ भय हो गया। रावण शार्दूल से बोला– तुम दीन दिखाई दे रहे हो। शार्दूल ने मन्द स्वर में कहा– वानरों की गतिविधि का पता गुप्तचरों द्वारा नहीं लगाया जा सकता। श्रीराम समुद्र को पार कर लंका आ धमके हैं। जब तक वे लंका के परकोटे तक पहुँचें, आप दो में से एक काम अवश्य कर डालिये– या तो सीता जी को लौटा दीजिये या युद्धस्थल में खड़े होकर उनका सामना करिये। रावण ने उससे भी राम की सेना के वीरों का परिचय पूछा। शार्दूल ने प्रमुख वानरों का परिचय बताया।

६

रावण द्वारा सीता को माया दिखाकर भ्रमित करने का प्रयास; कुछ राक्षसों द्वारा रावण को समझाने के विफल प्रयास; दोनों ओर से युद्ध की तैयारी; सुग्रीव-रावण-मल्लयुद्ध; रावण-सभा में अंगद का दूत बनकर जाना।

गुप्तचरों से सब बात सुनकर रावण ने अपने सभी मन्त्रियों से गुप्त मंत्रणा की तथा माया-विशारद राक्षस विद्युज्जिह्व को साथ लेकर सीता के पास गया। उसने विद्युज्जिह्व को श्रीराम का मायानिर्मित मस्तक लेकर आने के लिए कहा तथा सीता को बताया कि तुम्हारे पति समर-भूमि में मारे गये। आधी रात के समय हमारे सैनिकों ने आक्रमण करके सारी वानर-सेना को मार डाला तथा तुम्हारे पति का रुधिर से भीगा और धूल में सना मस्तक यहाँ ले आये। रावण ने विद्युज्जिह्व से मस्तक लेकर सीता के सामने रख दिया और एक धनुष भी रक्खा तथा कहा कि यही राम का धनुष है।

सभी चिह्नों से पति को पहचान कर सीता बहुत दुःखी होकर रोने लगीं तथा विकल होकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगीं। फिर सीता ने कहा– रावण! मुझे भी श्रीराम के शव के ऊपर रखकर मेरा वध कर डालो। उसी समय सेनापति प्रहस्त की सूचना पर रावण वहाँ से चल दिया। रावण के वहाँ से निकलते ही वह सिर और उत्तम धनुष अदृश्य हो गये।

सीता को शोक में डूबी देखकर सरमा नामक राक्षसी ने कहा कि रावण बड़ा क्रूर और मायावी है। उसने तुम्हारे ऊपर माया का प्रयोग किया था। श्रीराम समुद्र को लांघकर सेना के साथ लंका आ गये हैं। राम सर्वदा सुरक्षित हैं। रावण युद्ध की तैयारी कर रहा है।

सीता ने सरमा से कहा– रावण इस समय क्या कर रहा है, यह पता लगाओ। सरमा ने लौटकर बताया कि रावण की माता तथा एक बूढ़े मंत्री ने रावण को तुम्हें छोड़ देने के लिए प्रेरित किया, परन्तु वह बिना मरे तुम्हें छोड़ने का विचार नहीं रखता।

रावण की भरी सभा में उसके नाना माल्यवान् ने श्रीराम से सन्धि करने के लिए कहा, परन्तु रावण के मनोभाव की परीक्षा करके चुप हो गया। माल्यवान् की बात सुनकर रावण क्रुद्ध हुआ और उसे अनेक कठोर बातें कहने लगा तथा अपने पराक्रम का वर्णन किया। माल्यवान् बहुत लज्जित होकर घर चला आया। रावण ने युद्ध की व्यवस्था प्रारम्भ कर दी।

श्रीराम ने अपने पक्ष के सेनापतियों से कहा कि विजय प्राप्त करने के लिए विचार करें। विभीषण ने रावण की सेना की पूरी तैयारी बतायी। उसे सुनकर श्रीराम ने कहा– नील पूर्वद्वार पर प्रहस्त का सामना करें। अंगद दक्षिण-द्वार पर महापार्श्व और महोदर का सामना करें। हनुमान् पश्चिमी द्वार पर तथा मैं स्वयं लक्ष्मण के साथ उत्तर-द्वार पर रहूंगा जहाँ रावण सबल है। सुग्रीव व विभीषण नगर के मध्य भाग में सेना लेकर पहुँचें। तदनन्तर वे

लंकापुरी की ओर चले। श्रीराम सुवेल पर्वत पर चढ़कर रात्रि में वहीं निवास करने पहुँच गये तथा वहाँ से लंकापुरी का भी अवलोकन करने का निश्चय किया।

सुवेल पर्वत से उन्होंने समूची लंका का भली भाँति अवलोकन किया। श्रीराम ने त्रिकूट पर्वत पर बसी लंकापुरी के गोपुर की छत पर रावण को बैठे देखा। उसे देखते ही सुग्रीव छलांग भर कर उस गोपुर की छत पर कूद पड़े और कठोर वचन बोलते हुए रावण के मुकुट को खींचकर पृथ्वी पर गिरा दिया। रावण ने क्रुद्ध होकर सुग्रीव को छत पर पटक कर दे मारा। फिर सुग्रीव ने भी उसे पटक दिया और वे दोनों आपस में गुँथ गये। इस बीच रावण ने मायाशक्ति से काम लेने का विचार किया। सुग्रीव ताड़ गये तथा आकाश में उछल पड़े और रावण को चकमा देकर श्रीराम के पास आ गये। श्रीराम ने कहा– सुग्रीव! तुमने मुझसे परामर्श लिये बिना ही यह बड़े साहस का काम कर डाला। राजा लोग ऐसे दुःसाहसपूर्ण कार्य नहीं किया करते। इससे हमें कष्ट हुआ। अब ऐसा मत करना।

नीचे उतरकर श्रीराम ने युद्ध के लिए सन्नद्ध अपनी सेना को देखा। फिर उन्होंने वालिपुत्र अंगद को बुलाकर कहा– कपिप्रवर! दशमुख रावण राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट हो गया है। वह मरना ही चाहता है। तुम परकोटा लांघकर लंकापुरी में निर्भय होकर जाओ और रावण से ये बातें कहो कि राक्षसराज! तुमने घमंड में आकर ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, और राजाओं का बड़ा अपराध किया है। ब्रह्मा का वरदान पाकर जो अभिमान तुम्हें हो गया था, उसके नष्ट होने का समय आ गया है। मैं अपराधियों को दण्ड देने वाला शासक हूँ। तुमने जो मेरी भार्या का अपहरण किया है, उससे मुझे बड़ा कष्ट पहुँचा है। यदि तुम सीता को लेकर मेरी शरण में नहीं आये तो मैं इस संसार को तुम राक्षसों से सूना कर दूंगा। मेरे दृष्टिपथ में आने के बाद तुम जीवित नहीं लौट सकोगे।

इतना सुनते ही अंगद आकाशमार्ग से चल दिये और रावण के राजभवन में जाकर अपना परिचय दिया तथा श्रीराम द्वारा कही गयी सभी बातें यथावत् सुना दीं। यह सुनकर रावण अमर्ष से भर गया और बोला कि इस वानर को मार डालो। चार भयंकर राक्षसों ने अंगद को पकड़ लिया। अंगद उन चारों को अपनी भुजाओं में दबाकर उन्हें लिये हुए ही उस महल की छत पर चढ़ गये और वहाँ से उनको नीचे फैंक दिया। वे राक्षस रावण के आगे पृथ्वी पर गिर पड़े। अंगद ने प्रासाद-शिखर तोड़कर प्रचंड सिंहनाद किया और राक्षसों को भयभीत करते हुए आकाश-मार्ग से उड़कर श्रीराम के पास लौट गये।

लंका पर घेरा डाले असंख्य वानरों की सेना को देखकर निशाचर भयभीत हो गये तथा हाहाकार करने लगे। इस पर रावण के योद्धा निशाचर बड़े-बड़े आयुध लेकर सब ओर विचरने लगे।

युद्धारम्भ करते हुए वानरों का आक्रमण; रात्रि-दिन युद्ध चलता रहा; राक्षस-वध; इन्द्रजीत द्वारा मायायुद्ध और राम लक्ष्मण का नागपाशबन्धन, वानर व्याकुल; सीता को शोक; गरुड़ द्वारा पाशमुक्ति।

'श्रीराम की जय हो, लक्ष्मण की जय हो, राजा सुग्रीव की जय हो' की घोषणा करते हुए और गर्जते हुए इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानर लंका के परकोटे पर टूट पड़े। क्रोध से भरे रावण ने अपनी सारी सेना को तुरन्त निकलने की आज्ञा दी। देवासुर-संग्राम की भाँति राक्षसों और वानरों में घोर युद्ध होने लगा।

हनुमान् ने महाबली जम्बुमाली को, नल ने राक्षस प्रतपन को तथा लक्ष्मण ने विरूपाक्ष को मौत के घाट उतार दिया। श्रीराम ने अनेक बलशाली राक्षसों के सिर काट दिये। उस भयानक मारकाट में वानरों और राक्षसों के कबन्ध (मस्तकरहित धड़) समस्त दिशाओं में उछल रहे थे। युद्ध चल ही रहा था कि सूर्यदेव अस्त हो गये तथा रात्रि का आगमन हो गया, परन्तु कोई युद्ध से नहीं हटा तथा रात्रि-युद्ध होने लगा। रात्रि के कारण पहचान करना कठिन था। अंगद ने रावणपुत्र इन्द्रजीत को घायल कर दिया तो वह रथ छोड़कर वहीं अर्न्तधान हो गया तथा अन्तर्धान-विद्या का आश्रय लेकर उसने वज्र के समान तेजस्वी और तीक्ष्ण वाण बरसाने आरम्भ कर दिये, श्रीराम और लक्ष्मण को भी घायल कर दिया, किन्तु फिर भी उन्हें रोक न पाने पर उस राक्षस ने मायावी शस्त्रों का प्रयोग करके उनको मोह में डालते हुए सर्पाकार वाणों के बन्धन (नागपाश) में बाँध दिया।

तदनन्तर श्रीराम ने इन्द्रजीत का पता लगाने के लिए दस प्रमुख वानर यूथपतियों को आज्ञा दी। उन्होंने दशों दिशाओं में उसे ढूँढा, परन्तु इन्द्रजीत को अन्धकार में वे नहीं देख सके। अदृश्य इन्द्रजीत ने उन्हें तो क्षत-विक्षत किया ही, श्रीराम व लक्ष्मण को वाणों द्वारा इस प्रकार बींध दिया कि उनके शरीर में थोड़ा सा भी ऐसा स्थान नहीं था जहाँ वाण न लगे हों। वाणों के बन्धन से बँधे हुए वे दोनों बन्धु ऐसी दशा में पहुँचे गये मानो उनमें आँख उठाकर देखने की भी शक्ति नहीं रह गयी। उस अवस्था में उन्हें देखकर वानरों को भी बड़ा संताप हुआ। तदनन्तर जब वे दस वानर, जो इन्द्रजीत को ढूँढने गये थे, लौटे तो उन्होंने श्रीराम व लक्ष्मण को इस अवस्था में देखा। सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, नल इत्यादि सभी आ गये। इन्द्रजीत ने भयंकर वाणवर्षा करके सबको घायल किया। विभीषण ने माया के ही बल से इन्द्रजीत को देख लिया। वह राक्षसों को बता रहा था कि उसने राम-लक्ष्मण को मार दिया है। इन्द्रजीत का यह पराक्रम सुनकर सभी राक्षस चकित तथा प्रसन्न हुए। इन्द्रजीत ने राम-लक्ष्मण को निश्चेष्ट देखा और नागपाश से उनका बचना असम्भव मानकर लंकापुरी

चला गया। श्रीराम की यह अवस्था देखकर सुग्रीव के मन में भय और शोक समा गया। तब विभीषण ने कहा– सुग्रीव ! व्याकुलता छोड़ो, ये दोनों महाबली अवश्य मूर्च्छा त्याग देंगे। जब तक श्रीराम को चेत न हो, इनकी रक्षा करनी चाहिये तथा वानरों की घबरायी सेना को सान्त्वना देकर तत्पर रखना चाहिये। यह कहकर विभीषण सेना को सँभालने चले गये। उधर इन्द्रजीत ने रावण के पास जाकर श्रीराम-लक्ष्मण के मारे जाने का संवाद सुनाया। रावण ने अत्यन्त प्रसन्न होकर पुत्र को हृदय से लगा लिया।

हर्ष से भरे रावण ने सीता की रक्षा करने वाली राक्षसियों को आदेश दिया कि सीता को राम व लक्ष्मण के मरने का समाचार दो तथा पुष्पक विमान पर बैठाकर उसे दिखा भी दो। श्रीराम-लक्ष्मण को वाण-शय्या पर पड़े देख सीता फूट-फूट कर रोने और विलाप करने लगीं। विलाप करती हुई सीता से राक्षसी त्रिजटा ने कहा– देवि! विषाद न करो। तुम्हारे पतिदेव जीवित हैं। अनेक ऐसे उचित कारण हैं जिनसे यह सूचित होता है कि ये जीवित हैं। युद्ध में स्वामी के मारे जाने पर योद्धाओं के मुँह क्रोध और हर्ष की उत्सुकता से युक्त नहीं रहते। यह पुष्पक विमान दिव्य है, यदि उनके प्राण चले गये होते तो यह तुम्हें धारण न करता। वानर अनाथ होकर डोल नहीं रहे, उनकी रक्षा कर रहे हैं। अतः विश्वास करो कि ये जीवित हैं। सीता ने हाथ जोड़कर कहा– बहिन! ऐसा ही हो। तत्पश्चात् उन्हें पुनः अशोक वाटिका में ही पहुँचा दिया गया।

इस बीच श्रीराम नागपाश से बँधे होने पर भी मूर्च्छा से जाग उठे। लक्ष्मण को रक्त से लथपथ देखकर वे विलाप करने लगे और कहा– वानरराज सुग्रीव! तुम इसी समय यहाँ से लौट जाओ, क्योंकि मैं विना लक्ष्मण के वापस जाने के लिए जीवित नहीं रहूंगा और असहाय समझकर रावण तुम्हारा तिरस्कार करेगा। तब तक समस्त सेनाओं को स्थिरतापूर्वक स्थापित करके विभीषण उस स्थान पर लौट आये और विलाप करने लगे। उनको विलाप करते देखकर सुग्रीव ने कहा– तुम चिन्ता न करो, तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। श्रीराम-लक्ष्मण मूर्च्छा त्यागने के बाद राक्षसों सहित रावण का वध करेंगे। सुग्रीव के श्वसुर सुषेण ने क्षीरसागर से ओषधि लाने का सुझाव देते हुए कहा– संजीवकरणी, विशल्यकरणी नामक ओषधियों का निर्माण साक्षात् ब्रह्मा ने किया है। क्षीरसागर में जहाँ मन्थन से अमृत निकला था, वहाँ चन्द्र और द्रोण नामक पर्वत हैं। वहीं यह ओषधि मिलेगी।

उसी समय वहाँ पर आँधी-सी उड़ाते हुए महान् गरुड़ आ उपस्थित हुए। उन्हें आया देख वाणों के रूप में जिन नागों ने श्रीराम-लक्ष्मण को बाँध रक्खा था, वे भाग खड़े हुए। गरुड़ जी का स्पर्श पाते ही श्रीराम व लक्ष्मण के घाव भी भर गये। श्रीराम ने गरुड़ जी को हृदय से लगा लिया तथा परिचय पूछा! गरुड़ जी ने कहा– मैं आपका सखा गरुड़ हूँ। आपकी सहायता के लिए यहाँ आया हूँ। राक्षस स्वभाव से ही कपटपूर्वक युद्ध करते हैं, इसलिए आप उनसे सावधान रहें। आपकी विजय निश्चित है। श्रीराम-लक्ष्मण को स्वस्थ देखकर सभी वानर हर्षित हो गये तथा सिंहनाद करने लगे।

पुनः युद्धारम्भ; धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र और राक्षस-सेनापति प्रहस्त का वध; रणभूमि में रावण का आगमन, घमासान युद्ध के पश्चात् पराभूत वापस।

वानरों के सिंहनाद को सुनकर रावण ने राक्षसों से इसका कारण पता लगाने को कहा। राक्षसों ने परकोटे से देखकर, विषादग्रस्त हो, रावण को बताया कि राम-लक्ष्मण नागों के बन्धन से मुक्त हो गये हैं। अग्नितुल्य तेजस्वी वाणों को निष्फल देखकर रावण भी चिन्ता और विषाद में डूब गया। फिर उसने धूम्राक्ष नामक राक्षस से कहा कि सेना लेकर राम का वध करने के लिए जाओ। धूम्राक्ष भयंकर सेना लेकर निकला।

वानरों तथा राक्षसों के बीच भयानक संग्राम होने लगा। धूम्राक्ष ने असंख्य वानरों का वध कर दिया तो हनुमान् जी क्रुद्ध होकर उससे लड़ने लगे और अन्त में एक विशाल शिला से उस राक्षस का अन्त कर दिया। राक्षसों की सेना भागकर लंका में घुस गयी।

फिर रावण ने वज्रदंष्ट्र को भेजा। वज्रदंष्ट्र का अंगद से भयानक युद्ध हुआ। अन्ततः वालिकुमार अंगद ने तीक्ष्ण धार वाली तलवार से वज्रदंष्ट्र का विशाल मस्तक काट डाला। फिर अकम्पन आया। उसका युद्ध हनुमान् से होने लगा। हनुमान् जी ने एक बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और अकम्पन के सिर पर दे मारा। वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। उसकी सेना भयभीत होकर भाग गयी।

तब रावण की आज्ञा से उसका सेनापति प्रहस्त युद्धभूमि में बहुत विशाल सेना लेकर आया तथा अपने वेग से वानरों का संहार करने लगा। वानर-सेनापति नील ने भी राक्षसों का संहार किया। यह देखकर प्रहस्त ने नील पर आक्रमण किया। दोनों में घोर युद्ध होने लगा और नील ने एक शिला प्रहस्त के मस्तक पर दे मारी जिससे वह तुरन्त मर गया।

प्रहस्त के मारे जाने के समाचार से रावण को बड़ा क्रोध हुआ। उसने कहा कि मैं स्वयं युद्ध के मुहाने पर जाऊंगा, और रणभूमि में पहुँच गया। रावण को देखकर सुग्रीव ने उस पर आक्रमण किया। रावण के वाणों की चोट से सुग्रीव अचेत हो गये। उसके हाथों वानर-सेना का संहार होते देखकर श्रीराम आगे आये परन्तु लक्ष्मण ने उन्हें हटाकर स्वयं रावण का सामना किया। फिर हनुमान् जी का रावण से युद्ध होने लगा। छाती में चोट लगने पर हनुमान् जी थोड़ा विचलित हुए। इस बीच रावण नील से उलझ गया। रावण ने आग्नेयास्त्र वाण से नील को मारा। वह उसकी आँच से जलता हुआ सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ा। तभी रावण ने लक्ष्मण पर आक्रमण किया। रावण और लक्ष्मण का तीखा वाक्-युद्ध भी हुआ। फिर दोनों में घोर युद्ध होने लगा। अपनी पराजय होती देखकर रावण ने ब्रह्मा जी की दी हुई शक्ति को लक्ष्मण के ऊपर चलाया जो उनके वक्षस्थल में घुस गयी। लक्ष्मण गिर

गये तथा जलने लगे। रावण उनके पास पहुँचा और उठाने लगा, परन्तु नहीं उठा सका। इस बीच हनुमान् दौड़े और रावण को मुक्के से मारा। वह काँपते हुए गिर पड़ा और रथ के पिछले भाग में निश्चेष्ट होकर जा बैठा। फिर हनुमान् जी लक्ष्मण को उठाकर श्री राम के पास लाये। तभी वह शक्ति पुनः रावण के रथ पर लौट गयी। लक्ष्मण जी स्वस्थ एवं नीरोग हो गये। अब श्री राम ने रावण पर धावा मारा। हनुमान् के आग्रह से उनकी की पीठ पर चढ़कर वे रावण से युद्ध करने लगे। रावण ने बहुत कौशल दिखाया परन्तु राम ने उसके रथ, धनुष इत्यादि सब काट डाले और कहा कि जा, लंका में प्रवेश करके कुछ देर विश्राम करने के बाद फिर लड़ने के लिए आना। राम के ऐसा कहने पर रावण लंका में घुस गया।

कुम्भकर्ण का जगाया जाना, युद्ध और वध।

श्रीराम के वाणों से भयभीत रावण का अभिमान चूर-चूर हो गया था। वह कहने लगा कि मेरी तपस्या व्यर्थ हो गयी। एक मनुष्य ने मुझे परास्त कर दिया। इक्ष्वाकुवंशी राजा अनरण्य ने मुझे शाप देते हुए कहा था– 'मेरे ही वंश में एक ऐसा श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न होगा जो तुझे सबके साथ मार डालेगा।' राम वही मनुष्य हैं। पूर्वकाल में वेदवती ने भी शाप दिया था। जान पड़ता है वही सीता हुई है। फिर उसने राक्षसों से कहा कि कुम्भकर्ण को जगाया जाय। रावण की आज्ञा पाकर राक्षस बहुत-सी सामग्री लेकर कुम्भकर्ण के पास गये। कुम्भकर्ण एक विशाल गुफा में रहता था। उसकी साँस के वेग ने राक्षसों को पीछे ठेल दिया। बड़ी कठिनाई से वे उस गुफा के भीतर घुसे। कुम्भकर्ण खर्राटे ले रहा था। सब राक्षस जगाने की चेष्टा करने लगे। उसके सामने तृप्ति करने वाले मृगों, भैंसों, सुअरों के समूह खड़े कर दिये गये। उस पर चन्दन का लेप किया गया, सुगन्ध फैलायी गयी, राक्षस गर्जना करने लगे तथा उसके विभिन्न अंगों को झकझोरने लगे, परन्तु वह नहीं जागा। तब राक्षसों ने उस पर मूसलों, गदाओं और मुक्कों से मारना आरम्भ किया। फिर वे गधे, घोड़े, ऊँट और हाथियों को उसके ऊपर ठेलने लगे, परन्तु वह फिर भी नहीं जागा। इसके बाद उसके शरीर पर हजारों हाथी दौड़ाये गये, तब वह जाग गया और भूख से पीड़ित हो अंगड़ाई ली तथा खड़ा हो गया। राक्षसों ने उसे खाने-पीने की प्रचुर सामग्री दिखायी। वह सब चट कर गया, फिर कई घड़े मदिरा भी पी गया। सब खड़े होकर उसे प्रणाम करने लगे तो कुम्भकर्ण ने पूछा– तुम लोगों ने मुझे क्यों जगाया? तब रावण के सचिव यूपाक्ष ने राम के कारण जो भय उपस्थित हो गया था, वह बताया। तब कुम्भकर्ण ने कहा– मैं वानरों के मांस और रक्त से राक्षसों को तृप्त करूंगा और स्वयं राम-लक्ष्मण का रुधिर पीऊंगा, फिर रावण के दर्शन

करूंगा। महोदर ने कहा– पहले आप रावण की बात सुन लीजिये, फिर युद्ध में शत्रुओं को परास्त कीजियेगा। कुम्भकर्ण रावण से मिलने चला। उस विशालकाय राक्षस को देखकर वानर सहसा भयभीत हो गये और श्रीराम की शरण ली। बहुत-से वानर भागने लगे।

जब श्रीराम ने महाकाय राक्षस कुम्भकर्ण को देखा तो विभीषण से उसके बारे में पूछा। विभीषण ने बताया कि यह रावण का भाई है, तथा उसका सम्पूर्ण इतिहास व पराक्रम बताया और कहा कि यदि वानर उसे देखकर ही भयभीत हो रहे हैं तो सामना कैसे करेंगे? सब वानरों से कह दिया जाय कि यह कोई व्यक्ति नहीं, काया के रूप में निर्मित ऊँचा यन्त्रमात्र है। ऐसा जानकर वानर निर्भय हो जायेंगे। श्रीराम ने सेनापति नील से कहा कि सभी वानरों को उपयुक्त स्थानों पर लगा दिया जाय।

कुम्भकर्ण ने रावण के पास जाकर प्रणाम किया और पूछा कि कौन-सा कार्य आ पड़ा है? रावण ने उसे हृदय से लगाया और कहा– मेरे लिए राम से भय उत्पन्न हो गया है। तुम हमारी रक्षा करो और वानरों को नष्ट कर दो।

रावण का विलाप सुनकर कुम्भकर्ण हँसने लगा और बोला– मन्त्रणा करते समय पहले जो दोष हम लोगों ने देखा था, यह उसी का फल है। फिर उसने अनेक प्रकार से रावण को फटकारा और कहा कि तुम्हारी पत्नी मन्दोदरी और भाई विभीषण ने जो तुमसे कहा, वह करो। यह सुनकर रावण ने कुपित होकर कहा– तुम मुझे उपदेश क्यों दे रहे हो? जो कहता हूँ वह करो। जो बीत गया, उसकी चर्चा करने का क्या लाभ ? यदि तुम्हारा मुझ पर स्नेह है तो युद्ध करो। तब कुम्भकर्ण ने सान्त्वना देते हुए कहा– संताप करना व्यर्थ है। जिसके कारण तुम्हें कष्ट है उसे मैं नष्ट कर दूंगा। फिर अपने पराक्रम का स्वयं वर्णन करने लगा और कहा– राजन् ! आनन्द करो, मदिरा पीओ। आज मेरे द्वारा राम यमलोक पहुँचा दिये जायेंगे, फिर सीता चिरकाल के लिए तुम्हारे अधीन हो जायेगी।

कुम्भकर्ण की बात सुनकर महोदर ने कहा कि तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हो, परन्तु तुम्हारी बुद्धि निम्न श्रेणी के समान है। जनस्थान में अनेकानेक महाबली राक्षसों का वध कर चुके राम को तुम अकेले नहीं जीत सकते। इस समय बुद्धि से काम लेना होगा। हम पाँच राक्षस–महोदर, द्विजिह्व, संह्रादी, कुम्भकर्ण और वितर्दन–राम का वध करने जा रहे हैं, यह घोषणा की जाय। फिर यह चर्चा फैलायी जाय कि हम राम को मारकर आ गये। तब, महाराज! आप सीता को समझा-बुझाकर अपने वश में कर लें।

महोदर की बात सुनकर कुम्भकर्ण ने उसे डाँटा और रावण से कहा कि मैं आज ही दुरात्मा राम का वध करके तुम्हारा भय दूर कर दूंगा। रावण ने प्रसन्नता प्रकट की तथा कुम्भकर्ण लंकापुरी से बाहर निकला। उस समय वह छः सौ धनुष के बराबर विस्तृत तथा सौ धनुष के बराबर ऊँचा था। उसने शूल तथा परिघ ले रक्खा था।

उस भयानक नेत्र वाले निशाचर को आते देखकर सभी वानर भाग खड़े हुए। अंगद ने वानरों में भरोसा उत्पन्न करके उन्हें लड़ने को तैयार किया। वानर कुम्भकर्ण के ऊपर

प्रहार करने लगे। परन्तु वह विचलित नहीं हुआ और वानर-सेना को रौंदने लगा। सभी भागने लगे। अंगद के समझाने पर भी सभी में भगदड़ मची थी। परन्तु अंगद के साथ प्रमुख वानर रणक्षेत्र की ओर बढ़े।

वानर पूरे सामर्थ्य के साथ कुम्भकर्ण पर आक्रमण कर रहे थे, परन्तु उसके वेग को नहीं संभाल पा रहे थे। सहस्रों वानर मारे गये। हनुमान् जी आकाश में स्थित होकर शिलाओं, पर्वत-शिखरों, वृक्षों की वर्षा करने लगे, परन्तु वे सब उस पर प्रभाव न कर सके। तब हनुमान् जी ने एक बड़ा पवर्त-शिखर लेकर वेग से प्रहार किया जिससे कुम्भकर्ण व्याकुल हो उठा। फिर उसने शूल उठाकर हनुमान् की छाती में दे मारा जिससे वे व्याकुल हो गये और मुँह से रक्तवमन करने लगे। इधर कुम्भकर्ण के भय से वानर युद्धभूमि छोड़कर भागने लगे। तब नील ने पर्वतशिखर चलाया और अन्य अनेक वानर-यूथपतियों ने आक्रमण किया, परन्तु कुम्भकर्ण ने अनेकों को दोनों भुजाओं में भरकर भींच लिया। कुम्भकर्ण की मार से भयभीत वानर श्रीराम की शरण में गये। सुग्रीव, अंगद आदि सभी लगातार चोट खाते रहे। कुम्भकर्ण के तीखे शूल को हनुमान् ने तोड़ डाला, इससे कुम्भकर्ण उदास हो गया और हनुमान् के बल की प्रशंसा करने लगा। तदनन्तर उसने सुग्रीव पर मलय पर्वत दे मारा। वे युद्धभूमि में गिर गये और कुम्भकर्ण ने सुग्रीव को उठा लिया तथा लंका की ओर लेकर चल दिया। सुग्रीव के पकड़े जाने पर हनुमान् जी को चिन्ता हुई। उन्होंने विचार किया कि अब मैं पर्वताकार विशाल रूप धारण कर इस राक्षस को नष्ट कर दूँ ? किन्तु थोड़ी देर में सुग्रीव को धीरे-धीरे चेत आ गया और उन्होंने सोचा कि मैं कैसे बदला लूँ? सुग्रीव ने कुम्भकर्ण के दोनों कान नोच लिये, नाक काट ली और पसलियाँ फाड़ डालीं। कुम्भकर्ण को बड़ा रोष हुआ। वह सुग्रीव को पृथ्वी पर रगड़ने लगा। इस बीच सुग्रीव आकाश में उछले और श्रीराम के पास आ गये। सुग्रीव के निकल भागने पर कुम्भकर्ण फिर युद्ध के लिए लौट आया। वानरों के संहार को देखकर लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण पर अनेक वाण चलाये जिनसे उसे पीड़ा भी हुई। फिर अवहेलना के भाव से कुम्भकर्ण बोला– लक्ष्मण! आज आपने अपने पराक्रम से मुझे संतुष्ट कर दिया। अब मैं आपकी आज्ञा लेकर श्रीराम के पास जाना चाहता हूँ। लक्ष्मण ने कहा– सचमुच तुम पराक्रमी हो; ये श्रीराम सामने खड़े हैं। कुम्भकर्ण ने श्रीराम पर धावा बोल दिया और राम के वाणों से विद्ध होकर चारों ओर वानरों को मारने लगा। श्रीराम पर उसने अनेक आक्रमण किये। उनके वाण से उसकी गदा भी छूट गयी। वह हाथ, मुक्कों, पर्वतों से प्रहार करता रहा। श्रीराम ने उसे ललकारा और वायव्यास्त्र से कुम्भकर्ण की दाहिनी बाँह काट डाली तथा ऐन्द्रास्त्र से दूसरी बाँह भी काट गिरायी। कुम्भकर्ण आर्तनाद करता हुआ श्रीराम पर टूट पड़ा। फिर श्रीराम ने उसके दोनों पैर उड़ा दिये। तब भी कुम्भकर्ण मुँह फैलाकर राम को ग्रसने के लिए टूट पड़ा। श्रीराम ने वाणों से उसका मुँह भर दिया और एक भयंकर तीखा वाण लेकर मस्तक को धड़ से अलग कर दिया।

कटा हुआ मस्तक लंका में जाकर गिरा और धड़ समुद्र में जाकर गिर पड़ा। वानर-सेना में चारों ओर हर्ष की ध्वनि उठने लगी।

कुम्भकर्ण की मृत्यु का समाचार पाकर रावण शोक से मूर्च्छित हो गया और पृथ्वी पर गिर पड़ा। अनेक प्रकार से विलाप करते हुए कहने लगा—अब मेरा जीने का मन नहीं है। मैंने धर्मपरायण विभीषण की बात नहीं मानी, उसी का परिणाम मुझे भोगना पड़ रहा है।
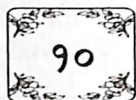
रावण-पुत्रों देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय और अन्य राक्षसों का भी विनाश; इन्द्रजीत द्वारा ब्रह्मास्त्र-प्रयोग; राम-लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करने हेतु हनुमान् द्वारा दिव्य ओषिधियों का पर्वत लाया जाना; इन्द्रजीत-वध।

रावण जब शोक से पीड़ित होकर विलाप करने लगा तो त्रिशिरा ने कहा- आपके समान श्रेष्ठ पुरुष विलाप नहीं करते। आप अकेले ही तीनों लोकों से लोहा लेने में समर्थ हैं। आपके पास तो ब्रह्मा जी की दी हुई शक्ति, कवच, धनुष, वाण तथा एक हजार गधों वाला रथ है। आप यहीं रहें, मैं युद्ध के लिए जाऊंगा। यह सुनकर रावण को संतोष हुआ। उसके पुत्र देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय इत्यादि भी युद्ध के लिए तैयार हो गये। उसके भाई भी पुत्रों के साथ आये' युद्धभूमि में आते ही भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। नरान्तक ने बड़ा पराक्रम दिखाया। नरान्तक और अंगद का घोर संग्राम होने लगा। अन्ततः अंगद के प्रहार से वह राक्षस मारा गया।

तत्पश्चात् सभी प्रमुख राक्षसों ने एक साथ अंगद पर प्रहार प्रारम्भ किया। अंगद को घिरा देखकर हनुमान् और नील सहायता के लिए आ गये। हनुमान् ने देवान्तक का वध कर दिया। इससे त्रिशिरा बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने नील पर वाणों की वर्षा आरम्भ कर दी तथा महोदर ने भी नील पर आक्रमण करके उसे मूर्च्छित कर दिया। परन्तु चेतना आते ही नील ने एक वृक्ष महोदर के मस्तक पर दे मारा; वह प्राणशून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। हनुमान् और त्रिशिरा का युद्ध होने लगा। हनुमान् जी ने त्रिशिरा के तीनों मस्तकों को तलवार से काट डाला और राक्षस चारों दिशाओं की ओर भाग चले। परन्तु महापार्श्व की लड़ाई ऋषभ से होने लगी और वह भी ऋषभ के हाथों प्राण खो बैठा।

अतिकाय ने जब अपने भाइयों तथा चाचा इत्यादि का संहार देखा तो वह क्रुद्ध होकर वानरों पर भीषण आक्रमण करने लगा। उसे वानर दूसरा कुम्भकर्ण समझकर भयभीत होकर श्रीराम के पास गये। श्रीराम ने विभीषण से उसका परिचय पूछा तो उन्होंने बताया कि यह रावण के ही समान पराक्रमी है और इसे भी ब्रह्मा का वरदान है। इतने में अतिकाय राम के सामने आकर युद्ध के लिए ललकारने लगा। यह सुनकर लक्ष्मण को क्रोध आया तथा वे

धनुष लेकर उससे युद्ध करने लगे। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र से संयुक्त वाण चलाया जिससे अतिकाय का मस्तक धड़ से अलग हो गया।

अतिकाय की मृत्यु से रावण बहुत व्यथित हुआ। उसने सोचा कि राम बड़े बलवान् हैं। राक्षसों को आदेश दिया कि सब द्वार बन्द रक्खे जायें तथा सीता पर पूरा पहरा रक्खा जाय।

रावण को दीन हुआ देखकर इन्द्रजीत ने कहा– मैं जब तक जीवित हूँ, आप चिन्ता न करें। मैं आज ही राम-लक्ष्मण को सदा के लिए नष्ट करता हूँ। ऐसा कहकर रावण की आज्ञा लेकर वह युद्ध के मैदान में गया। इन्द्रजीत ने ब्रह्मास्त्र-मन्त्र से अपने धनुष, रथ आदि सब वस्तुओं को अभिमन्त्रित किया। ब्रह्मास्त्र के आवाहन से सभी प्राणी भयभीत हो गये। उसने अपने सायकों द्वारा वानरों को मथ डाला और आकाश में अदृश्य रहकर भयानक वाणों से मारने लगा। हनुमान्, सुग्रीव, अंगद आदि सभी वानर घायल हो गये। उस समय श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि इन्द्रजीत अदृश्य रहकर अस्त्रों का प्रयोग कर रहा है, ऐसी दशा में उसे हम लोग किस प्रकार मार सकते हैं ? यह ब्रह्मास्त्र है, बिना घबराये इसके प्रहार सहन करते रहो। हमारे सभी प्रधान शूरवीर धराशायी हो गये हैं। जब हम दोनों युद्ध से निवृत्त हो अचेत गिर जायेंगे तो यह अवश्य लंकापुरी लौट जायेगा। तदनन्तर श्रीराम व लक्ष्मण घायल होकर गिर गये तथा उन्हें मूर्च्छित करके मेघनाद ने हर्ष के साथ लंकापुरी लौटकर रावण को विजय का समाचार सुनाया।

युद्ध के मुहाने पर श्रीराम-लक्ष्मण को निश्चेष्ट देखकर उनकी सेना में सब चिंतित हो गये। विभीषण ने आश्वासन दिया कि ये केवल मूर्च्छित हैं। इन्होंने केवल ब्रह्मास्त्र का समादर किया है। विभीषण सहित हनुमान् जी उस समय ब्रह्मा के पुत्र जाम्बवान् को खोजने लगे। वे उन्हें वाणों से विद्ध अवस्था में मिले। उसी अवस्था में उन्होंने हनुमान् को स्मरण किया तथा हनुमान् के मिलने पर कहा कि सबकी रक्षा केवल तुम्हारे ऊपर है। तुम्हें इसी समय हिमालय पर जाना चाहिये। वहाँ ऋषभ तथा कैलास शिखर पर अत्यन्त दीप्तिमान् ओषधियाँ दिखाई देंगी। उनका नाम है मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी। उन्हें लेकर शीघ्र लौटो। हनुमान् जी सहस्रों योजन लांघकर पर्वत पर पहुँचे। यह जानकर कि कोई हमें लेने आया है, महौषधियाँ तत्काल अदृश्य हो गयीं। वहाँ जब ओषधियाँ नहीं मिलीं तो हनुमान् ने कुपित होकर पर्वत-शिखर को ही उखाड़ लिया और उसे लेकर वेग से लंका में त्रिकूट पर्वत पर आ गये। श्रीराम-लक्ष्मण उन महौषधियों की सुगन्ध लेकर स्वस्थ हो गये। तत्पश्चात् हनुमान् जी ने उस पर्वत को वेगपूर्वक पुनः हिमालय पर ही पहुँचा दिया।

सुग्रीव ने हनुमान् से कहा कि सभी प्रमुख राक्षसों के मरने से लंका की रक्षा का अब कोई प्रबन्ध नहीं है, इसलिए रात्रि में आक्रमण करो। फिर तो वानर लंका में घुस गये और आग लगाने तथा संहार करने लगे। यह देखकर रावण ने भी अपनी सेना भेजी और रात्रि में ही प्रचण्ड युद्ध होने लगा। उस विनाशकारक घोर युद्ध में अंगद ने कम्पन को मार डाला।

उसके बाद उसी के हाथों प्रजंघ मारा गया। द्विविद ने शोणिताक्ष को और दूसरे वानर-सेनापति मैन्द ने यूपाक्ष को मार गिराया। कुम्भ के साथ सुग्रीव का युद्ध होने लगा और सुग्रीव के भयंकर मुक्के की मार से वह धराशायी हो गया। कुम्भ का भाई निकुम्भ अपने भाई की मृत्यु से बहुत कुपित हुआ और हनुमान् जी से उसका युद्ध होने लगा तथा हनुमान् जी की मार से निकुम्भ ने प्राण त्याग दिये। रावण की आज्ञा से खर का पुत्र मकराक्ष लड़ने के लिए आया। राम ने वाणों की वर्षा करके उसे आगे बढ़ने से रोका, परन्तु वह भयंकर युद्ध करने लगा। अन्त में धनुष पर आग्नेयास्त्र का संधान करके श्रीराम ने चलाया, तब उस राक्षस का हृदय विदीर्ण हो गया और वह मर गया।

रावण ने अब फिर से इन्द्रजीत को युद्ध में जाने की आज्ञा दी। इन्द्रजीत ने यज्ञभूमि में जाकर अग्नि की स्थापना करके हवन किया तथा सभी को तृप्त करने के पश्चात् अन्तर्धान होने की शक्ति से सम्पन्न होकर युद्धस्थल में अपनी वाण-वर्षा से समस्त दिशाओं को भर दिया। अदृश्य रहकर इन्द्रजीत ने नाराच नामक वाणों की वर्षा करके श्रीराम के अंगों में घाव कर दिये। तब लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने श्रीराम से कहा- अब मैं समस्त राक्षसों के संहार के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करूंगा। श्रीराम ने कहा- एक के कारण सभी राक्षसों का वध उचित नहीं है। आओ, हम लोग महावेगशाली अस्त्रों का प्रयोग करें। वह अन्तरिक्ष में हो या रसातल में, मेरे इस अस्त्र से दग्ध होकर पृथ्वीतल पर आ गिरेगा। श्रीराम के मनोभाव को समझकर इन्द्रजीत लंकापुरी लौट गया, परन्तु फिर लौट पड़ा तथा जहाँ श्रीराम-लक्ष्मण थे वहाँ माया प्रकट की। उसने मायामयी सीता का निर्माण किया और रथ पर बैठकर उसका वध करने की तैयारी का भाव प्रकट किया। हनुमान् आदि सीता के कारण उस पर आक्रमण करने से घबरा रहे थे। इन्द्रजीत ने तलवार म्यान से निकालकर मायानिर्मित सीता के केश पकड़ कर उसे घसीटा। वह 'हा राम! हा राम!' कहकर चिल्ला रही थी। हनुमान् जी को बहुत दुःख हुआ। वे इन्द्रजीत से बोले कि तू बड़ा निष्ठुर है; सीता को मारकर तू जीवित नहीं रह सकेगा। फिर हनुमान् जी ने आक्रमण किया, परन्तु इन्द्रजीत ने सहस्रों वाण वर्षाकर उन्हें रोक दिया और बोला–सुग्रीव, राम और तुम सबके देखते सीता को मार डालता हूँ, इससे तुम सबका सारा परिश्रम निष्फल हो जायेगा। इतना कहकर उसने सीता को घातक हथियार से मार डाला और घोर नाद (गर्जन) किया।

इन्द्रजीत के उस भयंकर नाद को सुनकर वानर भागने लगे, परन्तु हनुमान् ने इस पर उनको फटकारा और शैलशिखर तथा वृक्ष इन्द्रजीत के रथ पर फेंके। उसने रथ हटा लिया और प्रहार व्यर्थ गया। फिर बड़ा तीव्र युद्ध हुआ तथा शत्रु का वेग रोककर हनुमान् जी ने कहा- बन्धुओ! अब लौट चलो, अब युद्ध का क्या लाभ? सीता तो मारी गयी! यह समाचार श्रीराम को दें; तभी आगे क्या होगा, उसका निश्चय किया जायेगा।

हनुमान् जी को श्रीराम के पास जाते देख इन्द्रजीत होम करने की इच्छा से निकुम्भिला

देवी के मन्दिर में गया। वह यज्ञ के विधान का ज्ञाता था। उसने समस्त राक्षसों के अभ्युदय के लिए विधिपूर्वक हवन करना आरम्भ किया।

हनुमान् जी श्रीराम के निकट आये और दुःखी होकर बोले–प्रभो! इन्द्रजीत ने हमारे देखते-देखते रोती हुई सीता को मार डाला। हनुमान् की बात सुनकर श्रीराम शोक से मूर्च्छित हो गये। यह अवस्था देखकर लक्ष्मण को बहुत दुःख हुआ। वे श्रीराम को दोनों भुजाओं में भरकर बैठ गये और बोले– आर्य! आप सदा शुभ मार्ग पर स्थिर रहने वाले हैं। तथापि धर्म आपको अनर्थों से बचा नहीं पाता, इसलिए वह निरर्थक है। इस सन्दर्भ में लक्ष्मण ने धर्म की निरर्थकता पर अनेक बातें कहीं और कहा कि वीर रघुनन्दन! आज इन्द्रजीत ने हम लोगों को जो महान् दुःख दिया है, उसे मैं अपने पराक्रम से दूर करूंगा। अतः चिन्ता छोड़कर उठिये। यह मैंने आपसे जो कुछ कहा है, वह सब आपका ध्यान शोक की ओर से हटाकर पुरुषार्थ की ओर आकृष्ट करने के लिए कहा है।

लक्ष्मण जी श्रीराम को आश्वासन दे रहे थे तो उसी समय विभीषण आये। वहाँ की अवस्था देखकर पूछा– क्या बात है? हनुमान् ने कहा– इन्द्रजीत ने सीता को मार डाला, यह सुनकर श्रीराम मूर्च्छित हो गये थे। यह सुनकर विभीषण ने कहा– इसको मैं असम्भव मानता हूँ। रावण का सीता के प्रति भाव क्या है, यह मैं जानता हूँ। वह उनका वध कदापि नहीं करेगा। इन्द्रजीत वानरों को मोह में डालकर चला गया। जिसका वध किया, वह मायामयी जानकी थी। इन्द्रजीत इस समय निकुम्भिला-मन्दिर में होम कर रहा है। जब वह वहाँ से निकलेगा तो उसको पराजित करना कठिन होगा। इसलिए जब तक उसका होम-कार्य समाप्त नहीं होता, हम लोग सेना सहित निकुम्भिला-मन्दिर चलें। आप लक्ष्मण को आज्ञा दीजिये कि वे चलकर उसका होम-कार्य सम्पन्न न होने दें।

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि सब सेना लेकर हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान् इत्यादि के साथ जाकर इन्द्रजीत का वध करो। विभीषण तुम्हारे साथ रहेंगे। यह सुनकर लक्ष्मण ने अपना श्रेष्ठ धनुष लिया और इन्द्रजीत के वध का प्रण करके निकुम्भिला-मन्दिर की ओर प्रस्थान किया। विभीषण ने लक्ष्मण से कहा– राक्षसों की सेना पर वानर आक्रमण कर दें, इनके व्यूह का भेदन होने पर इन्द्रजीत भी दिखाई देगा। यह सुनकर लक्ष्मण ने वाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। वानरों और रीछों से जूझते हुए राक्षसों को महान् भय होने लगा।

इन्द्रजीत ने जब अपनी सेना को पीड़ित होते देखा तो वह अनुष्ठान समाप्त होने के पूर्व ही युद्ध के लिए उठ खड़ा हुआ और लक्ष्मण के साथ युद्ध करने लगा। हनुमान् बड़े वेग से राक्षसों का संहार करने लगे। यह देखकर इन्द्रजीत वहाँ आया जहाँ हनुमान् जी थे। हनुमान् जी ने ललकारा कि यदि वीर है तो मेरे साथ मल्लयुद्ध कर। 'इन्द्रजीत ने हनुमान् जी का वध करने के लिए धनुष पर वाण चढ़ाया। तभी विभीषण ने लक्ष्मण को बताया कि यह हनुमान् का वध करना चाहता है, आप इसे मार डालिये।

लक्ष्मण वेग से आगे बढ़े। विभीषण ने इन्द्रजीत के कर्मानुष्ठान का स्थान दिखाया और कहा– यहाँ आकर यह भूतों की बलि देता है, फिर अदृश्य होकर युद्ध करता है। इन्द्रजीत के सामने आते ही लक्ष्मण ने उसे युद्ध के लिए ललकारा। उसने विभीषण को देखकर कहा– राक्षस! यहीं तुम्हारा जन्म हुआ; तुम पिता के सगे भाई, मेरे चाचा हो, फिर पुत्र से द्रोह क्यों करते हो ? अरे दुर्मते! स्वजनों को त्यागकर तुम दूसरों की चाकरी कर रहे हो! अनेक प्रकार की कठोर बातें उसने कहीं। तब विभीषण ने कहा– राक्षस! बकवाद क्यों करता है, तुझे क्या मेरे स्वभाव का पता नहीं है? क्रूरता और अधर्म में मैं नहीं लिप्त हो सकता। तुम लोग जिस प्रकार के नीच कर्म में लिप्त हो, उसे देखकर मैंने तुम लोगों का त्याग किया है। तूने मुझसे जो कठोर बात कही है, उसी का फल है कि तुझ पर घोर संकट आया है। लक्ष्मण के वाणों का लक्ष्य बनकर आज तू जीवित नहीं लौट सकेगा।

इन्द्रजीत कुपित होकर लक्ष्मण को चुनौती देने लगा। लक्ष्मण ने भी उसे उसी प्रकार फटकारा। इन्द्रजीत ने लक्ष्मण को घायल कर दिया तथा कहा कि आज तेरे प्राण ही समाप्त होंगे। लक्ष्मण ने भी पाँच नाराच (वाण) मारे। उनसे वह आहत हुआ तथा उसने फिर लक्ष्मण को घायल किया। दोनों में बड़ा भीषण युद्ध होने लगा। लक्ष्मण के प्रहारों से इन्द्रजीत कुछ देर तो उदास हो गया, फिर कुपित होकर उस ने हनुमान् तथा विभीषण को भी क्षत-विक्षत कर दिया। लक्ष्मण ने इन्द्रजीत के पराक्रम की परवाह नहीं की तथा भयानक वाण छोड़े; उनसे उसका कवच टूट गया और सारे अंग घावों से भर गये। इस प्रकार युद्ध करते-करते दोनों का बहुत समय व्यतीत हो गया। लक्ष्मण का हित-सम्पादन करने के लिए विभीषण आकर खड़े हो गये। विभीषण स्वयं राक्षसों पर वाण-वर्षा करने लगे तथा वानरों की ललकारा कि अब यही बचा है, तुम लोग पराक्रम दिखाओ। इसके मरने पर रावण के अतिरिक्त राक्षसों की समस्त सेना नष्ट हो जायेगी। तदनन्तर वानर चारों ओर राक्षसों को मारने लगे।

लक्ष्मण ने चार वाण मारकर इन्द्रजीत के चारों अश्वों को बाँध दिया, सारथि को भी मार डाला। इस दशा में इन्द्रजीत को स्वयं सारथि का काम करना पड़ता था। इस बीच लक्ष्मण उसे वाणवर्षा करके पर्याप्त घायल कर देते। इन्द्रजीत का उत्साह नष्ट हो गया; वह विषाद में डूब गया। हनुमान् आदि ने उसका रथ भी तोड़ दिया। फिर इन्द्रजीत रथ से कूदकर लक्ष्मण की ओर बढ़ा। दोनों एक-दूसरे पर प्रहा [illegible] गे। इस बीच राक्षसों को वानरों का वेग रोकने के लिए कहकर वह चकमा देकर लंकापुरी गया और दूसरा रथ लेकर आ गया तथा रणभूमि में वानर-यूथपतियों को गिराना आरम्भ किया। लक्ष्मण ने हाथ की फुर्ती दिखाते हुए राक्षस के धनुष को काट दिया। वह दूसरा धनुष लाया, तब उसे भी काट दिया और इन्द्रजीत की छाती में गहरी चोट पहुँचा दी। उसके नये रथ के सारथि को भी मार दिया, परन्तु उसके अश्व (घोड़े) बिना सारथि के भी काम करते रहे। तब अश्वों को भी लक्ष्मण ने घायल किया। सारथि पहले ही मर गया था और घोड़े भी मर गये तो वह रथ से कूदा और अपने चाचा पर शक्ति का प्रहार किया, परन्तु लक्ष्मण ने उस शक्ति को बीच में ही

काट डाला। तत्पश्चात् विभीषण ने इन्द्रजीत पर कुपित होकर वाण मारे। इससे वह बड़ा क्रोधित हुआ और यमराज का दिया वाण हाथ में उठाया। तभी उसी प्रकार का वाण लेकर लक्ष्मण ने इन्द्रजीत का वाण निष्प्रभ कर दिया। इन्द्रजीत ने रौद्रास्त्र उठाकर लक्ष्मण का वारुणास्त्र शान्त किया। इन्द्रजीत ने आग्नेयास्त्र का संधान किया, परन्तु वीर लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र के प्रयोग से उसे शान्त कर दिया। अन्त में लक्ष्मण ने एक उत्तम वाण, जिसका स्पर्श आग के समान जलाने वाला था, अपने धनुष पर चढ़ाया। उसको ऐन्द्रास्त्र से संयुक्त करके इन्द्रजीत पर छोड़ दिया। उस ऐन्द्रास्त्र ने इन्द्रजीत के मस्तक को धड़ से काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया। उसके मारे जाने पर समस्त वानर विभीषण सहित हर्ष से भर गये तथा सिंहनाद करने लगे। राक्षस भागने लगे।

समस्त वानरों के साथ लक्ष्मण ने श्रीराम के पास जाकर प्रणाम किया और बताया कि इन्द्रजीत के वध का भयंकर कार्य सम्पन्न हो गया। श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए तथा कहा कि यह निश्चित समझ लो कि हम लोग युद्ध में जीत गये। तदनन्तर सुषेण ने लक्ष्मण की नाक में एक बहुत उत्तम ओषधि लगा दी जिसके सूँघते ही लक्ष्मण के शरीर से वाण निकल गये, घाव भर गये तथा सारी पीड़ा दूर हो गयी।

युद्ध में इन्द्रजीत के वध का समाचार सुनकर रावण मूर्च्छित हो गया। चेतना आने पर दीनतापूर्वक विलाप करने लगा तथा इस प्रकार आर्तभाव से विलाप करते हुए ही उसे महान् क्रोध का आवेश हुआ। उसने सीता को मार डालना ही अच्छा समझा और तलवार लेकर अशोक वाटिका में सीता की ओर दौड़ा। सीता उसका यह रूप देखकर व्यथा से भर गयीं तथा अनेक संकल्प-विकल्प उनके मन के अन्दर उत्पन्न होने लगे। रावण के सुपार्श्व नामक बुद्धिमान् मंत्री ने रावण से कहा– तुम कुबेर के भाई हो, धर्म को तिलांजलि देकर विदेहकुमारी के वध की इच्छा कैसे कर रहे हो? तुम वेदविद्या का अध्ययन पूरा करके गुरुकुल से स्नातक होकर निकले थे, तो भी आज अपने हाथ से एक स्त्री का वध करना तुम ठीक समझ रहे हो? तुम युद्ध में हम लोगों के साथ चलकर राम पर ही अपना क्रोध उतारो। उनका वध करके सीता को भी प्राप्त कर लोगे। मित्र की बात सुनकर रावण महल में लौट आया और राजसभा में प्रवेश किया।

रावण ने अपनी सेना के (बचे-खुचे) प्रधान-प्रधान योद्धाओं को हाथ जोड़कर युद्ध में राम को मार डालने के लिए कहा। फिर बड़े वेग से राक्षस युद्धक्षेत्र में पहुँच कर वानरों का संहार करने लगे। उस समय श्रीराम ने राक्षसों की सेना में प्रवेश किया और वाणों की वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी। उनका यह पौरुष अद्वितीय था। राक्षस राम को देख भी नहीं पाते कि उनका संहार हो जाता। राक्षस घबरा उठे और लंका में जा, राक्षसियों से मिलकर, बहुत दुःखी एवं चिन्तामग्न हो गये। राक्षसियाँ झुण्ड की झुण्ड एकत्र होकर विलाप करने लगीं। सब शूर्पणखा को कोसने लगीं कि उसके कारण ही यह विनाश आया। वे विषादग्रस्त होकर क्रन्दन करने लगीं।

राम-रावण युद्ध और रावण का वध; विभीषण का राज्याभिषेक।

राक्षसियों के क्रन्दन से रावण को बहुत क्रोध हुआ तथा उसने तुरन्त राम को मारने के लिए युद्ध में जाने की तैयारी की। उसके साथ महापार्श्व, महोदर तथा विरूपाक्ष अलग-अलग रथों पर तैयार होकर गये। रावण के रथ का घोष सुनकर वानर भी तैयार हो गये तथा तुमुल युद्ध छिड़ गया। रावण भयंकर प्रलय-सा मचाने लगा।

रावण की सेना को रोकने के लिए सुग्रीव व सुषेण आगे बढ़े। विरूपाक्ष ने सुग्रीव पर भयानक आक्रमण किया तथा दोनों में विकट द्वन्द्व-युद्ध होने लगा। सुग्रीव ने उसके ललाट पर क्रोधपूर्वक प्रहार किया, तब वह पृथ्वी पर गिर गया तथा उसका प्राणान्त हो गया।

विरूपाक्ष की मृत्यु तथा राक्षसों के विनाश को देखकर रावण की आज्ञा से महोदर शत्रु-सेना में घुस गया और भयंकर विनाश करने लगा। तब सुग्रीव ने उसका सामना किया। दोनों में विकराल युद्ध हुआ और अन्ततः सुग्रीव ने महोदर का मस्तक अपने खंग से काट लिया। महोदर के मारे जाने पर महापार्श्व बड़ा क्रोध करता हुआ आगे बढ़ा तथा उसने अंगद पर घातक आक्रमण किया, परन्तु अंगद ने उसके प्रहार को झेल लिया तथा अन्त में उसे ऐसा घूँसा मारा कि उसका हृदय फट गया और वह मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

अपने मन्त्रियों के मारे जाने से रावण को बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा कि राम-लक्ष्मण को मारकर ही यह दुःख दूर किया जा सकता है। यह सोचकर वह बड़ी तेजी के साथ श्रीराम की ओर बढ़ा। रावण ने महाघोर तामस अस्त्र को प्रकट करके उससे वानरों को भस्म करना आरम्भ किया। यह देखकर श्रीराम युद्ध के लिए उद्यत हुए। प्रथम लक्ष्मण ने वाणों की वर्षा आरम्भ की। रावण ने उनको अपने सायकों द्वारा आकाश में ही काट डाला तथा लक्ष्मण को लांघकर श्रीराम के पास जा पहुँचा। दोनों एक-दूसरे पर पैने वाणों से आक्रमण करने लगे। श्रीराम ने रौद्रास्त्र का प्रयोग किया, परन्तु रावण के अभेद्य कवच के कारण वह प्रभाव नहीं कर सका। रावण ने आसुर नामक अस्त्र प्रकट किया, किन्तु श्रीराम ने आग्नेयास्त्र के प्रयोग से उसे प्रभावहीन कर दिया।

रावण ने मय दानव द्वारा बनाया गया भयंकर अस्त्र छोड़ा। श्रीराम ने गान्धर्व नामक अस्त्र से उसे शान्त कर दिया। फिर रावण ने सूर्यास्त्र का प्रयोग किया, परन्तु राम ने अपने वाण-समूहों द्वारा उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। लक्ष्मण ने रावण के सारथि का मस्तक काट डाला तथा विभीषण ने गदा से अश्वों को मार डाला। तब रावण ने विभीषण को मार डालने के लिए शक्ति चलायी। लक्ष्मण ने उसे बीच में ही काट डाला। रावण ने फिर विभीषण को मारने के लिए अमोध शक्ति चलायी। विभीषण के प्राण संकट में देखकर लक्ष्मण विभीषण

को पीछे करके शक्ति के सामने खड़े हो गये। यह देखकर रावण ने एक दूसरी भयंकर शक्ति लक्ष्मण पर चलायी जो लक्ष्मण को लग गयी और जिसने उनका हृदय विदीर्ण कर दिया। वे पृथ्वी पर गिर पड़े। श्रीराम चिन्ता में डूब गये, फिर उन्होंने बल लगाकर वह शक्ति लक्ष्मण के शरीर से निकाली और कहा– तुम लोग लक्ष्मण को घेर कर खड़े रहो, मैं इस पापात्मा का वध करता हूँ। ऐसा कहकर श्रीराम रावण को तीखे वाणों द्वारा घायल करने लगे। रावण श्रीराम के वाण-समूहों की वर्षा से आहत होकर वहाँ से भाग गया।

श्रीराम लक्ष्मण को आहत तथा छटपटाते देखकर शोक से व्यथित हो गये और अनेक विषादयुक्त बातें कहने लगे। उस समय सुषेण ने आश्वासन दिया तथा हनुमान् से महोदय गिरि से ओषधि लाने को कहा। हनुमान् महोदय गिरि पर गये तथा ओषधि न पहचानने के कारण पर्वत ही (महोदय गिरि) उठाकर लाये। सुषेण ने ओषधि बनाकर लक्ष्मण की नाक में सुँघायी। वे तुरन्त ही नीरोग हो गये। श्रीराम ने लक्ष्मण को गले से लगाया और कहा– तुम्हारे बिना मुझे जीवन की रक्षा, सीता अथवा विजय से कोई प्रयोजन नहीं है। यह सुनकर लक्ष्मण ने खिन्न वाणी में कहा– आप सत्यपराक्रमी हैं, पहले रावण का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हुए विभीषण को राज्य पर बैठाइये। किसी लघु और निर्बल मनुष्य की भाँति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये।

इतने में रावण दूसरे रथ पर चढ़कर आ गया और श्रीराम के ऊपर आक्रमण प्रारम्भ किया। दोनों में युद्ध होने लगा। श्रीराम भूमि पर खड़े तथा रावण रथ पर बैठा युद्ध कर रहा था। इस अवसर पर इन्द्र ने मातलि को बुलाकर कहा कि रथ लेकर राम के पास जाओ। मातलि ने श्रीराम को रथ पर बैठाया तथा इन्द्र का विशाल धनुष और कवच भी दिया। फिर तो अद्‌भुत युद्ध होने लगा। रावण ने राक्षसास्त्र का प्रयोग किया, तब राम ने गारुड़ास्त्र को प्रकट किया। फिर रावण ने इन्द्र के सारथि, रथ, तथा अश्वों को घायल कर दिया। श्रीराम भी रावण के वाणों से आहत होने के कारण अपने सायकों का संधान ठीक से नहीं कर पा रहे थे। उस समय श्रीराम कुपित हुए तथा रावण भी भयभीत हो उठा, परन्तु उसने भयानक शूल उठाया और चला दिया। श्रीराम के सायक जब उसके वेग को नहीं रोक सके तो उन्होंने देवेन्द्र द्वारा सम्मानित शक्ति को हाथ में लिया और उसके चलने पर रावण का शूल नष्ट हो गया। उसका सारा शरीर लहूलुहान हो गया। फिर उसने बड़ा भारी क्रोध प्रकट किया।

रावण ने राघवेन्द्र की छाती को लक्ष्य कर सहस्रों वाण मारे। समरांगण में वाणों से अन्धकार छा गया। श्रीराम ने रावण से हँसते हुए कठोर वाणी में कहा– नीच राक्षस! तू जनस्थान से अनूजान में असहाय स्त्री को हर लाया; तू बलवान् या पराक्रमी तो कदापि नहीं है। इस प्रकार अनेक कठोर बातें कहीं और रावण पर वाणों की वर्षा करने लगे। रावण का हृदय व्याकुल एवं विभ्रान्त हो गया। उसकी इस अवस्था को देखकर रावण का सारथि उसके रथ को दूर हटा ले गया।

रावण काल की शक्ति से प्रेरित हो रहा था। वह अपने सारथि को अनेक प्रकार से फटकारने लगा और कहा कि रथ को हटा कर तूने मेरे चिरकाल से उपार्जित यश, पराक्रम, तेज और विश्वास पर पानी फेर दिया। सारथि ने विनय से कहा– महाराज! मैं डरा नहीं हूँ। मैं सदा आपका हित चाहता हूँ। आपका हित सोचकर ही मैंने यह काम किया। फिर उसने वे अन्य कारण भी बताये जिससे उसने रथ हटा लिया था। सारथि के कथन से संतुष्ट होकर रावण ने कहा कि रथ राम के सामने ले चलो, राम को बिना मारे मैं घर नहीं लौटूंगा।

श्रीराम युद्ध से थककर रणभूमि में खड़े थे, इतने में रावण उपस्थित हो गया। यह देख अगस्त्य मुनि, जो युद्ध देखने आये थे, राम से बोले– तुम यह गोपनीय स्तोत्र सुनो, इसके जप से तुम विजय पा जाओगे। इसका नाम 'आदित्यहृदय' है। सूर्य जो संसार के स्वामी हैं, तुम इनका (रश्मिमते नमः, समुद्यते नमः, देवासुरनमस्कृताय नमः, विवस्वते नमः, भास्कराय नमः, भुवनेश्वराय नमः) इन नाम-मंत्रों के द्वारा पूजन करो। समस्त देव इन्हीं के स्वरूप हैं। ये ही ऋतुओं को प्रकट करने वाले प्रभा के पुञ्ज हैं। इन के अनेक नाम हैं। इन मंत्रों का तीन बार जप करने से तुम विजय पाओगे और इसी समय रावण का वध कर सकोगे। फिर अगस्त्य मुनि चले गये। श्रीराम ने सूर्य का दर्शन करके सहर्ष जप किया।

फिर श्रीराम ने विशाल ध्वज से अलंकृत रावण के रथ को देखा। दोनों में द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ। उस समय राक्षस और वानर सेनाएं खड़ी रहीं। कोई किसी पर प्रहार नहीं कर रहा था। राम ने रावण के रथ की ध्वजा काट डाली। रावण ने राम के अश्वों (घोड़ों) को घायल करना आरम्भ किया। श्रीराम ने सैकड़ों-सहस्रों की संख्या में वाण छोड़े, परन्तु वाण से वाण टकरा कर पृथ्वी पर गिर जाते। रावण के पराक्रम को देखकर सभी चिन्ता में पड़ गये। तदनन्तर श्रीराम ने समान वाण का संधान किया और रावण का एक मस्तक काट डाला। उसी स्थान पर रावण का दूसरा नया सिर उत्पन्न हो गया। श्रीराम ने सौ सिर काट डाले, परन्तु मस्तकों का अन्त नहीं होता था। यह देखकर राम चिन्तित हो गये। फिर उन्होंने रावण की छाती पर वाणों की झड़ी लगा दी। यह महान् संग्राम सारी रात चलता रहा।

मातलि ने श्रीराम से कहा कि आप इसके वध के लिए ब्रह्मा जी के अस्त्र का प्रयोग कीजिये। इससे राम को उस अस्त्र का स्मरण आया। यह वही वाण था जो अगस्त्य मुनि ने राम को दिया था। श्रीराम ने उस उत्तम वाण को अपने धनुष पर रक्खा और संधान करके रावण पर चला दिया। वह वाण रावण की छाती पर जा लगा। वाण लगते ही रावण प्राण से हाथ धो बैठा और स्वामी के मरते ही सब राक्षस भाग गये। युद्ध में श्रीराम की विजय से सभी बहुत प्रसन्न हुए। श्रीराम की सबने विधिवत् पूजा की। आकाश में दुन्दुभि बजने लगी और पुष्पवर्षा करते हुए देवगणों और सिद्धों ने साधुवाद दिया।

अपने भाई रावण को मरकर रणभूमि में पड़ा देखकर विभीषण का हृदय शोक से व्याकुल हो गया और वे विलाप करने लगे। उस समय श्रीराम ने विभीषण से कहा– इसने

प्रचण्ड पराक्रम प्रकट किया; इसे मृत्यु से कोई भय नहीं था। आज रावण को जो गति प्राप्त हुई है, यह उत्तम गति है। क्षत्रिय-वृत्ति से रहने वाला यदि युद्ध में मारा गया तो वह शोक के योग्य नहीं है। अब आगे जो कुछ कार्य करना है, उस पर विचार करो। वैर भी जीवनकाल तक ही रहता है, तुम इसकी अन्त्येष्टि करो।

रावण के मारे जाने का समाचार पाकर राक्षसियाँ अन्तःपुर से क्रन्दन करती हुई निकल आयीं। सब अपने-अपने मरे पति को खोजने लगीं तथा अनेक प्रकार से विलाप करने लगीं। मन्दोदरी ने अनेक प्रकार से रावण का स्मरण करके विलाप किया। उस समय श्रीराम ने विभीषण से कहा कि इन स्त्रियों को धैर्य बँधाओ और भाई का दाह-संस्कार करो। विभीषण ने कहा कि रावण के कुकृत्यों को स्मरण करके मैं उसका दाह-संस्कार करना उचित नहीं समझता हूँ। यह सुनकर श्रीराम ने कहा– यह निशाचर भले ही अधर्मी और असत्यवादी रहा हो, परन्तु संग्राम में सदा ही तेजस्वी, बलवान् व शूरवीर रहा। वैर मरने तक ही रहता है। प्रयोजन हमारा सिद्ध हो गया। इस समय जैसे यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी है। इसलिए इसका दाह-संस्कार करो। तदनन्तर विभीषण ने विधि के अनुसार रावण का दाह-संस्कार किया। महल में चलने का विभीषण का आदेश सुनकर सारी स्त्रियाँ नगर में चली गयीं। श्रीराम ने अपने अस्त्र-शस्त्रों को त्याग कर शान्त भाव धारण किया।

सभी देव-गन्धर्वादि अपने विमानों से चले गये तथा मातलि को भी इन्द्र के रथ के साथ श्री राम ने विदा कर दिया, सुग्रीव का आलिंगन किया तथा लक्ष्मण से कहा कि तुम लंका जाकर विभीषण का राज्याभिषेक करो। लक्ष्मण ने प्रमुख वानरों के साथ सामग्री लेकर लंका में विभीषण का राज्याभिषेक सम्पन्न किया। तदनन्तर विभीषण राज्य पाकर श्रीराम के पास आये। तत्पश्चात् श्रीराम ने हनुमान् से कहा कि सीता से उसका कुशल-समाचार पूछो तथा हम सब का समाचार कहकर रावण मारा गया, यह बताओ।

देवगणों के साथ दशरथ का भी आगमन; मृत वानर पुनर्जीवित; सीता की अग्नि-परीक्षा; विभीषण द्वारा वानरों का सत्कार; श्रीराम, लक्षण और सीता जी का पुष्पक विमान से अयोध्या-प्रस्थान; भरत से भेंट; राम-राज्याभिषेक।

हनुमान् जी ने अशोक वाटिका में जाकर सीता जी को प्रणाम किया और कहा– विदेह-नन्दिनी! श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव सकुशल हैं तथा शत्रु मारा गया। वानरों के साथ विभीषण की सहायता से श्रीराम और लक्ष्मण ने रावण को युद्ध में मार दिया तथा विभीषण लंका के राजा बन गये। यह सुनकर हर्ष से अवाक् सीता कुछ देर तक कुछ बोल न सकीं तो हनुमान् ने पूछा– देवि! आप मौन क्यों हैं? कुछ बोल क्यों नहीं रहीं? सीता प्रसन्न हो आनन्द के आँसू बहाती हुई बोलीं– अपने स्वामी की विजय का यह प्रिय संवाद सुनकर मैं

अत्यधिक आनन्दविभोर हो कुछ बोल ही नहीं सक रही थी। वानर वीर! ऐसा प्रिय समाचार सुनने के बाद तुम्हारा अभिनन्दन करने के लिए मैं कोई पुरस्कार देना चाहती हूँ, परन्तु इस भूमण्डल में कोई ऐसी वस्तु मैं नहीं देखती जिसे तुम्हें देकर संतुष्ट हो सकूँ। हनुमान् जी सीता के सामने हाथ जोड़कर खड़े गये और कहा– देवि! आपका यह वचन सारगर्भित और स्नेहयुक्त है, अतः भाँति-भाँति की रत्नराशि और देवताओं के राज्य से भी बढ़कर है। मैं सब कुछ आपके वचन से ही पा गया। तदनन्तर हनुमान् जी हर्षपूर्वक बोले– देवि! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन समस्त राक्षसियों को, जो आपको बहुत डराती-धमकाती थीं, मार डालना चाहता हूँ। सीता ने उनसे कहा– कपिश्रेष्ठ! ये बेचारी राजा के आश्रय में रहने के कारण पराधीन थीं। तुम इन्हें मारने की बात न कहो। मेरे लिए दैव का ही ऐसा विधान था। वानर वीर! इस विषय में एक पुराना धर्मसम्मत श्लोक सुनो–

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः।।

श्रेष्ठ चरित्र वाले व्यक्ति दूसरों का अहित करने वाले पापियों के पापकर्म को नहीं अपनाते (बदले में उनके साथ स्वयं भी पापपूर्ण बर्ताव नहीं करते)। अतः अपनी प्रतिज्ञा एवं सदाचार की ही रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि साधु पुरुष अपने उत्तम चरित्र से ही विभूषित होते हैं– सदाचार ही उनका आभूषण है। यह सुनकर हनुमान् जी ने कहा– देवि! आप अपनी ओर से कोई संदेश दें, जो मैं श्रीराम को बताऊँ। सीता जी ने कहा– मैं अपने स्वामी के दर्शन करना चाहती हूँ। यह सुनकर हनुमान् जी ने श्रीराम के पास सीता की बात क्रमशः बतायी।

हनुमान् जी की बात सुनकर श्रीराम ने दीर्घ निःश्वास लेकर पृथ्वी की ओर देखा और विभीषण से कहा– तुम सीता को स्नान करवाकर दिव्य अंगराग तथा दिव्य आभूषणों से विभूषित करवाकर शीघ्र मेरे पास ले आओ। विभीषण ने जाकर सीता जी को प्रणाम करके उनसे स्नान करने और आभूषणादि से सज्जित होकर श्रीराम के पास चलने के लिए कहा तो सीता ने कहा कि मैं बिना स्नान किये ही अभी पतिदेव के दर्शन करना चाहती हूँ। किन्तु विभीषण के ऐसा कहने पर कि यह आपके पतिदेव की आज्ञा है, उन्होंने शिरोधार्य किया। सीता देवी को शिविका (पालकी) में बैठाकर विभीषण श्रीराम के पास ले चले और कहा कि सीता जी आ गयीं। श्रीराम ने कहा कि जानकी शिविका छोड़कर पैदल ही मेरे पास आयें और ये सभी वानर उनका दर्शन करें। आगे-आगे सीता थीं और पीछे विभीषण। इस प्रकार वे अपने पतिदेव के सामने उपस्थित हुईं तथा श्रीराम को देखकर उनका मुख प्रसन्न हो गया।

सीता को देखकर श्रीराम ने कहा– भद्रे! (कल्याणी!) शत्रु को पराजित करके मैंने तुम्हें छुड़ा लिया। जो पुरुषार्थ द्वारा किया जा सकता था, वह मैंने किया है। हमारा अपमान और शत्रु, दोनों मेरे हाथों एक साथ मारे जा चुके हैं। आज मेरा श्रम सफल हो गया, प्रतिज्ञा पूर्ण

हो गयी। हनुमान् के समुद्र-लंघन का, सारी सेना सहित सुग्रीव का और विभीषण का परिश्रम सफल हो गया है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि युद्ध का यह सब परिश्रम मैंने तुम्हें पाने के लिए नहीं किया है। आचार की रक्षा, अपवाद का निवारण, अपने प्रख्यात वंश पर लगे कलंक का परिमार्जन करने के लिए यह मैंने किया है। तुम्हारे चरित्र पर संदेह किये जाने का अवसर उपस्थित है, ऐसी स्थिति को प्राप्त हुई तुम मेरे सामने खड़ी हो। क्लान्त व्यक्ति की आँखों के सामने दीपक की भाँति (कष्टदायी) इस अवस्था में मेरे लिए तुम प्रतिकूल हो। अतः जनककुमारी! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, जाओ। भद्रे! दशों दिशाएं आगे हैं। मैं अपनी ओर से तुम्हें अनुमति देता हूँ। अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। परगृह में ले जायी गयी स्त्री को प्रेमवश अपनाकर कुल की विडम्बना कैसे कर दूँ! अतः जहाँ अच्छा लगे, जाओ।

चिरकाल के बाद मिले हुए प्रियतम के मुख से ऐसी अप्रिय बात सुनकर सीता आहत हुई तथा आँसू बहाने व रोने लगीं। फिर लज्जा से सिकुड़ी सीता आँसू पोंछती हुई भरे गले से धीरे-धीरे बोलीं– वीर! आप मेरे लिए अनुपयुक्त ऐसी कठोर और रूखी, अति साधारण स्तर की बातें मुझे उसी स्तर के लोगों की भाँति क्यों सुना रहे हैं? आप मेरे बारे में जैसा विचार व्यक्त कर रहे हैं, वैसी मैं नहीं हूँ। मैं अपने सदाचार की ही शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं संदेह के योग्य नहीं हूँ। (अपहरण के समय) रावण के शरीर से जो मेरा स्पर्श हो गया वह विवशता ही थी। मेरा हृदय सदा आप में ही लगा रहता है। पराधीनता में अनिच्छा से दूसरे का स्पर्श हो जाने पर मैं विवश क्या कर सकती थी? त्यागना ही था तो जब आपने लंका में मुझे देखने के लिए महावीर हनुमान् को भेजा था, उसी समय मुझे क्यों नहीं त्याग दिया? वास्तव में मेरी तो उत्पत्ति ही जनक से नहीं हुई है। मैं भूतल से प्रकट हुई (दिव्यजन्मा) हूँ। मैं बालिका ही थी, तब आपने मेरा हाथ पकड़ा। मेरी भक्ति, मेरे शील, सबकी ओर अब आपने पीठ फेर दी है!

यह कहते-कहते सीता जी का गला भर गया। फिर उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि मेरे लिए चिता तैयार कर दो। मेरे इस दुःख की यही ओषधि है। मिथ्या कलंक से कलंकित होकर मैं जीवित नहीं रह सकती। मैं अग्नि में प्रवेश करूंगी।

लक्ष्मण ने अमर्ष के साथ श्री राम की ओर देखा, परन्तु भाव-संकेत से श्री राम के अभिप्राय को समझकर उन्होंने चिता तैयार कर दी। भगवान् श्रीराम सिर झुकाये खड़े थे। सीता ने उनकी परिक्रमा की और अग्निदेव के समक्ष जाकर देवताओं और ब्राह्मणों को प्रणाम करके हाथ जोड़ कर कहा– यदि मेरा हृदय एक क्षण के लिए भी श्री रघुनाथ जी से दूर न हुआ हो तो सम्पूर्ण जगत् के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें। मन-वचन-कर्म से यदि मैं सर्वधर्मज्ञ राघव से परे नहीं हटी, तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें। ऐसा कहकर वे अग्नि में समा गयीं। सीता को आग में गिरते देखकर वहाँ आयी सभी स्त्रियाँ चीख उठीं। राक्षस और वानर भारी हाहाकार करने लगे।

अन्यमनस्क श्रीराम उस मुहूर्त में अश्रु छलकाती व्याकुल आँखों से देखते रहे। उसी समय कुबेर, यमराज, इन्द्र, वरुण, महादेव, तथा ब्रह्मा जी लंकापुरी आये और श्रीराम से कहा– आप सीता की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? आप देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु हैं, इस बात को कैसे समझ नहीं रहे हैं? तदनन्तर उनके अन्य रूपों का भी वर्णन किया और कहा कि आप साधारण मनुष्यों की भाँति क्यों आचरण कर रहे हैं ? उनकी बात सुनकर श्रीराम ने कहा– देवगण! मैं तो मानता हूँ कि मैं दशरथ-पुत्र राम ही हूँ। मैं जो हूँ और जहाँ से आया हूँ, वह सब आप ही मुझे बताइये। यह सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा– आप चक्र धारण करने वाले नारायण देव हैं। आप अविनाशी परब्रह्म हैं। ब्रह्मा जी ने उनके सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन किया तथा कहा कि आप पुराणपुरुषोत्तम हैं, दिव्यरूपधारी परमात्मा हैं। जो लोग आपमें भक्ति रक्खेंगे, वे इस लोक और परलोक में अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे।

ब्रह्मा जी के वचनों को सुनकर अग्निदेव सीता को गोद में लिये चिता से ऊपर को उठे तथा श्रीराम को समर्पित कर दिया और कहा– इनमें कोई पाप या दोष नहीं है। आप इन्हें सादर स्वीकार करें। अग्निदेव की बात सुनकर श्रीराम का मन प्रसन्न हो गया तथा उन्होंने कहा कि लोगों को सीता की पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए परीक्षा आवश्यक थी। यदि मैं परीक्षा न करता तो लोग यही कहते कि दशरथ-पुत्र राम बड़ा ही मूर्ख और कामी है। मैं जानता हूँ कि सीता का हृदय मुझमें ही लगा रहता है। यह तीनों लोकों में परम पवित्र है। अपनी कीर्ति के समान मैं सीता को भी त्याग नहीं सकता। इस प्रकार कहकर श्रीराम अपनी प्रिय पत्नी सीता से मिले और बड़े सुख का अनुभव करने लगे।

श्री महादेव जी ने भी राम के प्रति शुभ वचन बोलते हुए कहा कि आपको सब कार्य पूर्ण करके फिर अपने परम धाम में जाना चाहिये। साथ ही उन्होंने बताया कि इन्द्रलोक-प्राप्त आपके पिता दशरथ भी विमान में बैठे हैं। उन्हें देखकर श्रीराम-लक्ष्मण ने प्रणाम किया। दशरथ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों को गोद में बैठाकर कहा– मैं तुमसे सच कहता हूँ कि तुमसे विलग होकर मुझे स्वर्ग का सुख तथा देवताओं द्वारा प्राप्त सम्मान भी अच्छा नहीं लगता। तुम्हें वन भेजने के लिए कैकेयी ने जो-जो बातें कही थीं, वे सब आज भी हृदय में बैठी हैं। तुम जैसे पुत्र ने मेरा उद्धार कर दिया। अब तुम भाइयों के साथ राज्य पर प्रतिष्ठित हो दीर्घ आयु प्राप्त करो। श्रीराम ने हाथ जोड़कर कहा–धर्मज्ञ महाराज! आप कैकेयी और भरत पर प्रसन्न हों। आपने जो कैकेयी से कहा था कि मैं पुत्र सहित तेरा त्याग करता हूँ, आपका वह घोर शाप पुत्र सहित कैकेयी को स्पर्श न करे। तब दशरथ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा– बहुत अच्छा, और फिर लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया। फिर सीता को पुत्री कहकर पुकारा और कहा कि राम तुम्हारे हितैषी हैं, तुम्हारी पवित्रता प्रकट करने के लिए ही उन्होंने ऐसा व्यवहार किया। इस प्रकार आदेश एवं उपदेश देकर दशरथ विमान के द्वारा इन्द्रलोक चले गये।

दशरथ के लौट जाने पर इन्द्र ने हाथ जोड़कर खड़े श्रीराम से कहा कि हमारा दर्शन अमोघ है (व्यर्थ नहीं होता), अतः जो मन में इच्छा हो वह मुझसे कहिये। श्रीराम ने कहा– देवेश्वर! मेरे लिए युद्ध में जो यमलोक चले गये, वे सब वानर जीवित होकर उठ खड़े हों। मेरे लिए अपने स्त्री-पुत्रों को छोड़कर आये वानर, लंगूर और भालुओं को मैं नीरोग, व्रणहीन और बल-पौरुष से सम्पन्न देखना चाहता हूँ। ये जिस स्थान पर रहें, वहाँ असमय में भी फल-फूल, मूल और पुष्पों की भरमार रहे तथा निर्मल जल वाली नदियाँ बहती रहें। इसे सुनकर इन्द्र ने कहा– मैंने कभी दोगली बात नहीं की है, यह वर अवश्य सफल होगा। तदनन्तर सभी मृत वानर सोकर जगे हुए की भाँति सहसा उठकर खड़े हो गये। फिर देवगण विमानों द्वारा अपने लोक को चले गये।

उस रात्रि विश्राम करके जब श्रीराम उठे तो विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा– आप सब के स्नान तथा अंगरागादि की समस्त सामग्री उपस्थित है। श्रीराम ने कहा कि तुम सुग्रीव आदि वानरों से अनुरोध करो, मुझे तो भरत से मिले बिना स्नान और नवीन वस्त्र इत्यादि धारण करना अच्छा नहीं लगता। तुम इस ओर ध्यान दो कि हम लोग किस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र अयोध्यापुरी लौट सकेंगे। विभीषण ने कहा– आप चिन्तित न हों। मैं दिन ही दिन में आपको उस पुरी में पहुँचा दूंगा। पुष्पक विमान तैयार है। परन्तु आप कुछ दिन यहाँ विराजिये। श्रीराम ने कहा– विभीषण! तुम पुष्पक विमान मँगाओ, हम लोग शीघ्र प्रस्थान करें। विभीषण पुष्पक विमान लेकर आ गये।

विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा– प्रभो! अब मैं क्या सेवा करूँ? श्रीराम ने कहा– विभीषण! इन सारे वानरों का नाना प्रकार के रत्न और धन आदि के द्वारा सत्कार करो। श्रीराम के ऐसा कहने पर विभीषण ने सब वानरों को रत्न और धन आदि देकर पूजित-आनन्दित किया। फिर श्री राम, लक्ष्मण, सीता पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए। सुग्रीव आदि से श्री राम ने कहा कि आपने मित्र का कार्य कर दिया, अब आप अपने-अपने स्थान पर चले जायँ। विभीषण यहाँ राज्य करें। यह सुनकर सभी वानर-सेनापतियों तथा विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा– भगवन् ! हम भी अयोध्यापुरी चलना चाहते हैं। यह सुनकर श्रीराम को प्रसन्नता हुई तथा सभी को विमान पर चढ़ा लिया। फिर श्रीराम की आज्ञा से पुष्पक विमान आकाश में उड़ चला।

श्रीराम ने सब ओर दृष्टि डालकर सीता को युद्धस्थल, सागर पर बना सेतु तथा मार्ग के सभी स्थान दिखाये। फिर मार्ग में पड़ने वाली किष्किन्धापुरी में विमान उतार कर तारा से सीता की भेंट करायी और प्रमुख वानर-स्त्रियों को भी सीता के साथ चलने की अनुमति दे दी। फिर विमान उड़ने पर ऋष्यमूक पर्वत, शबरी का आश्रम, जनस्थान तथा अगस्त्य आश्रम व चित्रकूट दिखाते हुए भरद्वाज आश्रम पर उतरकर मुनि को प्रणाम किया और मुनि से उन्हें भरत तथा अयोध्या का समाचार ज्ञात हुआ। श्रीराम के कार्यों से प्रसन्न होकर महामुनि ने रात्रि में रुकने तथा वर माँगने को कहा। श्रीराम ने कहा– भगवन् ! यहाँ से

अयोध्या जाते समय मार्ग में पड़ने वाले सभी वृक्षों में समय न होने पर भी अमृतोपम स्वादिष्ट फल उत्पन्न हो जायँ तथा मधु चूने लगे। भरद्वाज जी ने कहा–ऐसा ही होगा। फिर तो वानर हर्ष से भरकर उन फलों का आस्वादन करने लगे।

श्रीराम ने हनुमान् जी से कहा कि अयोध्या जाकर सबका कुशल-क्षेम ज्ञात करो तथा शृंगवेरपुर में निषादराज गुह को मेरी ओर से कुशल कहना। वह मेरा मित्र है तथा मेरे लिए आत्मा के समान सखा है। भरत को सब समाचार बताना। वानर वीर! तुम भरत के विचार और निश्चय को जानने के लिए शीघ्र जाओ। वह यदि इच्छुक हो, तो वही राज्य करे। हनुमान् जी मनुष्य रूप रख कर तीव्र वेग से उड़कर निषादराज गुह से मिले और बताया कि श्रीराम, सीता और लक्ष्मण आ रहे हैं। गुह से यह कहकर वे बड़े वेग से आगे बढ़े। तपस्वी की भाँति रह रहे भरत के पास पहुँचकर हनुमान् जी ने हाथ जोड़कर कहा– देव! श्रीराम ने अपना कुशल-समाचार कहलाया है और आपका कुशल-समाचार भी पूछा है। वे रावण को मारकर और हर ली गयी वैदेही को वापस लाकर लक्ष्मण एवं मित्रों के साथ आ रहे हैं। आप कल उनसे मिलेंगे। हनुमान् जी के ऐसा कहते ही भरत सहसा आनन्दविभोर हो पृथ्वी पर गिर पड़े और अति हर्ष से मूर्च्छित हो गये। चेत में आने पर उन्होंने हनुमान् को दोनों भुजाओं में भर लिया और कहा– भय्या! तुम कोई देवता हो या मनुष्य हो जो मुझ पर कृपा करके यहाँ पधारे हो ? मैं कौन-सी प्रिय वस्तु तुम्हें उपहार में दूँ ? मैं तुम्हें एक लाख गायें, सौ उत्तम गाँव और उत्तम आचार वाली सोलह कुमारी कन्याएं पत्नी रूप में समर्पित करता हूँ। फिर भरत ने कहा– मेरे स्वामी श्रीराम को विशाल वन में गये बहुत वर्ष बीत गये। मुझे आज आनन्ददायिनी चर्चा सुनने को मिली है। सौम्य! श्रीराम और वानरों का यह मेल-जोल कैसे हुआ ? तुम ठीक-ठीक बताओ। भरत की बात सुनकर हनुमान् जी ने आदि से अन्त तक का समस्त वृत्तान्त बताया।

यह सब सुनकर भरत ने शत्रुघ्न को आज्ञा दी– सभी स्थान सुसज्जित करो, सभी नागरिक, सभी वर्गों के लोग नगर के बाहर चलें तथा मन्त्रपाठ, सैन्य-तत्परता, बाजे-गाजे और नृत्य-गीत के साथ श्रीराम के दर्शन करें। शत्रुघ्न ने समारोहपूर्वक स्वागत की सभी समुचित व्यवस्था प्रारम्भ कर दी। सब नन्दिग्राम पहुँच गये। यथासमय पुष्पक विमान दिखाई दिया। हनुमान् जी के यह कहते ही कि इसी पर श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता विराजमान हैं, सभी नागरिक जय-जयकार करने लगे। विमान पृथ्वी पर उतरा, श्रीराम ने भरत जी को विमान पर चढ़ा लिया। भरत जी आनन्दविभोर हो गये तथा श्रीराम के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया, तदनन्तर सीता को प्रणाम किया सथा सुग्रीव सहित सभी वानर-यूथपतियों का आलिंगन किया। विभीषण की भी उनके सहयोग के लिए प्रशंसा की। शत्रुघ्न ने भी सभी को प्रणाम किया। श्रीराम ने अपनी माता कौसल्या तथा सुमित्रा व कैकेयी को प्रणाम किया। तदनन्तर भरत ने चरणपादुकाएं श्रीराम के चरणों में पहना दीं और हाथ जोड़कर कहा कि मेरे पास धरोहर के रूप में रक्खा यह सारा राज्य मैं आपके श्रीचरणों में लौटा रहा हूँ।

विमान से ही सब भरत के आश्रम पर जाकर पृथ्वी पर उतरे। फिर श्रीराम ने पुष्पक विमान से कहा कि तुम अब कुबेर के पास आओ। वह शीघ्र चला गया।

भरत ने कहा– रघुनन्दन! अब तो हमारी यही इच्छा है कि जगत् के सब लोग आपका राज्याभिषेक देखें। जब तक नक्षत्रमण्डल घूमता है और जब तक यह पृथ्वी स्थित है, तब तक आप इस संसार के स्वामी बने रहें। इसके बाद श्रीराम ने अपने भाइयों के साथ स्नान किया, जटाएं सुलझा कर सँवारीं और उचित वस्त्र धारण किये, फिर सिंहासन पर विराजमान हुए। दशरथ की रानियों ने स्वयं अपने हाथों से सीता जी का मनोहर शृंगार किया। तदनन्तर श्रीराम ने एक सुन्दर रथ पर आरूढ़ हो नन्दिग्राम से चलकर अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। पिता के भवन में प्रवेश करके उन्होंने माताओं के चरणों में मस्तक झुकाया तथा भरत से कहा कि सुग्रीव, विभीषण आदि को उत्तम महलों में ठहराया जाय। तदनन्तर भरत ने सुग्रीव से अनुरोध किया कि श्रीराम के अभिषेक-जल के लिए आप अपने दूतों को आज्ञा दीजिये। सुग्रीव ने चारों दिशाओं के समुद्रों से जल भरकर ले आने के लिए जाम्बवान्, हनुमान्, गवय, सुषेण और ऋषभ को सोने के चार घड़े दिये जो चारों समुद्रों तथा पाँच सौ नदियों से जल भर लाये। तदनन्तर वसिष्ठ जी ने सीता सहित श्रीराम को रत्नमय पीठ (चौकी) पर बैठाया और वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय, इन आठ पुरोहितों एवं मन्त्रियों ने अभिषेक किया। फिर वसिष्ठ जी ने ब्रह्मा के द्वारा रचित किरीट और अन्यान्य आभूषणों से श्रीराम को विभूषित किया। इन्द्र की प्रेरणा से वायुदेव ने एक दीप्तिमती माला और मुक्ताहार राजा रामचन्द्र को भेंट किया। श्रीराम ने एक लाख अश्व (घोड़े), उतनी ही दूध देने वाली गायें तथा सौ वृषभ (सांड) दान किये। सुग्रीव को मणिजटित सोने की दिव्यमाला भेंट की, अंगद को बाजूबन्द दिये। सीता ने हनुमान् को अपने गले से मुक्ताहार निकाल कर दे दिया। सभी का सत्कार किया गया।

इस प्रकार श्रीराम का राज्याभिषेक देखकर सभी श्रेष्ठ वानर विदा ले किष्किन्धा को चले गये। विभीषण लंकापुरी को चले गये। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम युवराज पद ग्रहण करो, परन्तु लक्ष्मण के न स्वीकार करने पर वह पद भरत को दिया। श्रीराम ने ग्यारह सहस्र वर्षों तक राज्य किया। उनकी भुजाएं घुटनों तक लम्बी थीं। उनका वक्षस्थल विशाल एवं विस्तृत था।

श्रीराम के शासन में कहीं चोरों-लुटेरों का नाम नहीं सुना जाता था। वृक्ष सदा फल-फूलों से लदे रहते थे। सभी लोग निर्लोभ थे। सारी प्रजा धर्म में तत्पर रहती थी। कोई असत्य नहीं बोलता था। किसी प्रकार का रोग या शोक नहीं होता था। यह ऋषि-प्रोक्त आदिकाव्य रामायण है। वाल्मीकि ने इसकी रचना की है। इस कथा के श्रवण या कथन से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है और दीर्घकाल तक स्थिर रहने वाली आयु पाता है।

(युद्धकाण्ड समाप्त)

उत्तरकाण्ड

प्रथम सर्ग

श्रीराम की राजसभा में महर्षियों का आगमन; इतिहास-चर्चाः राक्षसों की उत्पत्ति और उपद्रव, रावण प्रभृति राक्षसों का इतिहास।

राक्षसों के संहार के बाद जब भगवान् श्रीराम ने अपना राज्य प्राप्त कर लिया, तब समस्त ऋषि-मुनि श्रीराम का अभिनन्दन करने के लिए आये। पूर्व दिशा में निवास करने वाले कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव एवं कण्व, दक्षिण दिशा से स्वस्ति, आत्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, सुमुख और विमुख, पश्चिम से नृषंगु, कवष, धौम्य, कौशेय, तथा उत्तर दिशा से वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज अयोध्यापुरी आये। श्रीराम ने उन सबका पूजन किया तथा कुशल पूछी। वेदवेत्ता महर्षि बोले– राजन् ! आपने सम्पूर्ण लोकों को रुलाने वाले रावण का वध किया, यह बड़े सौभाग्य की बात है। आपने कुम्भकर्ण तथा अन्य महाभयंकर राक्षसों को मारा। रावण अवध्य था, वह भी आपके हाथों मारा गया। परन्तु द्वन्द्वयुद्ध में लक्ष्मण के द्वारा इन्द्रजीत का वध सबसे बड़े आश्चर्य की बात है। उसके वध से हम लोग बहुत प्रसन्न हुए और इसके लिए आपका अभिनन्दन करते हैं। रघुकुलवर्द्धन! इन सारे राक्षसों को मारकर आपने सज्जनों को अभय प्रदान किया है। यह सुनकर श्रीराम ने हाथ जोड़कर पूछा– रावण तथा कुम्भकर्ण महान् बल-पराक्रम से सम्पन्न थे, उन दोनों को लांघकर आप इन्द्रजीत की ही प्रशंसा क्यों करते हैं? महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, त्रिशिरा, धूम्राक्ष को भी छोड़कर आपने इन्द्रजीत की प्रशंसा की। किस कारण से वह रावण से भी बढ़कर सिद्ध होता है?

यह सुनकर अगस्त्य मुनि ने कहा– इस विषय का वर्णन करने से पूर्व मैं आपको रावण के कुल, जन्म तथा वरदान-प्राप्ति का प्रसंग सुनाता हूँ। सत्ययुग की बात है, प्रजापति ब्रह्मा के एक पुत्र ब्रह्मर्षि पुलस्त्य हुए। एक बार वे महागिरि मेरु के निकट राजर्षि तृणविन्दु के आश्रम में गये और रहने लगे। उनका मन धर्म में ही लगा रहता था। कुछ कन्याएं आश्रम में जाकर खेल-कूद, नाचना-गाना आदि चपलताओं से उनकी तपस्या में विघ्न डालने लगीं। इससे महामुनि कुछ रुष्ट हो गये और बोले– कल से जो कन्या मेरे दृष्टिपथ में आयेगी वह गर्भ धारण कर लेगी। यह सुनकर कन्याएं डर गयीं और वहाँ आना छोड़ दिया। परन्तु राजर्षि तृणविन्दु की कन्या ने इस शाप को नहीं सुना था, इसलिए वह निःशंक (बेखटके) वहाँ विचरने लगी और उस ओर चली गयी जहाँ पुलस्त्य जी थे। महर्षि की दृष्टि पड़ते ही उसके शरीर में पीलापन छा गया और गर्भ के लक्षण प्रकट हो गये। यह मुझे क्या हुआ? ऐसी चिन्तापूर्ण जिज्ञासा से वह पिता के पास आश्रम में गयी तथा तृणविन्दु ने पूछा– तुम्हारे शरीर की ऐसी

अवस्था कैसे हुई? कन्या ने हाथ जोड़कर कहा- थोड़ी देर पूर्व मैं अपनी सखियों को खोजती हुई महर्षि पुलस्त्य के आश्रम पर गयी, वहीं से मेरी यह अवस्था हो गयी। राजर्षि तृणविन्दु ने ध्यान के द्वारा कारण का पता लगा लिया तथा पुलस्त्य जी के पास जाकर बोले कि मेरी इस कन्या को आप ग्रहण कर लें। ब्रह्मर्षि ने कहा- बहुत अच्छा। उस कन्या ने अपने गुणों से पुलस्त्य को बहुत सन्तुष्ट किया तो उन्होंने प्रसन्न होकर कहा- तुम्हें अपने समान पुत्र प्रदान करता हूँ, वह पौलत्स्य नाम से विख्यात होगा तथा यहाँ (गर्भवती अवस्था में) वेद का तुमने विशेष रूप से श्रवण किया है, इसलिए तुम्हारा पुत्र विश्रवा कहलायेगा। उस देवी ने विश्रवा नामक पुत्र को जन्म दिया जो पिता के ही समान तपस्वी हुए।

विश्रवा के साथ भरद्वाज ने अपनी कन्या देववर्णिनी का विवाह किया और उससे उत्पन्न पुत्र का नाम वैश्रवण पड़ा। कुछ समय उपरान्त उन्होंने कठोर तप किया तथा उससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी, इन्द्र आदि ने वर माँगने को कहा। वैश्रवण ने कहा- मैं लोकपाल होना चाहता हूँ। ब्रह्मा ने कहा वत्स! यम, इन्द्र और वरुण को जो पद प्राप्त है, वैसा ही लोकपाल पद तुम्हें प्राप्त होगा। यह कहकर ब्रह्मा जी वैश्रवण को पुष्पक विमान देकर चले गये तथा वे देवताओं के धनाध्यक्ष (कुबेर) बन गये। उन्होंने अपने पिता से कहा- पद तो मुझे मिल गया, परन्तु ब्रह्मा जी ने कोई निवासस्थान नहीं बताया; इसलिए आप मुझे कोई उपयुक्त स्थान बताइये। विश्रवा ने अपने पुत्र की बात सुनकर त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंकापुरी को सर्वथा उपयुक्त बताया और कहा कि इस पुरी का निर्माण विश्वकर्मा ने राक्षसों के रहने के लिए किया था। पूर्वकाल में विष्णु के भय से राक्षसों ने इस पुरी को त्याग दिया था। अब यह सूनी है, इसका कोई स्वामी नहीं है। वैश्रवण कुबेर लंकापुरी में रहने लगे तथा उनकी आज्ञा से कुछ यक्ष, गन्धर्व इत्यादि भी आकर रहने लगे। वैश्रवण वहाँ के राजा हो गये।

यह सुनकर श्रीराम ने पूछा कि यदि इसके पूर्व राक्षस लंकापुरी में रहते थे तो उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? अगस्त्य जी ने कहा कि ब्रह्मा जी ने समुद्रगत जल की सृष्टि करके उसकी रक्षा के लिए अनेक जल-जन्तुओं को उत्पन्न किया। उनमें से कुछ ने कहा कि हम इसकी रक्षा करेंगे (रक्षाम) तथा कुछ ने यक्षण (पूजन) करेंगे (यक्षाम) कहा। तब ब्रह्मा ने कहा- जिन्होंने रक्षा करने की बात कही वे राक्षस नाम से विख्यात हों तथा जिन्होंने यक्षण (पूजन) स्वीकार किया वे यक्ष नाम से कहे जायें। उन राक्षसों में हेति और प्रहेति दो भाई थे। वे ही राक्षसों के अधिपति बने। प्रहेति धार्मिक था, वन में चला गया। हेति कामी था, उसी का पुत्र हुआ निशाचर विद्युत्केश जिसका सालकटंकटा से एक पुत्र हुआ। उस निशाचरी ने पुत्र उत्पन्न होते ही उसे छोड़ दिया और पति के साथ चली गयी। वह बालक मुट्ठी मुँह में डालकर रोने लगा। उसी समय शंकर-पार्वती जी वायुमार्ग से जा रहे थे। उन्होंने रोने की आवाज सुनी। उन्हें दया आ गयी और उस बालक को उसकी माता की अवस्था के समान

नौजवान बना दिया और एक विमान भी दिया। तत्पश्चात् पार्वती जी ने वरदान दिया कि राक्षसियाँ शीघ्र गर्भ धारण करेंगी तथा बालक तत्काल ही माता की अवस्था का हो जायेगा।

वह बालक सुकेश नाम से विख्यात हुआ तथा ग्रामणी नामक गन्धर्व ने अपनी कन्या देववती का उससे विवाह कर दिया। उसके माल्यवान्, सुमाली और माली नामक तेजस्वी पुत्र हुए। उन्होंने बड़ा तप किया; ब्रह्मा के वरदान से वे समर्थ, चिरंजीवी तथा प्रभावशाली हो गये। उनमें परस्पर सदा प्रेम बना रहा। वर प्राप्त करके वे निर्भय होकर देवों, असुरों को कष्ट देने लगे।

एक दिन वे विश्वकर्मा के पास गये और कहा कि आप देवों के लिए गृह-निर्माण करते हैं, हमारे लिए भी एक विशाल निवासस्थान का निर्माण करिये। यह सुनकर विश्वकर्मा ने उन्हें त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंकापुरी बतायी जिसका निर्माण उन्होंने स्वयं इन्द्र के कहने पर किया था। उनकी बात सुनकर वे श्रेष्ठ राक्षस अपने सहस्रों अनुचरों के साथ पुरी में बस गये। उन तीनों का विवाह नर्मदा नामक गन्धर्वी की तीन कन्याओं से हो गया। उनके द्वारा बलशाली पुत्र उत्पन्न हुए तथा वे सबको सताने लगे। वे यज्ञादि क्रियाओं का विनाश किया करते थे।

इन राक्षसों से पीड़ित देव तथा ऋषि भय से व्याकुल होकर महादेव जी के पास गये और कहा कि पितामह ब्रह्मा जी के वरदान से प्राप्त बल से उद्धत राक्षस हमको सता रहे हैं। भगवान् शिव ने कहा– मैं उन्हें नहीं मारूंगा, मेरे लिए वे असुर अवध्य हैं। परन्तु तुम लोग भगवान् विष्णु की शरण में जाओ, वे इनका नाश करेंगे। तब वे देवता और ऋषि भगवान् विष्णु के पास गये जिन्होंने उन्हें अभय प्रदान किया। इसका पता राक्षसों को चल गया तो उन्होंने कहा कि नारायण का हमसे वैर नहीं है, परन्तु देवताओं की चुगली से वे हमारे विरोध में आ सकते हैं, इसलिए देवों को नष्ट कर दिया जाय। उन सबने मिलकर देवलोक पर चढ़ाई कर दी। देवगण अमरपुरी छोड़कर भाग गये। देवदूतों से यह समाचार पाने पर भगवान् विष्णु राक्षसों को नष्ट करने के लिए आये। सहस्रों राक्षसों ने भगवान् विष्णु पर आक्रमण किया। सब ओर से प्रहार करते हुए उन्होंने शस्त्रों का ऐसा घटाटोप लगा दिया कि भगवान् विष्णु के साँस लेने के लिए वायु तक पहुँचनी बन्द हो गयी। तब उन्होंने शाङ्‌र्ग धनुष खींचा और राक्षसों को वाणों से मारने लगे तथा अपना पाञ्चजन्य नामक शंख बजाया जिसे सुनकर राक्षस भयभीत हो गये। भगवान् नारायण के वेग को नहीं रोक सकने के कारण राक्षस-सेना लंका की ओर भागी। परन्तु सुमाली और माली ने भयंकर आक्रमण किया। उनके प्रहार से गरुड़ घायल हो गये, भगवान् विष्णु को भी युद्ध से विमुख कर दिया। परन्तु भगवान् विष्णु ने कुपित होकर माली का सिर काटकर उसे धराशायी कर दिया और उसे मरा देखकर सुमाली और माल्यवान् भी राक्षसों के साथ भाग गये। परन्तु भगवान् ने उनका पीछा किया तो माल्यवान् लौट पड़ा और कहा कि तुम पुरातन क्षात्र धर्म नहीं जानते हो। युद्ध से विरत लोगों पर भी आक्रमण कर रहे हो। शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले देवेश्वर! यदि तुम्हारे हृदय में युद्ध का उत्साह है तो मैं खड़ा हूँ। भगवान् विष्णु ने कहा– तुम लोगों

से देवों को भय है; मैंने उनको अभय करने की प्रतिज्ञा की है। विकट युद्ध के बाद निराश होकर सुमाली और माल्यवान् लंका छोड़कर सबके साथ पाताल में रहने के लिए चल दिये तथा सुमाली का आश्रय लेकर वहीं रहने लगे। माल्यवान्, माली और सुमाली निशाचर रावण से बढ़कर बलवान् थे।

लंका में धनाधिपति कुबेर आकर रहने लगे थे। एक बार पृथ्वी पर विचरण करने के लिए आये सुमाली ने कुबेर को देदीप्यमान् पुष्पक विमान पर बैठकर पिता ऋषि विश्रवा के दर्शन करने के लिए जाते विस्मयपूर्वक देखा। सुमाली बड़ा बुद्धिमान् था, वह सोचने लगा- क्या करने से हम राक्षसों का भला होगा ? ऐसा विचार करके उसने अपनी पुत्री कैकसी से कहा- तुम्हारा विवाह के योग्य समय आ गया है, अतः पुत्री! तुम प्रजापति के कुल में उत्पन्न मुनिवर विश्रवा का स्वयं चलकर वरण करो। ऐसा करने से तुम्हारे धनेश्वर कुबेर के समान पुत्र होंगे। पिता की बात सुनकर कैकसी मुनिवर विश्रवा के आश्रम में गयी। वे उस समय सायंकाल का अग्निहोत्र (हवन) कर रहे थे। उसे देखकर मुनि ने उसका परिचय तथा आने का कारण पूछा। कैकसी ने अपना नाम बताया और कहा कि मैं पिता की आज्ञा से आपकी सेवा में आयी हूँ, शेष बात आप ब्रह्मर्षि आत्मज्ञान के बल से स्वयं जान सकते हैं।

कैकसी के मनोभाव को समझकर विश्रवा ने कहा कि तुम पुत्र प्राप्त करना चाहती हो, परन्तु इस दारुण वेला में आने के कारण क्रूर स्वभाव वाले राक्षस पुत्रों को जन्म दोगी। मुनि के पाँव पकड़कर वह बोली- मुझे ऐसे पुत्र नहीं चाहिये, कृपा करिये। तब वे बोले- तुम्हारा सबसे छोटा पुत्र ही मेरे कुल के अनुरूप धर्मात्मा होगा। कुछ काल के अनन्तर कैकसी ने एक पुत्र उत्पन्न किया जिसके दस मस्तक, बीस भुजाएं थीं तथा बड़ा विशाल व काला था। उसके जन्म लेते ही बड़े अशुभ प्राकृतिक उपद्रव हुए। उसके पिता विश्रवा ने उसका नाम दशग्रीव रखा। उसके बाद कुम्भकर्ण का जन्म हुआ जिसके शरीर से बड़ा शरीर जगत् में कोई नहीं था। इसके बाद विकराल मुखवाली शूर्पणखा उत्पन्न हुई। तदनन्तर धर्मात्मा विभीषण का जन्म हुआ। एक दिन कैकसी ने दशग्रीव से कहा- पुत्र! तुम भी ऐसा यत्न करो जिससे वैश्रवण (कुबेर) की भाँति तेज व वैभव से सम्पन्न हो जाओ। दशग्रीव ने माँ से प्रतिज्ञा की कि वह अपने भाई वैश्रवण के समान अथवा बढ़कर बनेगा। तब उसने अपने कनिष्ठ भाइयों के साथ गोकर्ण आश्रम पर विकट तपस्या करके ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किये।

रावण ने दस सहस्र (दस हजार) वर्षों तक निराहार रहकर तपस्या की तथा प्रत्येक सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर अपना एक मस्तक काटकर आग में होम देता था। इस प्रकार जब दस सहस्र वर्ष पूरे होने पर वह दसवाँ मस्तक चढ़ा रहा था, तब ब्रह्माजी ने प्रकट होकर वरदान माँगने के लिए कहा। रावण ने अमरता माँगी तो पितामह ने कहा कि ऐसे अमर नहीं हो सकते, कोई और वर माँगो। तब रावण ने माँगा कि पक्षी, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस, और देव मुझे न मार सकें; अन्य प्राणी तो वैसे ही दुर्बल होते हैं, उनकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। ब्रह्मा जी ने यह वर तो दिया ही, इसके अतिरिक्त भी वरदान दिया कि तुम्हारे सब

मस्तक फिर से प्रकट हो जायेंगे तथा तुम जब जैसा रूप धारण करना चाहोगे उस समय तुम्हारा वैसा ही रूप हो जायेगा। विभीषण ने धर्म पर अपनी अनुरक्ति सदैव बनी रहने का वर माँगा। उन्हें इस वर के साथ ही ब्रह्मा जी ने कल्पान्त तक अमर रहने का वर स्वयं दिया। जब ब्रह्मा कुम्भकर्ण को वरदान देने लगे तो देवताओं ने उन्हें रोककर कहा कि यह तो तीनों लोकों को खा जायेगा। तब ब्रह्मा जी की प्रेरणा से सरस्वती उसकी वाणी में प्रवेश कर गयी और उसे ऐसी प्रेरणा दी कि कुम्भकर्ण ने अनेकानेक वर्षों तक सोते रहने का वर माँगा।

रावण का लंका पर अधिकार और विजय-अभियान तथा अत्याचार; सहस्रबाहु और वाली के हाथों पराजय।

रावण आदि निशाचरों को वर प्राप्त होने का समाचार जानकर सुमाली निर्भय होकर रसातल से मारीच, प्रहस्त, महोदर इत्यादि अपने अनुचरों के साथ निकल आया और दशग्रीव को छाती से लगा लिया तथा कहा कि भगवान् विष्णु से प्राप्त होने वाला भय अब दूर हो गया है। हमें उन्हीं के कारण लंकापुरी छोड़नी पड़ी थी। अब वहाँ तुम्हारा भाई कुबेर निवास करता है। पहले वहाँ राक्षस रहते थे, अतः तुम उसे फिर प्राप्त कर लो। रावण ने कहा- मातामह (नाना जी)! कुबेर हमारे बड़े भाई हैं, अतः आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। यह सुनकर सुमाली चुप रह गया। कुछ काल के बाद निशाचर प्रहस्त ने पूर्वकाल के उदाहरणों के बल पर उसे यह समझाया कि इसके पूर्व देवताओं ने भी ऐसा किया है, इसलिए केवल आप ही विपरीत आचरण करने वाले नहीं हैं। सोच-विचार कर रावणं ने कुबेर के पास संवाद भेजा कि यह स्थान राक्षसों को लौटा दिया जाय। अन्ततः विश्रवा की आज्ञा से कुबेर कैलास पर्वत क्षेत्र में जाकर रहने लगे। तदनन्तर रावण ने लंका पुरी में राक्षसों के साथ प्रवेश किया।

अपना अभिषेक हो जाने पर राक्षसराज रावण ने अपनी बहिन शूर्पणखा का विवाह कालका के पुत्र दानवराज विद्युज्जिह्व से कर दिया तथा मय दानव की कन्या मंदोदरी से स्वयं विवाह किया। दैत्यराज बलि की दौहित्री वज्रज्वाला से कुम्भकर्ण का तथा गधर्वराज शैलूष की कन्या सरमा से विभीषण का विवाह कराया। मुनि विश्रवा के शाप से अनभिज्ञ मय दानव ने उसे अद्भुत अमोघ शक्ति दी जिसके द्वारा बाद में रावण ने लक्ष्मण को आहत किया था। मन्दोदरी ने मेघनाद (इन्द्रजीत) को जन्म दिया जो जन्मते ही मेघ के समान गम्भीर नाद करके रोया था। उसके उसी नाद को सुनकर रावण ने उसका नाम मेघनाद रक्खा।

कुम्भकर्ण तो निद्रा के वशीभूत होकर सो गया तथा सहस्रों वर्षों तक सोता रहता। दशमुख रावण उच्छृंखल हो देवताओं, ऋषियों, यक्षों और गन्धर्वों के समूहों को मारने तथा

पीड़ा देने लगा। उसकी इन दुष्टताओं को सुनकर उसके भाई कुबेर ने उसे समझाने के लिए दूत भेजा। इससे रावण कुपित हो गया तथा उसने दूत का वध कर दिया और धनपति कुबेर के निवासस्थान पर गया। भाई का अभिप्राय जानकर कुबेर ने यक्षों को युद्ध की आज्ञा दी। यक्षों और राक्षसों में घोर संग्राम छिड़ गया। रावण ने कालदण्ड के समान भयंकर गदा उठाकर यक्षों की सेना को मारना आरम्भ किया और कुबेरपुरी के द्वार पर पहुँच कर द्वारपालों को मार गिराया।

कुबेर ने महाबाहु मणिभद्र को युद्ध के लिए भेजा, परन्तु वह भी रावण से पराजित होकर भाग गया। कुबेर ने रावण के सामने आकर उसे उसके कुकर्मों के प्रति अनेक बातें कहीं, परन्तु वह नहीं माना। तब कुबेर ने उसके सेनापतियों को मार भगाया। फिर कुबेर से रावण का युद्ध होने लगा। घोर युद्ध के पश्चात् रावण ने अनेक मायावी रूप धारण करके अपनी गदा कुबेर के मस्तक पर दे मारी। वे पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय देवताओं ने उन्हें घेर कर उठा लिया और नन्दन वन में ले जाकर चेत कराया। रावण ने कुबेर को जीत कर उनका पुष्पक विमान भी अपने अधिकार में ले लिया।

कुबेर को जीतकर रावण शरवण नाम के विशाल वन में गया। वहीं पर महासेन कार्तिकेय जी की उत्पत्ति हुई थी। उसके पास के पर्वत पर जब वह चढ़ने लगा तो उसके पुष्पक विमान की गति रुक गयी। विमान क्यों रुक गया, इस बात को सचिवों सहित रावण सोचने लगा। उसी समय भगवान् शंकर के पार्षद नन्दीश्वर ने आकर कहा– दशग्रीव! लौट जाओ। इस पर्वत पर भगवान् शंकर क्रीड़ा करते हैं। सभी प्राणियों का आना-जाना बन्द है। दशग्रीव कुपित होकर बोला– कौन है यह शंकर? ऐसा कहकर वह पुष्पक से उतरकर पर्वत के मूलभाग में आ गया। उसने देखा नन्दी शूल हाथ में लेकर खड़े हैं तथा उनका मुख वानर के समान है। उन्हें देखकर वह हँसने लगा। तब नन्दी कुपित होकर बोले– दशानन! तूने वानर रूप देखकर मेरी अवहेलना की है, इसलिए तेरे कुल का विनाश करने के लिए पराक्रमी वानर उत्पन्न होंगे। उसने उनकी बात की परवाह न करके कहा कि इस पर्वत के कारण मेरे विमान की गति रुकी है, मैं इसे जड़ से उखाड़ फैंकता हूँ। ऐसा कहकर दशग्रीव ने उठाने का प्रयास किया तो वह पर्वत हिलने लगा। तब महादेव ने उस पर्वत को पैर के अंगूठे से दबा दिया। फिर तो दशग्रीव की भुजाएं पर्वत के नीचे दब गयीं और वह इतना घोर रुदन तथा आर्तनाद करने लगा कि धरती-आकाश काँप उठे। तब उसके मन्त्रियों ने कहा कि आप महादेव जी को संतुष्ट करिये। फिर दशग्रीव ने नाना प्रकार के स्तोत्रों तथा सामवेदोक्त मन्त्रों द्वारा उनका स्तवन किया। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये। तब महादेव प्रसन्न हुए तथा उसे मुक्ति मिली। भगवान् शंकर ने कहा कि तुम्हारे आर्तनाद से सभी प्राणी भयभीत होकर रो पड़े, इसलिए अब तुम रावण नाम से प्रसिद्ध होओगे। फिर जाने की आज्ञा दी तो रावण ने वर माँगा कि पूर्वायु की भाँति आगे भी मेरी दीर्घ आयु पूर्ण करिये तथा एक अस्त्र दीजिये। शंकर जी ने चन्द्रहास नामक खड्ग दिया। उसके बाद रावण समूची पृथ्वी पर

दिग्विजय के लिए निकला और महापराक्रमी क्षत्रपतियों को पीड़ा पहुँचायी।

हिमाचल में उसने एक तपस्विनी कन्या देखी। रावण उस पर आसक्त हो गया। रावण के पूछने पर उसने बताया कि बृहस्पति के पुत्र ब्रह्मर्षि कुशध्वज मेरे पिता हैं तथा मेरा नाम वेदवती है। जब मैं बड़ी हुई तो देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग मेरे पिताजी के पास जा-जाकर मुझे माँगने लगे। पिता जी की इच्छा थी कि भगवान् विष्णु उनके दामाद हों, इसलिए उन्होंने किसी को नहीं दी। तब दैत्यराज शम्भ कुपित हो गया तथा सोते समय मेरे पिता जी की हत्या कर दी। मेरी माँ पिता के ही साथ अग्नि में प्रविष्ट हो गयी। तब से मैं पिता जी के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए तपस्या कर रही हूँ। नारायण ही मेरे पति हैं। पौलस्त्यनन्दन! मैंने तुमको पहचान लिया है। तुम जाओ। तीनों लोकों में जो भी होता है, तपोबल से मैं सब जानती हूँ। रावण कामवाण से पीड़ित होकर फिर उसे लुभाने लगा तथा कहा– विष्णु भी पराक्रम में मेरे बराबर नहीं है। वेदवती ने इस बात पर उसे डाँटा। तब रावण ने उस कन्या के केश पकड़ लिये। वेदवती ने अपने हाथों से केशों को काट दिया और क्रुद्ध होकर जल मरने को तैयार हो गयी तथा कहा कि मैं तेरे देखते-देखते अग्नि में प्रवेश करूंगी और तेरे वध के लिए मैं फिर उत्पन्न होऊंगी। यह कहकर वह अग्नि में भस्म हो गयी। तदनन्तर दूसरे जन्म में वह कन्या पुनः एक कमल से प्रकट हुई। राक्षस ने फिर उसे प्राप्त कर लिया तथा लंका लाया और मन्त्रियों को दिखाया। एक लक्षण जानने वाले मंत्री ने कहा कि यह यदि तुम्हारे घर में रहेगी तो तुम्हारे वध का कारण बनेगी। यह सुनकर रावण ने उसे समुद्र में फैंक दिया। वही पृथ्वी पर पहुँचकर राजा जनक के यहाँ खेत से हल के द्वारा फिर प्रकट हुई जो आपकी पत्नी सीता है।

वेदवती के अग्नि-प्रवेश कर जाने पर पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर रावण पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए उशीर बीज नामक देश में पहुँचा और देखा कि राजा मरुत्त देवगणों के साथ बैठकर यज्ञ कर रहे हैं। रावण से भयभीत होकर इन्द्र मोर, धर्मराज कौआ, कुबेर गिरगिट और वरुण हंस हो गये। रावण ने राजा से कहा– मुझसे युद्ध करो या मुँह से कह दो कि पराजित हो गया हूँ। राजा मरुत्त धनुष-वाण लेकर युद्ध के लिए निकले, तभी महर्षि संवर्त ने उन्हें रोका और कहा कि अभी युद्ध उचित नहीं है। तुम माहेश्वर यज्ञ पूर्ण करो। यज्ञ-दीक्षित पुरुष में क्रोध के लिए स्थान ही नहीं है। यह सुनकर राजा ने धनुष-वाण त्याग दिये तथा यज्ञ के लिए उन्मुख हो गये। तब उन्हें पराजित जानकर रावण ने सिंहनाद किया तथा यज्ञ में आये महर्षियों को खाकर फिर विचरने लगा। उसके जाने के बाद देवता प्रकट हुए तथा जो जिस रूप में थे उसी-उसी प्राणी को वरदान देते हुए इन्द्र ने मोर से कहा– तुम्हें सर्प से भय नहीं होगा। मेरे सहस्र नेत्रों ने समान तुम्हारे पंखों में चिह्न प्रकट होंगे। धर्मराज ने कौवे से कहा– पक्षी! दूसरे प्राणियों को मैं नाना प्रकार के रोगों द्वारा पीड़ित करता हूँ, परन्तु रोग तुम्हारे ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। तुम्हें मृत्यु का भय नहीं होगा

जब तक अन्य प्राणी तुम्हारा वध नहीं करते। यमलोक में स्थित जो मानव भूख से पीड़ित हैं उनके पुत्र आदि जब भूतल पर तुम्हें भोजन करायेंगे, तब वे बन्धु-बान्धवों सहित परम तृप्त होंगे। वरुण ने हंस से कहा– पक्षिराज! तुम्हारे शरीर का रंग चन्द्रमण्डल तथा शुद्ध फेन के समान परम उज्ज्वल, सौम्य एवं मनोरम होगा। जल का आश्रय लेकर तुम सदा कान्तिमय बने रहोगे। कुबेर ने गिरगिट से कहा– तुम्हारा सिर सदा ही सुवर्ण के समान द्रव्य से रंगा एवं अक्षय होगा। काला रंग सुनहरे रंग में परिवर्तित हो जायेगा।

मरुत्त को जीतने के पश्चात् रावण अनेक नगरों में गया। दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय, पुरूरवा इत्यादि अनेक राजाओं ने उससे हार मान ली। इसके पश्चात् वह अयोध्यापुरी गया तथा राजा अनरण्य को ललकारा। राजा एक बड़ी सेना लेकर लड़ने आया, परन्तु रावण के प्रहार से राजा अनरण्य भूमि पर गिर गया और थर-थर काँपने लगा। यह देखकर रावण हँसा और कहा कि मुझसे युद्ध करके तुमने क्या पाया? राजा ने कहा– मेरे प्राण जा रहे हैं, मैं अब क्या कर सकता हूँ! परन्तु मैंने युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा। राक्षस! तूने इक्ष्वाकु कुल का अपमान किया है तो शाप देता हूँ कि इस वंश में दशरथनन्दन श्रीराम प्रकट होंगे जो तेरा वध करेंगे।

एक दिन पुष्पक विमान से यात्रा करते समय मुनिश्रेष्ठ नारद जी उसे मिले। रावण ने अभिवादन करके कुशल-समाचार पूछा तथा आगमन का कारण जानना चाहा। नारद ने कहा–सौम्य राक्षसराज! गन्धर्वों और नागों को पददलित करके तुमने मुझे सन्तुष्ट किया है। परन्तु तुम देव-दानवादि सभी के लिए अवध्य होकर इस भूलोक के निवासियों का वध क्यों कर रहे हो? यहाँ के प्राणी तो मृत्यु के अधीन हैं। स्वयं ही बड़ी-बड़ी विपत्तियों से घिरे हुए हैं। बुढ़ापा तथा सैकड़ों रोगों से ग्रस्त हैं। दैव के मारे इस मर्त्यलोक का तुम विनाश न करो। तुमने तो मनुष्यलोक को जीत ही लिया है और इन सबको यमलोक तो जाना ही पड़ता है; अतः शक्ति हो तो तुम यमराज को वश में करो। नारद की बात सुनकर रावण ने कहा– मैंने आपकी बात स्वीकार कर ली। अब मैं यमराज का वध करने दक्षिण दिशा को जाता हूँ। उसके जाने के बाद नारद जी सोचने लगे– जिनके द्वारा तीनों लोकों के चराचर प्राणी क्लेश में डाले जाते हैं वे कालस्वरूप यमराज इस रावण के द्वारा कैसे जीते जायेंगे? अतः यमराज और राक्षसराज का युद्ध देखने में स्वयं यमलोक जाऊंगा।

नारद जी शीघ्रता से यमराज के पास पहुँचे तथा दशग्रीव के आने की बात बतायी। इतने में रावण आ गया तथा उसने वहाँ बहुत से प्राणी अपने-अपने पुण्य तथा पाप का फल भोगते देखे; यम-यातना का विकराल रूप देखा तथा पुण्यात्मा जीवों को संगीत तथा वाद्यों की मनोहर ध्वनियों से आनन्दित देखा। यह देखकर उसने पाप कर्म के कारण यातना भोगने वाले प्राणियों को पराक्रम द्वारा मुक्त करा दिया। यह देखकर यमदूत कुपित हो गये तथा राक्षसराज और उसकी सेना पर टूट पड़े। वे उसके पुष्पक विमान को भी तोड़ने लगे। रावण

ने उनकी मार से अपने को संभाला तथा कुपित होकर उसने पाशुपत नामक दिव्य अस्त्र का संधान किया। वह चारों ओर दावानल के समान प्रतीत होने लगा। यमराज के सारे सैनिक मारे गये तथा रावण सिंहनाद करने लगा।

अपने योद्धा मारे गये जानकर यमराज कुपित होकर प्रास, मुद्गर हाथ में लेकर खड़े हो गये। कालदण्ड मूर्तिमान् होकर उनके पार्श्व में खड़ा हो गया। किन्तु रावण नहीं डरा तथा यमराज के रथ पर वाणों की झड़ी लगा दी। सात रातों तक युद्ध हुआ। रावण ने मृत्यु को तथा यम के सारथि को भी पीड़ित कर दिया तथा यमराज के मर्मस्थानों पर चोट पहुँचायी। यमराज अत्यधिक कुपित हुए तथा मृत्यु ने कहा– आप मुझे आज्ञा दे दें, मैं इस पापी को मार डालूँ। परन्तु यमराज ने कहा– तुम रुको, और अपना कालदण्ड उठाया तथा जैसे ही प्रहार करना चाहते थे, उसी समय ब्रह्मा जी आ गये तथा कहा– तुम इस कालदण्ड के द्वारा इस निशाचर का वध न करो। मैंने इसे देवों द्वारा अवध्य होने का वर दिया है। मुझे असत्य मत करो। मुझे अनृत कर दिये जाने पर त्रिलोक ही अनृत हो जायेंगे। तब यमराज ने कहा– फिर कालदण्ड चलाने का क्या लाभ? तथा वे वहाँ से अन्तरधान होकर चले गये। अपनी जीत की घोषणा करके रावण यमलोक से चला गया।

तदनन्तर रावण दैत्यों तथा नागों द्वारा सेवित तथा वरुण के द्वारा सुरक्षित जलनिधि समुद्र में प्रविष्ट हुआ। नागराज वासुकि द्वारा पालित भोगवती पुरी में पहुँचकर उसने नागों को अपने वश में कर लिया। फिर मणिमयीपुरी को प्रस्थान किया। उस पुरी में ब्रह्मा जी से उत्तम वरदानप्राप्त निवातकवच नामक दैत्य रहते थे। उनसे भयानक संग्राम हुआ तथा युद्ध करते एक वर्ष व्यतीत हो गया। तब ब्रह्मा जी ने आकर युद्ध को रोका तथा कहा कि तुम दोनों वर-प्राप्ति के कारण अजेय हो, अतः परस्पर मैत्री कर लो। दोनों में मैत्री हो गयी तथा रावण वहाँ पर और एक वर्ष रहा। निवातकवचों से रावण ने सौ प्रकार की मायाओं का ज्ञान प्राप्त किया। अश्म नामक नगर में उसने कालकेय नामक दैत्यों को परास्त किया। वहाँ उसने शूर्पणखा के पति, अपने बहिनोई विद्युज्जिह्व को काट डाला तथा आगे जाकर वरुण के दिव्य भवन पर पहुँच गया। वहाँ सुरभि नामक गाय खड़ी थी, उसका दर्शन किया जिससे किरणों वाले चन्द्रमा का प्रादुर्भाव हुआ है तथा जिसके दूध से क्षीरसागर भरा है। चन्द्रदेव के उत्पत्ति-स्थान क्षीरसमुद्र का आश्रय लेकर फेन पीने वाले महर्षि जीवन धारण करते हैं। उस क्षीरसागर से ही अमृत उत्पन्न हुआ तथा स्वधा-भोजी पितरों के लिए स्वधा प्रकट हुई है। रावण ने गोमाता सुरभि की परिक्रमा करके वरुणालय में प्रवेश किया तथा जल-देवता और राजा वरुण को युद्ध के लिए ललकारा। वरुण के पुत्र-पौत्रों तथा सैनिकों से रावण का भयंकर युद्ध होने लगा और अन्ततः वे सब परास्त हो गये। जब उसको पता लगा कि वरुण तो संगीत सुनने के लिए ब्रह्मलोक गये हैं, तब वह सिंहनाद तथा अपनी विजय की घोषणा करके चला गया।

रावण ने मार्ग में अनेकानेक नरेशों, ऋषियों, देवों, असुरों, यक्षों, नागों, मानवों और

दानवों की कन्याओं का अपहरण किया। जहाँ भी वह सुन्दर कन्या या स्त्री देखता, उसके स्वजनों या रक्षकों को मारकर उसे विमान में खींच लेता। उन शोकार्त स्त्रियों ने उसे शाप दिया कि परस्त्रियों से रमण करने वाले इस अधम राक्षस का स्त्री के ही कारण वध होगा। उन रोती-विलखती स्त्रियों को लेकर उसने लंका में प्रवेश किया। कालकेय नामक दैत्यों के साथ युद्ध में रावण ने शूपर्णखा के पति विद्युज्जिस्व को भी मार डाला था, इसलिए वह रोती हुई आयी और कहा कि तुमने मुझे विधवा बना दिया। रावण ने मधुर वाणी में कहा– अब रोना व्यर्थ है। समरांगण में जूझते समय मुझे अपने-पराये का ज्ञान नहीं रह जाता था, अतः दामाद को पहचान नहीं सका। मैं तुम्हारा हितसाधन करूंगा; तुम भाई खर के पास चलकर रहो, वह तुम्हारा पूरा सम्मान करेगा। शूर्पणखा तब से दण्डकारण्य में जाकर रहने लगी।

तदनन्तर रावण निकुम्भिला नामक उपवन में गया और देखा कि वहाँ सुन्दर चैत्य में उसका भयावह पुत्र मेघनाद काला मृगचर्म, कमण्डलु, शिखा और ध्वज धारण करके बैठा था। उसके पुरोहित शुक्राचार्य ने बताया कि मेघनाद ने अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूर्य, गोमेध तथा वैष्णव यज्ञ सम्पन्न कर दिये हैं और माहेश्वर यज्ञ चल रहा है। इसे भगवान् पशुपति से बहुत-से दुर्लभ वरदान प्राप्त हुए हैं। इच्छानुसार आकाशचारी रथ मिला है, अन्धकार उत्पन्न करने वाली तामसी नाम की माया प्राप्त हुई है। वाणों से भरे दो अक्षय तूणीर (तरकस) तथा प्रबल विध्वंसक अस्त्र प्राप्त हुए हैं। यह सुनकर रावण ने कहा– पुत्र! तुमने अच्छा नहीं किया। इन यज्ञों द्वारा तो मेरे शत्रु इन्द्र आदि देवताओं का पूजन हुआ है। चलो, घर चलें। फिर वे घर आये।

विभीषण ने रोती कन्याओं और स्त्रियों को देखकर रावण के इस कृत्य को कुलनाशक बताकर इसकी घोर निन्दा की और बताया कि इस पाप का फल सामने आ गया है, हम लोगों के न रहने पर मधु राक्षस ने हमारी मौसेरी बहिन कुम्भीनसी का अपहरण कर लिया। तुम दूसरों को हराने चले गये, मेघनाद यज्ञ करने में लगा रहा, मैं जल के अन्दर था और कुम्भकर्ण महाराज सोये रहे! यह सुनकर रावण मधु पर और फिर देवों पर आक्रमण के लिए देवलोक की ओर चल पड़ा। मधुपुर पहुँचने पर मधु वहाँ नहीं दिखाई दिया। कुम्भीनसी ने भयभीत होकर रावण के चरणों पर मस्तक रखा। रावण ने कहा– डरो मत। तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ ? इस पर कुम्भीनसी ने कहा– आप मुझे विधवा होने से बचायें। मेरे पति का वध न करें। रावण ने अभयदान देकर कहा कि उसे मेरे साथ देवलोक पर आक्रमण के लिए भेजो। तब मधु भी रावण के साथ गया।

मार्ग में कैलास पर्वत पर रावण की सेना ने पड़ाव डाला। इस बीच रम्भा अप्सरा उस मार्ग से आ निकली और रावण ने उसे देखा। कामवेदना से आतुर होकर वह उसे लुभाने लगा। रम्भा ने कहा– आपके मुँह से ऐसी बात नहीं निकलनी चाहिये, मैं आपकी धर्मतः पुत्र-वधू हूँ। रावण ने कहा कि जब तुम मेरे पुत्र की वधू होगी, तभी पुत्रवधू कहलाओगी, अन्यथा

नहीं। रम्भा ने कहा– आपके बड़े भाई कुबेर के पुत्र नलकूबर को मैंने आज मिलने का संकेत दिया है। यह सुनकर रावण ने नम्रतापूर्वक कहा– यह ठीक नहीं जान पड़ता। यह नाता तो उन स्त्रियों के लिए है जो एक पुरुष की पत्नी हैं; अप्सरा का कोई पति नहीं होता। तथा इसके बाद उसने बलपूर्वक रम्भा के साथ समागम किया। लज्जा और भय से काँपती हुई रम्भा नलकूबर के पास गयी और सब समाचार बताया। यह सुनकर नलकूबर को बड़ा क्रोध आया और हाथ में जल लेकर रावण को शाप दिया कि यदि आज से वह न चाहने वाली स्त्री के साथ समागम करेगा तो उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे। यह सुनकर दशग्रीव ने बलात्कार छोड़ दिया और उसके द्वारा अपहृत स्त्रियाँ नलकूबर के शाप का समाचार सुनकर हर्षित हुईं।

कैलास पर्वत पार करके रावण इन्द्रपुरी जा पहुँचा। रावण का आगमन सुनकर देवराज इन्द्र ने अपनी सेना को तैयार होने को कहा, परन्तु उन्हें भय हो गया और वे भगवान् विष्णु के पास गये तथा प्रार्थना की कि आप उपाय बताइये जिससे हमारी विजय हो। विष्णु ने कहा– अभी वह अजेय है; मैं उसे मारूंगा अवश्य, परन्तु अभी मेरे द्वारा उसके वध का समय नहीं आया। एक बार युद्ध में जाकर मैं शत्रु को मारे बिना नहीं लौटता, अतः अभी तो आप लोग उसके साथ निर्भय होकर युद्ध करिये। भयंकर युद्ध होने लगा। वसु ने सुमाली को गदा के प्रहार से मार गिराया।

सुमाली मारा गया और राक्षस-सेना भाग रही है, यह देखकर रावण का पुत्र मेघनाद देवताओं से लोहा लेने खड़ा हो गया। उसके प्रहार से देवगण भाग चले। तब इन्द्र ने अपने पुत्र जयन्त को भेजा। मेघनाद अनेक अस्त्रों के प्रहार से देवताओं को मारने लगा। तभी दैत्यराज पुलोमा, जो शची का पिता और जयन्त का नाना था, आया और जयन्त को लेकर समुद्र में घुस गया। जयन्त के अदृश्य होने से देव-सेना लड़खड़ा गयी। तब देवराज इन्द्र स्वयं रणभूमि में आये। रावण भी मेघनाद को हटाकर स्वयं युद्ध करने लगा। देव-सेना ने राक्षसों की सेना को भारी हानि पहुँचायी। यह देखकर रावण सीधे इन्द्र पर जा दौड़ा तथा प्रचण्ड आघात पहुँचाया। इन्द्र ने रावण का सामना किया और उसे युद्ध से विमुख कर दिया। फिर उसे बन्दी बनाने का निश्चय किया। उसी समय मेघनाद ने देव-सेना में प्रवेश किया तथा अपने को माया द्वारा छिपा लिया और देव-सेना को खदेड़ना आरम्भ किया। वह इन्द्र पर टूट पड़ा, किन्तु इन्द्र उसे नहीं देख पाये। उसने उनके सारथि मातलि को घायल कर दिया। तब रथ छोड़कर देवराज ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर मेघनाद को खोजने लगे। मेघनाद अपनी माया से बहुत प्रबल हो गया तथा इन्द्र को माया से बाँधकर अपनी सेना में ले आया। रावण पूर्णतः घिरा था, तब मेघनाद ने कहा– पिता श्री! अब घर चलें। हमारी जीत हो गयी। मैं इन्द्र को बन्दी बना लाया हूँ। पिता की आज्ञा पाकर मेघनाद देवराज को साथ लेकर अपने निवासस्थान को लौट आया।

मेघनाद जब इन्द्र को लेकर लंकापुरी पहुँचा, तब सब देवगण ब्रह्मा जी को आगे करके

लंकापुरी आ गये और उन्होंने आकाश में स्थित होकर कहा– वत्स रावण! तुम्हारे पुत्र की वीरता देखकर मैं बहुत संतुष्ट हूँ। तुमने अपने तेज से समस्त त्रिलोकी पर विजय पायी है। मैं पुत्र सहित तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम इन्द्र को छोड़ दो और बताओ कि इसके बदले क्या चाहते हो? तब मेघनाद ने कहा– इन्द्र के बदले मैं अमरत्व चाहता हूँ। यह सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा– वत्स! इस भूतल पर कोई भी प्राणी सर्वथा अमर नहीं हो सकता। यह सुनकर मेघनाद ने कहा– मेरी दूसरी शर्त फिर यह है कि जब मैं संग्राम के लिए तैयार होकर मंत्रयुक्त आहुति से अग्नि की पूजा करूँ, उस समय अग्नि से एक रथ घोड़ों सहित प्राप्त हो तथा जब तक मैं उस पर बैठा रहूँ तब तक मुझे कोई मार न सके। यदि मैं युद्ध में जप और होम को पूर्ण किये बिना जाऊँ, तभी मेरा विनाश हो! ब्रह्मा जी ने एवमस्तु कहा और इन्द्रजीत ने इन्द्र को मुक्त कर दिया तथा देवगण उन्हें लेकर स्वर्गलोक चले गये। इन्द्र पराजय के कारण बहुत दुःख व चिन्ता में डूब गये। उनकी यह अवस्था देखकर ब्रह्मा जी ने कहा– शतक्रतो! पूर्वकाल के दुष्कर्मों के कारण ही तुम्हारी यह अवस्था है। मैंने अपनी बुद्धि से अपनी प्रजाओं (मानस-पुत्रों) को उत्पन्न किया, किन्तु वे सब एकरूप, एकवर्ण थे अतः उनसे अलग, एक विशिष्ट प्रजा प्रस्तुत करने के लिए एक नारी की सृष्टि की, उसका नाम अहल्या हुआ। धरोहर के रूप में मैंने उसे महर्षि गौतम को सौंप दिया। दीर्घ तप के पश्चात् ऋषि ने उसे पत्नी रूप में स्वीकार किया। यह देखकर देव निराश हुए और तुम तो बहुत क्रुद्ध हो गये तथा तुमने अहल्या के साथ दुराचार किया। तभी तुम्हें महर्षि गौतम ने युद्ध में शत्रु के हाथ पड़ने का शाप दिया, इसी कारण तुम्हारी यह अवस्था है। ऋषि ने यह भी कहा– दुर्बुद्धे! तुम्हारे इस दोष से मनुष्यलोक में भी यह जार भाव प्रचलित हो जायेगा। उससे जो पाप होगा उसका आधा भाग उसके कर्ता को और आधा तुम्हें मिलेगा तथा तुम्हारा स्थान कभी स्थिर नहीं होगा, कोई भी इन्द्र अब स्थायी नहीं होगा। महर्षि ने अपनी पत्नी को भी डाँटा तथा कहा कि इसी आश्रम में अदृश्य होकर रह तथा रूप-सौन्दर्य से भ्रष्ट हो जा। और अब तू अकेली रूपवती नहीं रहेगी, तुम्हारे समान रूप सभी प्रजाओं को प्राप्त होगा, क्योंकि एक के ही रूपवती होने से यह झमेला हुआ। तभी से अधिकांश प्रजा रूपवती होने लगी। अहल्या की प्रार्थना पर महर्षि ने कहा कि इक्ष्वाकु वंश में भगवान् विष्णु के मनुष्यावतार का राम के नाम से विख्यात जन्म होगा, उन्हीं के दर्शन से तू पवित्र होगी।

अगस्त्य जी के मुख से देवेन्द्र पर मेघनाद की विजय का वर्णन सुनकर राम-लक्ष्मण ने कहा– आश्चर्य है! तब अगस्त्य मुनि ने श्रीराम से कहा कि पुत्र सहित रावण जगत् के लिए कंटकरूप था।

श्रीराम ने अगस्त्य मुनि से विस्मयपूर्वक पूछा कि भगवन्! क्रूर रावण पृथ्वी पर विजय करता घूम रहा था, उस समय क्या यहाँ के सभी लोग शौर्यगुणों से शून्य थे ? तब हँसकर महामुनि ने कहा– घूमते-घूमते रावण माहिष्मती नगरी में जा पहुँचा। वहाँ हैहयवंशी अर्जुन

नामक राजा निवास करता था। रावण उससे युद्ध करने का इच्छुक था, किन्तु जिस दिन राक्षसराज रावण वहाँ पहुँचा, उस दिन बलवान् अर्जुन अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदा में जल-क्रीड़ा करने गया था। रावण नर्मदा नदी के तट पर गया और अपने सेनापतियों को कहा कि तुम लोग भी नर्मदा में स्नान करो, मैं महादेव जी को फूलों का उपहार अर्पित करूंगा। रावण ने स्नान करके अपने साथ लिये सुवर्णमय शिवलिंग को स्थापित करके पूजन किया।

अर्जुन की सहस्र (हजार) भुजाएं थीं। अपने बल को परखने के लिए उसने उन भुजाओं से नर्मदा के वेग को रोक दिया तथा रोका हुआ जल रावण तक पहुँच गया और रावण के पुष्पोपहार को बहा ले गया। बाढ़ का पता लगाने के लिए रावण ने शुक और सारण को आदेश दिया। शुक और सारण ने लौटकर रावण को बताया कि एक विशालकाय पुरुष जल को रोककर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा है। रावण बोल उठा–वही अर्जुन है। ऐसा कहकर वह वहाँ पहुँचा और मंत्रियों से कहा– तुम हैहयराज से कहो कि रावण युद्ध के लिए आया है। हैहयराज के सैनिकों से राक्षसों का युद्ध होने लगा। परन्तु राक्षसों की प्रबलता से भयभीत होकर हैहयराज को सूचित किया गया। हैहयराज ने तुरन्त गदा उठा ली और राक्षसों पर टूट पड़ा। फिर बीस भुजा वाले रावण का सहस्रबाहु से भयंकर युद्ध छिड़ गया। दोनों एक-दूसरे पर गदा-प्रहार करते रहे। अन्ततः पूरी शक्ति से अर्जुन ने गदा का प्रहार रावण की छाती पर किया, परन्तु वह मरा नहीं बल्कि आर्तनाद करता हुआ बैठ गया। रावण को व्याकुल देखकर अर्जुन ने उछलकर उसे पकड़कर सुदृढ़ रस्सों से बाँध दिया और उसे लेकर नगर में आया।

रावण के बन्दी बनाये जाने की बात महर्षि पुलस्त्य ने सुनी तो वे सन्तान-रक्षा के भाव से माहिष्मती-नरेश से मिलने आये। अर्जुन ने मुनि की अगवानी व स्वागत किया। महर्षि ने कहा– तुम्हारे बल की तुलना नहीं है, तुमने दशग्रीव को जीत लिया। वत्स ! अब मेरे कहने से तुम दशानन को छोड़ दो। अर्जुन ने तुरन्त ही रावण को बन्धनमुक्त कर दिया और उसके साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया।

अर्जुन से छुटकारा पाकर रावण फिर विचरने लगा और एक दिन किष्किन्धापुरी में जाकर वाली को युद्ध के लिए ललकारा। वाली सन्ध्योपासन के लिए दक्षिण समुद्र पर गया था। रावण ने वहीं पहुँच कर वाली को पकड़ना चाहा, परन्तु वाली ने तुरन्त ही रावण को पकड़ लिया और काँख में लटकाकर बड़े वेग से आकाश में उछला तथा रावण को लिये-लिये ही सभी समुद्रों के तटों पर जाकर सन्ध्योपासन सम्पन्न किया और अन्त में किष्किन्धापुरी के उपवन में रावण को काँख से निकालकर हँसते हुए पूछा– कहो, कहाँ से आये हो ? रावण ने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं युद्ध की इच्छा से आया था, सो वह तुमसे मिल गया। तुममें अद्भुत बल व पराक्रम है। तुम्हारे अतिरिक्त कौन दूसरा ऐसा शूरवीर होगा जो बिना थके-माँदे मुझे ढो सके। ऐसी गति तो मन, वायु, और गरुड़ में सुनी गयी है। चौथे तुम हो। तुम्हारा बल देख लिया, अब मैं मित्रता कर लेना चाहता हूँ। फिर दोनों में मित्रता हो गयी।

हनुमान् जी की उत्पत्ति और बाल्यकाल; ऋषियों का प्रस्थान; आमंत्रित नरेशों और वानरों की वापसी; पुष्पक का पुनरागमन और तिरोभाव।

श्रीराम ने अगस्त्य मुनि से कहा– महर्षे! इसमें सन्देह नहीं कि वाली और रावण अतुल बलशाली थे, परन्तु मेरा विचार है कि ये दोनों ही हनुमान् की बराबरी नहीं कर सकते थे। शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव, ये सभी हनुमान् के पास कहीं अधिक हैं। वे सौ योजन समुद्र लांघ गये, सीता जी से मिले, अशोक वन में अकेले ही सेनापतियों तथा रावण के पुत्र को मारा। नागपाश से बँधने पर स्वयं को मुक्त किया, रावण से बात की, लंकापुरी जलायी। उन्हीं के बल से सीता का पता लगा, लंका पर विजय हुई, मुझे सीता प्राप्त हुई तथा अयोध्या का राज्य मिला, परन्तु मेरी समझ में यह नहीं आता कि सुग्रीव और वाली में विरोध हुआ तो हनुमान् ने वाली को क्यों नहीं भस्म कर डाला? मैं ऐसा मानता हूँ कि उस समय हनुमान् को अपने बल का पता ही नहीं था। महामुनि! आप इस सन्दर्भ में मुझे विस्तारपूर्वक बतायें।

यह सुनकर महर्षि अगस्त्य जी ने कहा कि हनुमान् जी के विषय में आप जो कुछ कह रहे हैं, यह सब सत्य है। उनके बराबर कोई नहीं है। परन्तु मुनियों ने पूर्वकाल में उन्हें शाप दिया था कि इनको अपने पूरे बल का पता नहीं रहेगा। आप ध्यान देकर इस कथा को सुनिये। सुमेरु पर्वत पर हनुमान् जी के पिता केसरी राज्य करते थे। उनकी अञ्जना नाम की पत्नी थी। उसके गर्भ से वायुदेव ने एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया। एक दिन अञ्जना फल लाने के लिए गहन वन में चली गयी। माता से बिछुड़ जाने और भूख से पीड़ित होने के कारण शिशु हनुमान् ऊँचे स्वर से रोने लगे। इतने में ही उन्हें लाल रंग वाले सूर्य देव उदित होते दिखाई दिये। उन्हें कोई फल समझकर हनुमान् जी फल के लोभ में उछले और आकाश में उड़ते चले जा रहे थे। इस प्रकार उन्हें उड़ते देखकर देवों, दानवों तथा यक्षों को बड़ा विस्मय हुआ कि ऐसा वेग न तो वायु में है, न गरुड़ में, और न मन में ही है। यदि बाल्यावस्था में ऐसा वेग है तो यौवन पाकर इसका वेग कैसा होगा? शिशु हनुमान् को दाह के भय से बचाने के लिए वायुदेव भी शीतल होकर उनके पीछे चल रहे थे। सूर्य देव ने भी सोचा कि अभी यह बालक है और इसके अधीन देवताओं का भी बहुत सा भावी कार्य है, इसलिए जलाया नहीं। जिस समय शिशु हनुमान् सूर्य देव को पकड़ने के लिए उछले तब राहु सूर्यदेव पर ग्रहण लगाना चाहता था। हनुमान् जी के स्पर्श से राहु वहाँ से भाग खड़ा हुआ। सिंहिका का पुत्र राहु रोष में इन्द्र के पास जाकर बोला– आज अमावास्या के दिन मैं सूर्य देव को ग्रस्त करने गया था तो दूसरे राहु ने आकर सूर्य को पकड़ लिया। यह सुनकर इन्द्र घबरा गये और उठ खड़े हुए तथा राहु को लेकर वहाँ गये। राहु को ही फल समझकर

हनुमान् जी सूर्य देव को छोड़कर उसी की ओर झपटे तो वह भाग गया और बचाने के लिए इन्द्र को कहा। इन्द्र ने कहा- डरो मत, मैं इस आक्रमणकारी को मार डालूंगा। तत्पश्चात् हनुमान् जी ने ऐरावत को देखा तो उसे फल समझकर पकड़ने दौड़े। इस प्रकार उन्हें अपने हाथी को पकड़ते देखकर इन्द्र ने वज्र द्वारा प्रहार किया। इन्द्र के वज्र का आघात पाकर वे पहाड़ पर गिरे और बायीं ओर से उनकी ठुड्डी टूट गयी। शिशु हनुमान् पर वज्र का प्रहार देखकर वायुदेव कुपित हो गये और उनका क्रोध प्रजाजनों के लिए अहितकर हुआ।

वायु ने अपनी गति समेट ली और शिशु पुत्र हनुमान् को लेकर वे गुफा में घुस गये। फलतः सभी प्राणी चेष्टाशून्य हो गये। तब गन्धर्व, देव, असुर, मनुष्य आदि व्यथित होकर ब्रह्मा जी के पास गये और अपनी अवस्था बतायी। ब्रह्मा जी ने कहा- इसमें कुछ कारण है। वायुदेव इन्द्र के प्रहार के कारण कुपित हैं। अब हम सब चलकर उन्हें प्रसन्न करें।

ब्रह्मा जी को देखकर वायुदेव चरणों पर गिरे। ब्रह्मा जी ने वायु देव को उठाकर खड़ा किया और शिशु पर हाथ फेरा। शिशु हनुमान् पुनः जीवित हो उठे। उसी के साथ सर्वत्र वायु का संचार भी पुनः प्रारम्भ हो गया और सब सुखी हुए। फिर ब्रह्मा ने सभी देवों से कहा कि भविष्य में इसके द्वारा बहुत से कार्य सिद्ध होंगे, इसलिए आप लोग इस शिशु को वर दें। इन्द्र ने शिशु हनुमान् के गले में कमल की माला पहनायी तथा कहा कि इसकी हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी इसलिए इस कपिश्रेष्ठ का नाम हनुमान् होगा और मेरा इसे वर है कि यह मेरे वज्र द्वारा भी नहीं मारा जा सकेगा। सूर्य ने कहा- मैं इसे अपने तेज का सौवाँ भाग देता हूँ तथा जब इसमें शास्त्राध्ययन की शक्ति आ जायेगी तो मैं इसे शास्त्रज्ञान प्रदान करूंगा जिससे यह अच्छा वक्ता और अद्वितीय शास्त्रज्ञ होगा। वरुण ने कहा कि दस लाख वर्षों की आयु हो जाने पर भी मेरे पाश और जल से इसकी मृत्यु नहीं होगी। यम ने कहा कि यह मेरे दण्ड से अवध्य और नीरोग रहेगा। कुबेर ने कहा कि इसे विषाद नहीं होगा। इसके बाद शंकर ने कहा कि यह मेरे और मेरे आयुधों के द्वारा अवध्य होगा। विश्वकर्मा ने कहा- मेरे बनाये हुए जितने दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे यह अवध्य होगा। अन्त में ब्रह्मा जी ने कहा- यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकार के ब्रह्मदण्डों से अवध्य होगा। तदनन्तर ब्रह्मा जी ने वायुदेव से कहा कि तुम्हारा पुत्र मित्रों का मित्र और शत्रुओं के लिए भयंकर तथा अजेय होगा। यह इच्छानुसार रूप धारण करेगा (कर सकेगा) और बड़ा यशस्वी होगा। यह रावण के संहार और भगवान् श्री राम की प्रसन्नता का अद्भुत कर्म करेगा। फिर सब देव चले गये तथा वायु देव अञ्जना के घर आये और देवताओं के वरदान का समाचार सुनाया। वरदानों के कारण हनुमान् जी शक्ति-सम्पन्न हो गये तथा निर्भय होकर महर्षियों के आश्रमों में जाकर वानरीय उपद्रव किया करते थे। उनके इन कर्मों से कुपित होकर महर्षियों ने कहा- वानरवीर! तुम जिस बल का आश्रय लेकर हमें सता रहे हो उसे हमारे शाप से मोहित होकर तुम दीर्घकाल तक भूले रहोगे, तुम्हें अपने बल का पता नहीं चलेगा; जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्ति का स्मरण दिला देगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा। महर्षियों के इस वचन

के प्रभाव से उनका तेज और ओज घट गया। इसी कारण यद्यपि ये सुग्रीव के बाल्यकाल से ही अभिन्न मित्र थे। तो भी सुग्रीव के ऊपर जब विपत्ति आयी तो इन्हें अपने बल का ज्ञान विस्मृत हो गया था तथा वाली और सुग्रीव के युद्ध में ये चुपचाप खड़े-खड़े देखते रहे।

संसार में ऐसा कौन है जो हनुमान् से बढ़कर हो। व्याकरण का अध्ययन करने के लिए शंकाएं पूछने की इच्छा से सूर्य के साथ ये उदयाचल से अस्ताचल तक जाते थे। इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह का अच्छी प्रकार से अध्ययन किया।

तत्पश्चात् महर्षि गण अपने-अपने स्थानों को प्रस्थान कर गये।

महाबाहु श्री रघुनाथ जी प्रतिदिन राजसभा में बैठकर शासन का कार्य चलाने लगे। कुछ दिवस व्यतीत होने के पश्चात् उन्होंने राजा जनक, केकय-नरेश युधाजित, काशिराज प्रतर्दन को सम्मान के साथ विदा किया। राज्याभिषेक के अवसर पर भरत की आज्ञा से बहुत से नरेश सैनिकों के साथ आये थे। उन्होंने श्री राम को अनेकानेक प्रकार के उपहार भेंट किये जो श्रीराम ने वानरराज सुग्रीव और विभीषण तथा उनके साथ आये वानरों एवं राक्षसों को बाँट दिये। श्रीराम ने सुग्रीव को विदा करते समय कहा कि अंगद और हनुमान् सहित सभी वानर वीरों पर प्रेमपूर्ण दृष्टि रखना। फिर विभीषण से कहा तुम धर्मपूर्वक लंका का शासन करो। राजन् ! तुम सुग्रीव सहित मुझे सदा स्मरण रखना। अब प्रसन्नतापूर्वक जाओ। उसी समय हनुमान् जी विनम्र होकर बोले– महाराज! आप में ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। इस पृथ्वी पर जब तक रामकथा प्रचलित रहे, तब तक मेरे प्राण इस शरीर में बसे रहें। हनुमान् जी के ऐसा कहने पर श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया और कहा– कपिश्रेष्ठ! ऐसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है। जब तक इस लोक में मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तब तक तुम्हारी कीर्ति स्थिर रहेगी और जब तक ये लोक रहेंगे, तब तक मेरी कथाएं भी बनी रहेंगी। तुमने जो उपकार किये हैं, एक-एक के लिए मैं प्राण निछावर कर सकता हूँ और शेष का ऋणी फिर भी बना रहूंगा। यह कहकर श्रीराम ने अपने कण्ठ से एक हार निकाल कर हनुमान् जी के गले में बाँध दिया। तदनन्तर श्रीराम को पुनः पुनः प्रणाम करके सजल नेत्र लिये सब वहाँ से चल दिये।

सभी को विदा करके श्रीराम आनन्दपूर्वक रहने लगे। एक दिन पुष्पक विमान आया तथा कहा कि आपकी आज्ञा से मैं कुबेर की पुरी को चला गया था, किन्तु कुबेर ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है; उन्होंने कहा है कि रावण पर विजय के बाद पुष्पक आपका हो गया है। श्रीराम ने पुष्पक का पूजन किया तथा कहा– अब तुम जाओ; जब मैं स्मरण करूँ, तब आ जाना। पुष्पक विमान के जाने के बाद भरत जी ने कहा कि जब से आप राज्य पर अभिषिक्त हुए, एक मास से अधिक हो गया। तब से सभी लोग नीरोग हैं, पुरवासियों में बहुत हर्ष है।

कुछ काल के बाद श्री राम ने अपनी पत्नी को गर्भ के चिह्न से युक्त देखकर अनुपम हर्ष प्राप्त किया और बोले– विदेहनन्दिनी! तुम पुत्रवती होने वाली हो। बताओ, तुम्हारी क्या

इच्छा है ? मैं तुम्हारा कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ ? सीता जी ने मुस्कराकर कहा– रघुनन्दन! मेरी इच्छा पवित्र तपोवनों को देखने की है। गंगा-तट पर रहकर फल-मूल खाने वाले जो उग्र तेजस्वी महर्षि हैं, उनके समीप रहना चाहती हूँ। यही मेरी अभिलाषा है। श्रीराम ने सीता की इच्छा को पूर्ण करने का वचन देकर कहा– निश्चिन्त रहो, तुम कल ही वहाँ जाओगी।

सीता के बारे में प्रवाद की चर्चा; सीता-वनवास; वाल्मीकि आश्रम में आश्रय।

श्रीराम के पास कथा सुनाने और हास्य-विनोद करने वाले सखा आकर प्रायः बैठा करते थे। इसी समय किसी कथा के प्रसंग में श्रीराम ने पूछा–भद्र! आजकल नगर और राज्य में किस बात की चर्चा विशेष रूप से होती है? जनपद के लोग हम लोगों के विषय में क्या-क्या बातें करते हैं? भद्र बोले– महाराज! दशग्रीव सम्बन्धी जो आपकी विजय है उसके विषय में लोग अधिक बातें किया करते हैं। श्रीराम ने कहा– पुरवासी मेरे विषय में कौन-सी शुभ या अशुभ बातें करते हैं, वे सब निर्भय होकर कहो। ऐसा कहने पर भद्र ने हाथ जोड़कर कहा– वह मैं बताता हूँ। लोग कहते हैं कि श्रीराम ने समुद्र पर पुल बाँध कर जो कर्म किया, वह अद्वितीय है। देवों और दानवों के लिए भी अजेय रावण को युद्ध में मार डाला, वह अभूतपूर्व है। किन्तु वे हरी गयी सीता को पुनः घर ले आये! उनके मन में सीता के चरित्र को लेकर रोष या अमर्ष नहीं हुआ! राम को अब सीता से सम्बन्ध रखने में क्या सुख मिलता है ? हमें भी अपनी स्त्रियों से अब यह सहन करना पड़ेगा, क्योंकि जैसा राजा, वैसी प्रजा। यह सुनकर दुःखी श्रीराम ने सब सुहृदों से कहा– आप लोग भी मुझे बतायें, यह कहाँ तक ठीक है ? सभी ने कहा– प्रभो! भद्र का कथन ठीक है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह सुनकर श्रीराम ने सबको विदा कर दिया।

श्रीराम ने अपना कर्तव्य निश्चित किया और द्वारपाल से कहा कि तुम शीघ्र जाकर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को यहाँ बुला लाओ। शीघ्र ही सभी भाई आ गये। उन्होंने देखा कि श्रीराम का मुखमण्डल ग्रहण लगे चन्द्रमा की भाँति विवर्ण हो रहा है और आँखें डबडबा रही हैं। भाइयों से श्रीराम ने कहा– पुरवासियों के मध्य मेरे और सीता के सम्बन्ध में महान् अपवाद फैला है। उन सब की वह घृणायुक्त चर्चा मेरे मर्मस्थल को विदीर्ण किये देती है। मैं और सीता, दोनों ही महानात्माओं के सत्कुलों में जन्मे हैं। लक्ष्मण! तुम तो जानते हो कि लंका में ही जानकी के विषय में मुझे यह विचार आया था कि इतने दिन यहाँ रह लेने पर मैं इसे अयोध्या में कैसे ले जा सकूंगा? लक्ष्मण! पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए सीता ने अग्नि में प्रवेश किया। अग्निदेव ने उसे निर्दोष बताया, सभी देवों ने उसे निष्पाप कहा तथा देवराज इन्द्र ने सीता को मेरे हाथ सौंपा। मेरा अन्तरात्मा जानता है कि सीता पवित्र है। परन्तु अब यह महान् अपवाद फैलने लगा है। बन्धुओ! मैं लोकनिन्दा के भय से

अपने प्राणों और तुम सबको भी त्याग सकता हूँ, फिर सीता को त्यागना कौन बड़ी बात है ? अतः लक्ष्मण! यद्यपि शोकसागर में डुबाने वाला इससे बड़ा और कोई दुःख दिखाई नहीं देता, फिर भी कल सबेरे ही तुम सुमन्त्र के द्वारा संचालित रथ पर आरूढ़ हो सीता को भी उसी पर चढ़ाकर राज्य की सीमा के बाहर वहाँ छोड़ दो जहाँ गंगा के उस पार तमसा के तट पर महात्मा वाल्मीकि का दिव्य आश्रम है। इस सम्बन्ध में मुझसे किसी प्रकार की कोई दूसरी बात नहीं कहनी चाहिये। सीता ने पहले मुझसे कहा था कि वह गंगातट पर ऋषियों के आश्रम देखना चाहती है, अतः उसकी यह इच्छा भी पूर्ण की जाय। इस प्रकार कहते-कहते श्री राम के नेत्र आँसुओं से भर गये और उन्होंने दीर्घ निःश्वास लिया।

प्रातःकाल रथ तैयार हो जाने पर लक्ष्मण सीता के पास जाकर बोले– देवि! आपने महाराज से मुनियों के आश्रम पर जाने के लिए वर माँगा था। मैं आपको गंगा-तट पर स्थित ऋषियों के सुन्दर आश्रम तक पहुँचा दूंगा। यह सुनकर सीता को बड़ा हर्ष हुआ और वे चलने को तैयार हो गयीं। सीता को रथ पर लेकर लक्ष्मण वन की ओर चल दिये। सीता ने लक्ष्मण से कहा– मैं बहुत से अपशकुन देख रही हूँ और अपने हृदय को अस्वस्थ-सा पा रही हूँ। तुम्हारे भ्रातृवत्सल भाई कुशल से रहें। सबका कल्याण हो। गोमती के तट पर एक रात बिताकर प्रातःकाल फिर रथ पर चढ़कर वे गंगा के तट पर जा पहुँचे। लक्ष्मण भागीरथी की जलधारा तक पहुँचकर उच्च स्वर से फूट-फूट कर रोने लगे। सीता चिन्तित होकर बोलीं–लक्ष्मण! यह क्या? तुम रोते क्यों हो ? श्रीराम तो मुझे भी अपने प्राणों से बढ़कर प्रिय हैं, परन्तु मैं तो इस प्रकार शोक नहीं कर रही हूँ। तुम ऐसे बालक जैसे मत बनो। मुझे गंगा के उस पार ले चलो और तपस्वी मुनियों के दर्शन कराओ। तत्पश्चात् हम पुनः अयोध्यापुरी को लौट चलेंगे। सीता की बात सुनकर लक्ष्मण ने आँखें पौंछ कर नाविकों को बुलाया और नाव पर चढ़ाकर सीता को गंगा के उस पार पहुँचाया।

गंगा-पार पहुँचने के बाद लक्ष्मण के नेत्रों में फिर आँसू आ गये और वे हाथ जोड़कर सीता से बोले– श्रीराम ने बुद्धिमान् होकर भी मुझे यह काम सौंपा है जिसके कारण लोक में मेरी बड़ी निन्दा होगी। मेरी मृत्यु हो जाय तो अच्छा है, पर इस कार्य में लगाना उचित नहीं है। आप प्रसन्न हों, मुझे कोई दोष न दें। यह कहकर पृथ्वी पर गिर पड़े। लक्ष्मण की यह अवस्था देखकर सीता ने कहा– मैं कुछ समझ नहीं पाती हूँ। ठीक-ठीक बताओ। लक्ष्मण दुःखी मन से नीचे मुँह किये बोले– जनपद में आपके विषय में जो भयंकर अपवाद फैला है, उससे श्रीराम का हृदय संतप्त हो उठा। आप मेरे सामने निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं, तो भी महाराज ने केवल लोकापवाद से डरकर आपको त्याग दिया है। यहाँ महर्षियों के पावन और मनोरम आश्रम हैं। आप विषाद न करें। यहीं हमारे पिता दरशरथ के सखा महामुनि वाल्मीकि रहते हैं, आप उन्हीं का आश्रय ले सुखपूर्वक रहें। उस से आपका कल्याण होगा।

लक्ष्मण की यह कठोर बात सुनकर सीता मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। चेतना आने पर उन्होंने दीन वाणी में लक्ष्मण से कहा– निश्चय ही विधाता ने मेरे शरीर को केवल दुःख

भोगने के लिए ही रचा है। मैंने पूर्व-जन्म में कौन-सा ऐसा पाप किया था जो शुद्ध आचरण होने पर भी महाराज ने त्याग दिया! यदि मुनिजन मुझसे पूछेंगे कि महात्मा श्रीराम ने किस अपराध पर तुम्हें त्याग दिया है, तो मैं अपना कौन-सा अपराध बताऊंगी ? मैं अपने जीवन का अभी गंगा जी के जल में विसर्जन कर देती, किन्तु इस समय ऐसा करने से मेरे पतिदेव का राजवंश नष्ट हो जायेगा। लक्ष्मण! तुम वही करो जो तुम्हें आज्ञा दी है। सभी सासुओं और महाराज के चरणों में मस्तक नवाकर मेरी ओर से कुशल पूछना। महाराज को मेरा संदेश कह देना कि रघुनन्दन! वास्तव में तो आप जानते हैं कि सीता शुद्धचरित्रा है। मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है, क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही हैं। पुरवासियों के साथ वैसा ही बर्ताव करें, जैसा अपने भाइयों के साथ करते हैं। मुझे अपने शरीर के लिए कुछ भी चिन्ता नहीं है। लक्ष्मण! मेरी ओर से सारी बातें तुम भी रघुनाथ जी से कहना और आज भी मुझे देख जाओ। मैं इस समय ऋतुकाल का उल्लंघन करके गर्भवती अवस्था में हूँ। लक्ष्मण का मन बहुत दुःखी हो गया और कुछ सोचकर कहा– शोभने! आप यह मुझसे क्या कह रही हैं! मैंने पहले भी आपका सम्पूर्ण रूप कभी नहीं देखा, केवल आपके चरणों के ही दर्शन किये हैं। फिर आज यहाँ वन के भीतर श्रीराम की अनुपस्थिति में मैं आपकी ओर कैसे देख सकता हूँ? यह कहकर लक्ष्मण ने सीता को प्रणाम किया तथा गंगा पार कर दूसरी ओर आ गये। लक्ष्मण के अदृश्य होते ही सीता पर गहरा शोक छा गया तथा वे उस वन में ऊँचे स्वर से रोने लगीं।

जहाँ सीता रो रही थीं, वहाँ से कुछ दूर पर ऋषियों के कुछ बालक थे। उन्होंने जाकर महामुनि वाल्मीकि को बताया कि भगवन! गंगा-तट पर किन्हीं नरेश की पत्नी हैं, वे रो रही हैं। आप स्वयं चलकर देख लें। मुनिकुमारों की बात सुनकर धर्मज्ञ मुनि ने वास्तविक बात को जान लिया और वें उस स्थान पर दौड़े हुए आये तथा मधुर वाणी में बोले– पतिव्रते! तुम राजा दशरथ की पुत्रवधू, महाराज श्रीराम की प्यारी पटरानी और राजा जनक की पुत्री हो। तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे परित्याग का जो सारा कारण है उसे मैंने अपने ज्ञान से जान लिया। दिव्य दृष्टि से मैं जानता हूँ कि तुम निष्पाप हो। इस समय तुम मेरे पास हो। अपने ही घर में आ गयी हो, ऐसा समझकर विषाद न करो। सीता ने हाथ जोड़कर कहा– जो आज्ञा। तब मुनि आगे-आगे और सीता उनके पीछे हो लीं। वाल्मीकि ने सीता का समुचित ध्यान रखने के लिए कहकर मुनि-पत्नियों के साथ में सौंप दीं और अपने आश्रम लौट आये।

मुनि के आश्रम में प्रवेश पायी सीता को देखकर लक्ष्मण बहुत दुःखी हुए और सुमन्त्र से बोले– भला श्रीराम को इससे बढ़कर दुःख क्या होगा कि उन्हें अपनी पवित्र आचरण वाली पत्नी का परित्याग करना पड़ा! पुरवासियों की बात सुनकर ऐसा करना मुझे निर्दयतापूर्ण कर्म जान पड़ता है। यह सुनकर सुमन्त्र ने कहा– सीता के विषय में आपको संतप्त नहीं होना चाहिये। लक्ष्मण! यह बात ब्राह्मणों ने आपके पिताजी के रहते ही जान ली थी। उन दिनों दुर्वासा जी ने कहा था कि श्रीराम निश्चय ही बहुत अधिक दुःख उठायेंगे।

श्रीराम का शीघ्र ही अपने प्रियजनों से वियोग होगा। श्रीराम दीर्घ काल बाद सीता-लक्ष्मण-भरत तथा शत्रुघ्न को भी त्याग देंगे। दुर्वासा ने जो बात कही थी उसे किसी को कहने का निषेध (मनाही) किया गया था। परन्तु सौम्य! यद्यपि कहना नहीं चाहिये, तो भी आप सुनने के लिए उत्सुक हों तो सुनिये।

लक्ष्मण की प्रेरणा से सुमन्त्र दुर्वासा जी की कही हुई बात सुनाने लगे- एक बार महात्मा वसिष्ठ के यहाँ दुर्वासा जी ठहरे थे। उसी अवसर पर महाराज दशरथ आये और पूछा- भगवन! मेरा वंश कितने समय तक चलेगा? मेरे राम की कितनी आयु होगी तथा अन्य सभी पुत्रों की भी आयु कितनी होगी? राम के जो पुत्र होंगे, अनकी आयु कितनी होगी? आप मेरे वंश की गति बताइये। दुर्वासा मुनि कहने लगे- प्राचीन काल की बात है, देवताओं से पीड़ित दैत्यों ने महर्षि भृगु की पत्नी की शरण ली। इससे कुपित होकर भगवान् विष्णु ने चक्र से भृगु-पत्नी का सिर काट दिया। पत्नी का वध देखकर भृगु जी कुपित हो गये और भगवान् विष्णु को शाप दिया कि आपको मनुष्यलोक में जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षों तक आपको पत्नी-वियोग का कष्ट सहना पड़ेगा। शाप देकर भृगु मुनि को पश्चात्ताप हुआ और वे भगवान् विष्णु की आराधना करने लगे। तब भगवान् विष्णु ने कहा- महर्षि! सम्पूर्ण जगत् का प्रिय करने के लिए मैं इस शाप को ग्रहण करता हूँ। वे ही भगवान् विष्णु भूतल पर आकर राम नाम से विख्यात आपके पुत्र हुए हैं। वे ही श्री राम दीर्घकाल तक अयोध्या के राजा होकर रहेंगे। ग्यारह सहस्र (११०००) वर्षों तक राज्य करके अन्त में ब्रह्मलोक को पधारेंगे। श्रीराम को सीता के गर्भ से दो पुत्र प्राप्त होंगे। श्रीराम सीता के दोनों पुत्रों का अयोध्या से बाहर अभिषेक करेंगे, अयोध्या में नहीं। विधाता का ऐसा ही विधान है। आप संताप न करें। धैर्य धारण करें। यह सुनकर लक्ष्मण को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ और बोले–बहुत ठीक, बहुत ठीक।

दूसरे दिन दोपहर होते-होते वे अयोध्यापुरी आ गये तथा श्रीराम को समाचार दिया और उन्हें खिन्न देखकर निवेदन किया कि आप शोक न करें, काल की ऐसी ही गति है। संसार में जितने संचय हैं, उन सबका अन्त विनाश है; उत्थान का अन्त पतन है, संयोग का अन्त वियोग है, और जीवन का अन्त मरण है। आपके लिए अपने शोक को वश में रखना कौन बड़ी बात है! यदि आप दुःखी रहेंगे तो जिसके कारण आपने मैथिली का त्याग किया, वह अपवाद आपके ऊपर फिर आ जायेगा। अतः आप शोकबुद्धि का त्याग करें, संतप्त न हों। श्रीराम ने कहा- तुम ठीक कहते हो। तुमने मेरे आदेश का पालन किया, मुझे सन्तोष है। अब मैं दुःख से निवृत्त हो गया।

५

राम-राज्य की कतिपय घटनाएं; श्रीराम द्वारा प्राचीन कथा-कथन–नृग और निमि की कथाएं, वसिष्ठ का पुनर्जन्म, यथाति की कथा; कार्यार्थी श्वान को न्यायदान।

श्रीराम ने प्रसन्न होकर कहा– लक्ष्मण! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। अब मेरे मन में जो बात है उसे सुनो और वैसा ही करो। मुझे पुरवासियों के काम किये बिना चार दिन बीत चुके हैं, यह बात मेरे मर्मस्थल को विदीर्ण कर रही है। मन्त्रियों और अन्य राजपुरुषों को बुलाकर काम में लगाओ। जो राजा प्रतिदिन पुरवासियों का कार्य नहीं करता, वह घोर नरक में पड़ता है। सुना जाता है कि पहले नृग नाम से एक प्रसिद्ध राजा राज्य करते थे। उन नरेश ने पुष्कर तीर्थ में जाकर एक करोड़ गायें दान दीं। अन्य गायों के साथ-साथ एक अग्निहोत्री निर्धन ब्राह्मण की गाय बछड़े सहित वहाँ चली गयी और राजा ने संकल्प करके उसे किसी ब्राह्मण को दे दिया। जिसकी गाय खो गयी थी, वह ब्राह्मण उस खोयी गाय को जहाँ-तहाँ दूर-दूर तक ढूँढता फिरा। अन्त में एक दिन कनखल (हरिद्वार के समीप) पहुँचकर उसने अपनी गाय एक ब्राह्मण के पास देखी और अपने दिये शबला नाम से उसे पुकारा। गौ उस स्वर को सुनकर उसके पीछे हो ली। जो ब्राह्मण उसका पालन करता था उसने कहा– ब्रह्मन्! यह गौ मेरी है। इसे राजा नृग ने मुझे दान में दिया है। दोनों में विवाद हो गया और वे राजा नृग के पास गये। राजभवन के सामने वे अनेक दिन और रात टिके रहे, परन्तु उन्हें राजा का न्याय नहीं प्राप्त हुआ। इससे उन दोनों को क्रोध हुआ और राजा को शाप देते हुए वाक्य बोले–अपने विवाद का निर्णय कराने की इच्छा से आये हुए प्रार्थियों के कार्य की सिद्धि के लिए तुम उन्हें दर्शन नहीं देते हो, इसलिए तुम गिरगिट हो जाओगे। जब वासुदेव नाम से विख्यात भगवान् विष्णु अवतार लेंगे, उस समय वे ही तुम्हें इस शाप से छुड़ायेंगे। इस प्रकार राजा नृग उस शाप का उपभोग कर रहे हैं। कार्यार्थी पुरुषों का विवाद यदि निर्णीत न हो तो वह राजाओं के लिए महान् दोष कराने वाला होता है। अतः कार्यार्थी मनुष्य शीघ्र मेरे सामने उपस्थित हों। लक्ष्मण! तुम जाओ और राजद्वार पर प्रतीक्षा करो कि कौन कार्यार्थी पुरुष आ रहा है।

यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा कि उन ब्राह्मणों ने थोड़े-से ही अपराध पर राजा नृग को ऐसा महान् शाप दिया, इस पर राजा नृग ने क्या कहा? श्रीराम ने कहा–जब राजा नृग को यह पता लगा कि वे दोनों चले गये, तब उन्होंनें मन्त्रियों और पुरवासियों को बुलाकर दुःख से कहा– नारद और पर्वत मेरे पास आये थे और (शाप की बात बताकर) मुझे बहुत बड़ा भय देकर चले गये। अतः इस वसु नामक राजकुमार को राज्य पर अभिषिक्त कर दिया जाय तथा शिल्पी मेरे लिए अलग-अलग ऋतुओं के अनुकूल तीन गड्ढे तैयार करें जहाँ रहकर मैं उस शाप को भोगूंगा। उनके पास छाया वाले वृक्ष और लताएं भी रोप दी जायें। फिर अपने पुत्र को राज्य-व्यवस्था तथा कर्तव्य समझाकर राजा ने कहा– *पूर्वजन्म में किये गये कर्म के अनुसार मनुष्य उन्हीं वस्तुओं को पाता है जिन्हें पाने का अधिकारी है*, अतः तुम विषाद न करो। और तब राजा नृग ने गड्ढे में प्रवेश किया।

यह कहकर श्रीराम ने दूसरी कथा सुनायी। महात्मा इक्ष्वाकु के पुत्रों में निमि नामक एक राजा हो गये हैं। उन्होंने गौतम आश्रम के निकट देवपुरी के समान एक नगर बसाया।

उसका नाम वैजयन्त रक्खा। तदनंतर उन्होंने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया जो दीर्घ काल तक चलते रहने वाला हो। उन्होंने वसिष्ठ, अत्रि, अंगिरा, तथा भृगु को आमन्त्रित किया। महर्षि वसिष्ठ ने कहा– देवराज इन्द्र ने एक यज्ञ के लिए मेरा पहले से वरण कर लिया है। इसलिए जब तक वह समाप्त न हो जाय तुम प्रतीक्षा करो। वसिष्ठ के चले जाने के बाद महर्षि गौतम ने आकर यज्ञ को पूरा करा दिया। इन्द्र के यज्ञ से लौटकर वसिष्ठ ने देखा कि मेरी प्रतीक्षा न करके गौतम ने यज्ञ पूरा करा दिया तो वे क्रोध से भर गये और राजा से मिलने दो घड़ी वहाँ बैठे रहे। राजर्षि निमि निद्रा के वशीभूत हो सो गये थे। राजा उनसे मिले नहीं, इस कारण राजर्षि को लक्ष्य करके वसिष्ठ जी बोले– तुमने मेरी अवहेलना की है, इसलिए तुम्हारा यह शरीर अचेतन होकर गिर जायेगा। तदनन्तर राजा की नींद खुली। वे शाप की बात सुनकर क्रोध से मूर्च्छित हो गये और वसिष्ठ से बोले– मुझे आपके आगमन की बात ज्ञात नहीं थी, इसलिए मैं सो रहा था, परन्तु आपने क्रोध से कलुषित शाप दे दिया। अतः ब्रह्मर्षे! आपका शरीर भी अचेतन होकर गिर जायेगा। दोनों परस्पर शाप दे विदेह हो गये। दोनों का प्रभाव फिर भी अपनी सदेह अवस्था के समान था।

यह सुनकर लक्ष्मण ने पूछा– वे ब्रह्मर्षि और भूपाल दोनों ही देवताओं के भी सम्मान-पात्र थे। फिर उन्होंने नूतन शरीर कैसे ग्रहण किया ? यह पूछने पर श्रीराम ने कहा कि देहत्याग के बाद दोनों वायुरूप हो गये। वसिष्ठ जी अपने पिता ब्रह्मा जी के पास गये और प्रणाम करके कहा कि शाप के कारण मैं देहहीन हो गया हूँ। देहहीनों को महान् दुःख होता है क्योंकि उनके सभी कर्म लुप्त हो जाते हैं। अतः आप दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिए मुझ पर कृपा करें। ब्रह्मा जी ने कहा– तुम मित्रावरुण (मित्र और वरुण) से प्रकट हुए तेज में प्रविष्ट हो जाओ, उससे वहाँ भी पुनः अयोनिज रूप में महान् धर्मयुक्त होकर उत्पन्न होओगे। वसिष्ठ जी वरुणलोक गये। उन्हीं दिनों मित्र देवता भी वरुण के अधिकार का पालन कर रहे थे। उसी समय अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी उस स्थान पर आयी। वरुण के मन में उर्वशी के लिए उल्लास प्रकट हुआ। उन्होंने उसे साहचर्य के लिए आमन्त्रित किया। उर्वशी ने कहा– मित्र देवता ने पहले ही मेरा वरण कर लिया। यह सुनकर वरुण ने कहा कि यदि तुम मुझसे मिलन नहीं चाहती तो मैं इस देवनिर्मित कुम्भ में अपना यह तेज छोड़ दूंगा। यह सुनकर उर्वशी को प्रसन्नता हुई और मित्र देवता के पास गयी। वे कुपित होकर बोले– दुराचारिणि! तूने दूसरे पति का क्यों वरण किया ? अपने इस पाप के कारण कुछ काल तक तू मनुष्यलोक में निवास करेगी। काशीनरेश पुरूरवा तेरे पति होंगे। तब उर्वशी प्रतिष्ठानपुरी (प्रयाग-झूसी) में पुरूरवा के पास गयी। उनसे उसके गर्भ से आयु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके पुत्र महाराज नहुष थे। वृत्रासुर पर वज्र का प्रहार करके ब्रह्महत्या के भय से जब इन्द्र छिप गये थे तब नहुष ने ही इन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित होकर देवलोक पर राज्य किया।

कुछ काल के पश्चात् उक्त तेजपूर्ण कुम्भ से तेजोमय वसिष्ठ मुनि का प्रादुर्भाव हुआ। पूर्वकाल में उससे अगस्त्य ऋषि का उद्भव हुआ था। तेजस्वी वसिष्ठ इक्ष्वाकु कुल के देवता

हुए। सौम्य! निमि का वृत्तान्त सुनो। राजा निमि के देहहीन होने पर ऋषियों ने स्वयं ही यज्ञ को पूरा किया और राजा निमि के शरीर को भी लेप आदि से सुरक्षित रक्खा। यज्ञ समाप्त हो जाने के पश्चात् भृगु ने राजा के जीवात्मा से कहा– यदि चाहो तो मैं पुनः तुम्हारे जीव को इस शरीर में ला दूंगा। यज्ञ से प्रसन्न हुए देवों ने भी कहा– राजर्षि! वर माँगो, तुम्हारे जीव-चैतन्य को कहाँ स्थापित किया जाय ? उन्होंने कहा– सुरश्रेष्ठ! मैं समस्त प्राणियों के नेत्रों में निवास करने का इच्छुक हूँ। देवों ने कहा– बहुत अच्छा, तुम वायुरूप होकर समस्त प्राणियों के नेत्रों में विचरते रहोगे। ऐसा कहकर देवगण चले गये। फिर ऋषियों ने निमि के शरीर को अरणि पर रखकर मथना आरम्भ किया। तब उससे उनके पुत्र मिथि उत्पन्न हुए जो मथन के कारण ही मिथि और जनन के कारण जनक कहलाये तथा जीवरहित शरीर से प्रकट होने के कारण विदेह कहलाये। मिथि नाम होने से जनक का वंश मैथिल कहलाया।

यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा– शूरवीर क्षत्रिय होते हुए और उस पर भी यज्ञदीक्षा लिये हुए राजा निमि ने वसिष्ठ के प्रति उचित बर्ताव नहीं किया। लक्ष्मण के ऐसा कहने पर श्रीराम ने कहा– वीरता के साथ क्षमा का गुण सब में नहीं होता। मैं तुम्हें राजा ययाति की कथा सुनाता हूँ। राजा ययाति ने असह्य रोष को सत्त्वगुण का अनुगमन कर सहन कर लिया था। नहुष के पुत्र ययाति की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम शर्मिष्ठा था जो दैत्यकुल की थी तथा वृषपर्वा की पुत्री थी। दूसरी शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी थी। शर्मिष्ठा से पुरु तथा देवयानी से यदु उत्पन्न हुए। पुरु राजा को अधिक प्रिय थे, इससे यदु के मन में बड़ा दुःख हुआ और माता से बोले– तुम दैवी गुणयुक्त भृगुवंशी शुक्राचार्य के कुल में उत्पन्न हुई हो, तो भी अपमान सहती हो। हम दोनों एक साथ अग्नि में प्रवेश कर जायें। यदि तुम्हें सहन करना है, तो मुझे प्राणत्याग की आज्ञा दो। यह सुनकर देवयानी ने अपने पिता शुक्राचार्य का स्मरण किया। पिता ने पूछा– क्या बात है? देवयानी ने कहा– राजर्षि ययाति आपके प्रति अनादर का भाव रखने के कारण मेरी भी अवहेलना करते हैं। मैं विष खा लूंगी अथवा अग्नि या जल में कूद पड़ूंगी, पर अब जी नहीं सकती। तब शुक्राचार्य ने कहा कि यदि ययाति अवहेलना करता है तो वह जराजीर्ण वृद्ध के समान हो जायेगा। यह शाप देकर वे चले गये।

ययाति को वृद्धावस्था प्राप्त हुई जो दूसरे की जवानी पाकर बदली जा सकती थी (ययाति की प्रार्थना सुनकर इतनी छूट शुक्राचार्य ने दे दी थी)। उसने यदु से कहा– तुम मेरी जरावस्था को ले लो, मैं अपनी भोगविषयक इच्छा पूर्ण कर लूँ। यदु ने उत्तर दिया कि आपका लाड़ला पुत्र पुरु ही अब आपकी इस वृद्धावस्था को ग्रहण करे। यह सुनकर ययाति ने पुरु से कहा। पुरु ने 'यह अवसर पाकर मैं धन्य हो गया, मैं अनुगृहीत हुआ' कहकर स्वीकार कर लिया। तदनन्तर राजा ययाति ने सहस्रों वर्षों तक पृथ्वी का पालन किया। फिर उन्होंने पुरु को उसकी धरोहर युवावस्था वापस कर दी तथा उसका राज्याभिषेक किया और कुपित होकर यदु से कहा– यदो! मैंने दुर्जय क्षत्रिय के रूप में तुम जैसे राक्षस को जन्म दिया, इसलिए तुम भयंकर राक्षसों और यातुधानों को जन्म दोगे जो तुम्हीं जैसे दुर्विनीत होंगे। तुम

चन्द्रवंश की मर्यादा से भ्रष्ट हो जाओगे। ऐसा कहकर उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश किया और शरीर को त्याग दिया। शुक्राचार्य के शाप को ययाति ने धारण किया, परन्तु राजा निमि वसिष्ठजी के शाप को सहन नहीं कर सके।

राजसभा नियमित बैठती थी। श्रीराम ने ऐसे ही एक दिन जब लक्ष्मण से कहा कि कार्यार्थियों को बारी-बारी से बुलाओ, तो लक्ष्मण द्वार पर गये, परन्तु वहाँ कोई नहीं था। श्रीराम के राज्य-शासन करते समय न शारीरिक रोग होते थे, न मानसिक चिन्ताएं ही सताती थीं और न ही बाल-मृत्यु होती थी। सबका धर्मपूर्वक शासन होता था, इसलिए कभी कोई कार्यार्थी दिखाई नहीं देता था। एक दिन द्वार पर एक श्वान (कुत्ता) खड़ा था जो बारंबार भौंक रहा था। लक्ष्मण ने कहा– निर्भय होकर बताओ, तुम्हारा क्या काम है? कुत्ते ने कहा– मैं श्रीराम के समक्ष ही बताऊंगा। उपस्थित होने पर कुत्ते ने कहा– प्रभो! सर्वार्थसिद्ध नाम के एक भिक्षु ब्राह्मण ने आज अकारण मुझ पर प्रहार किया है। तत्काल ही सर्वार्थसिद्ध बुलाये गये। आने पर श्रीराम ने उन्हें कुत्ते द्वारा कहा गया उनका अपराध बताया। यह सुनकर सर्वार्थसिद्ध ने कहा कि यह श्वान बीच मार्ग में खड़ा था। कहने पर भी नहीं हटा। यह मार्ग नहीं छोड़ रहा था और मैं भूखा था। मुझे क्रोध चढ़ आया और इसके सिर पर डंडा दे मारा। मैं अपराधी हूँ। दण्ड दीजिये। श्रीराम ने सभासदों से कहा– आप बतायें, इन्हें कौन-सा दण्ड दिया जाय? सभी ने कहा– ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड नहीं मिलना चाहिये। इस पर कुत्ते ने कहा– महाराज! इन्हें कालञ्जर का कुलपति (महन्त) बना दीजिये। यह सुनकर श्रीराम ने उस ब्राह्मण को कालञ्जर के मठ का महन्त बना दिया। तब श्रीराम से सचिव मुस्कराते हुए बोले– महाराज! यह दण्ड नहीं है, यह तो वर दे दिया गया है। श्रीराम ने कहा– किस कर्म का परिणाम क्या होता है अथवा उससे जीव की कैसी गति होती है, इसका तत्त्व तुम लोग नहीं जानते। यह श्वान कारण जानता है। तत्पश्चात् श्रीराम के पूछने पर कुत्ते ने कहा– रघुनन्दन! मैं पहले उसी मठ का कुलपति था। न्यायोचित कार्य करता था तथा समस्त प्राणियों के हितसाधन में संलग्न रहता था, तो भी (कर्तव्य में कहीं भूलचूक हो जाने से) मुझे यह घोर अवस्था प्राप्त हुई। फिर जो ऐसा क्रोधी, अविवेकी और अधर्मी है, वह तो मठाधीश होकर अपने साथ अपनी सात-सात पीढ़ियों को भी नरक में गिरा कर रहेगा। इसलिए किसी भी दशा में मठाधीश का पद नहीं ग्रहण करना चाहिये। जिसे पुत्र, पशु और बन्धु-बान्धवों सहित नरक में गिरा देने की इच्छा हो, उसे देवताओं, गौओं और ब्राह्मणों का अधिष्ठाता बना दें।

६

लवणासुर का आतंक, शत्रुघ्न का मथुरा के राजापद पर अभिषेक; लवणासुर-वध।

श्रीराम के पास यमुनातीरवासी ऋषियों सहित च्यवन मुनि का आगमन हुआ। उन्होंने महान् दैत्य मधु के पुत्र लवण के अत्याचार के विषय में बताया तथा कहा कि मधु के धर्मपूर्ण

कार्यों से प्रसन्न होकर शिव ने एक भयंकर शूल दिया था जो अब लवण के पास है तथा वह तपस्वी मुनियों को बड़ा संताप दे रहा है। यह सुनकर श्रीराम ने लवण के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की तथा शत्रुघ्न को यह दायित्व सौंपा कि वे लवणासुर का विनाश करें। श्रीराम ने शत्रुघ्न से कहा– तुम मधु के पुत्र लवणासुर को मारकर धर्मपूर्वक वहाँ राज्य का शासन करो। यमुना के तट पर सुन्दर नगर बसाकर जनपदों की स्थापना करो। जो किसी राजा के वंश का उच्छेद करके उसकी राजधानी में दूसरे राजा को स्थापित नहीं करता, उसे अराजकता में छोड़ देता है, वह नरक में पड़ता है।

श्रीराम ने शत्रुघ्न का राजा के पद अभिषेक किया तथा उन्हें एक दिव्य अमोघ वाण दिया और कहा कि इससे तुम लवणासुर को अवश्य मार डालोगे। लवण के पास जो महादेव जी का दिया शूल है, उसे लेकर वह अपने विपक्षी को भस्म कर देता है। जिस समय उसके पास शूल न हो और वह नगर के बाहर हो, तभी उसे युद्ध के लिए ललकारो। महल में घुसने के पूर्व ही उसे मार डालो, अन्यथा शूल के कारण वह अवध्य रहेगा।

एक बहुत बड़ी सेना तथा धन-धान्य व अन्य सामग्री के साथ श्रीराम ने शत्रुघ्न को भेजा। तीसरे दिन शत्रुघ्न सेनासहित वाल्मीकि के आश्रम पर पहुँचे और वहाँ ठहरने की अनुमति माँगी। मुनि वाल्मीकि ने उनका सत्कार किया। शत्रुघ्न ने पूछा– मुने! इस आश्रम के निकट जो यह यज्ञ-वैभव है, यहाँ किस नरेश ने यज्ञ किया था? वाल्मीकि ने बताया कि तुम्हारे पूर्वज राजा सुदास थे जिनका वीरसह या मित्रसह नामक पुत्र हुआ। एक दिन मित्रसह ने वन में दो राक्षस देखे और उनमें से एक को मार डाला। दूसरे राक्षस ने यह देखकर कहा कि तुमने मेरे निरपराध साथी को मार डाला है, इसलिए मैं बदला लूंगा। उन्हीं मित्रसह ने यहाँ अश्वमेध महायज्ञ का अनुष्ठान किया। वसिष्ठ उस यज्ञ के संरक्षक बनकर उस की रक्षा कर रहे थे। उस यज्ञ की समाप्ति के पूर्व वह राक्षस वसिष्ठ जी का रूप धारण करके राजा के पास आया और बोला– यज्ञ की समाप्ति का दिन है, अतः तुम शीघ्र मुझे मांसयुक्त भोजन दो। कोई विचार मत करो। यह सुनकर राजा मित्रसह ने रसोइयों से मांसयुक्त हविष्य तैयार करने को कहा। ऐसी अटपटी बात सुनकर रसोइये के मन में घबराहट उत्पन्न हो गयी। यह देखकर उस राक्षस ने स्वयं ही रसोइये का वेष बना लिया और मनुष्य का मांस लाकर राजा को दे दिया। राजा ने उस मांसयुक्त भोजन को वसिष्ठ के सामने रक्खा। थाली में मानव-मांस का भोजन परोसा देखकर वसिष्ठ क्रोध से भर गये और बोले– तुम मुझे ऐसा भोजन देना चाहते हो, इसलिए यही तुम्हारा भोजन होगा। यह सुनकर सौदास (मित्रसह) ने भी कुपित होकर शाप देना चाहा, तभी उनकी पत्नी ने रोक दिया। तब राजा ने उस क्रोधमय जल को नीचे डाल दिया और अपने दोनों पैरों को सींच लिया। उससे तत्काल ही उनके पैर चितकबरे हो गये। तभी से राजा सौदास कल्माषपाद के नाम से जाने जाने लगे। तदनन्तर राजा ने वसिष्ठ मुनि से कहा कि आपका ही रूप धारण करके किसी ने मुझे ऐसा भोजन देने को प्रेरित किया था। मित्रसह की बात सुनकर और राक्षस की करतूत समझकर

उन्होंने राजा से कहा कि जो कह दिया वह तो व्यर्थ नहीं किया जा सकता, परन्तु दूसरा वर देता हूँ कि बारह वर्ष पूरे होने पर इस शाप का अन्त हो जायेगा और तुम्हें इस बात का स्मरण भी नहीं रहेगा।

७
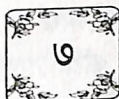
लव-कुश का जन्म; एक बालक की अकाल-मृत्यु, नारद द्वारा कारण बताये जाने पर श्रीराम द्वारा पाखंडियों को दण्ड दिया जाना; अगस्त्य मुनि से वार्तालाप।

जिस रात शत्रुघ्न वहाँ थे, उसी रात सीता जी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। ऋषि ने उनके नाम कुश और लव रक्खे। उस समय आधी रात के समय श्रीराम और सीता के नाम, गोत्र की ध्वनि शत्रुघ्न के कानों में पड़ी। वे सीता जी की पर्णशाला में गये और बोले– माता! यह बड़े सौभाग्य की बात है। सबेरा होने पर शत्रुघ्न ने वहाँ से आगे प्रस्थान किया।

शत्रुघ्न ने च्यवन मुनि से लवणासुर का बल पूछा तो उन्होंने बताया कि इक्ष्वाकुवंशी राजा मान्धाता तीनों लोकों में विख्यात पराक्रमी थे, परन्तु जब वे लवणासुर को पराजित करने गये तो उसके शूल से उनका वध हो गया। राजन्! कल सबेरे जब तक वह राक्षस उस अस्त्र को न ग्रहण कर ले, तब तक ही तुम उसका वध कर सकोगे। प्रभातकाल होने पर वह राक्षस अपने नगर से बाहर निकला। इस बीच शत्रुघ्न हाथ में धनुष लेकर मधुपुरी के द्वार पर खड़े हो गये। राक्षस ने जब लौटकर देखा तो वह क्रुद्ध होकर शत्रुघ्न को अपशब्द कहने लगा। फिर दोनों में बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। तब शत्रुघ्न ने उस दिव्य वाण को चलाया जो तुरन्त ही उस राक्षस के हृदय को विदीर्ण करके पुनः शुत्रघ्न के पास आ गया।

शत्रुघ्न ने वहाँ पुरी बसायी तथा वह शूरसेन जनपद पूर्णतः बस गया। शत्रुघ्न को अयोध्या से आये बारहवाँ वर्ष हो गया, तब उन्होंने सोचा कि मुझे श्री राम का दर्शन करना चाहिये। शत्रुघ्न ने शूरसेन जनपद से प्रस्थान किया तथा वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर आ पहुँचे और वहाँ रात में ठहरे। वाल्मीकि जी ने लवणासुर-वध के लिए शत्रुघ्न की बड़ी प्रशंसा की। उस समय उन्होंने श्रीराम के चरित्र का वर्णन मधुर गीत के रूप में सुना। शत्रुघ्न को आश्चर्य हुआ, परन्तु मुनि से पूछना उन्होंने उचित नहीं समझा।

प्रातःकाल वे अयोध्या के लिए प्रस्थान कर गये और अयोध्या पहुँचकर श्रीराम को प्रणाम किया तथा सब समाचार बताया। सात दिन वहाँ रहकर शत्रुघ्न पुनः मधुरापुरी जाने के लिए रथ पर आरूढ़ हुए और चले गये।

एक दिन एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने मरे हुए बालक का शव लेकर राजद्वार पर आया। अपना शोक प्रकट करते हुए वह कह रहा था– पूर्वजन्म में मैंने ऐसा क्या पाप किया जिससे मैं अपने एकमात्र पुत्र को मृत देख रहा हूँ! मैंने न कभी असत्य भाषण किया, न किसी प्रकार की हिंसा करने का मुझे स्मरण है। फिर इस बालक की अकालमृत्यु किसके पाप से हुई? ऐसा

अनर्थ तो न देखा न सुना। निःसन्देह राजा राम से सम्बन्धित कोई महान् दुष्कर्म है जिससे इनके राज्य में अकालमृत्यु होने लगी है। श्रीराम ने उस ब्राह्मण का दुःख और शोक से भरा करुण क्रन्दन सुना। फिर अपने आठ मन्त्रियों को आमंत्रित किया और सब बात सुनायी। तभी नारद ने कहा– श्रीराम! जिस कारण से इस बालक की अकालमृत्यु हुई, वह बताता हूँ, उसे सुनकर अपना कर्तव्य निश्चित करिये। पहले सत्ययुग में केवल ब्राह्मण तपस्वी हुआ करते थे। ब्राह्मणों की ही प्रधानता थी। उस युग के पुरुष अकाल-मृत्यु से रहित होते थे। त्रेतायुग में समाज क्षत्रिय-बहुल हो गया। क्षत्रिय भी तपस्या करने लगे और शक्तिशाली हो गये। तब मनु आदि धर्म-प्रवर्तकों ने सर्वलोक-सम्मत चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की स्थापना की। त्रेतायुग में जीविका का साधन रजोगुणमूलक होने के कारण अधर्म का एक पाद इस भूतल पर स्थित हुआ। उसके प्रभाव से त्रेतायुग में ब्राह्मण अपने कर्तव्य से च्युत हो रहे हैं तथा अपने तपस्यारूपी कर्तव्य से अधिक वे अपनी प्रधानता बनाये रखने के लिए चिन्तित होकर पाखण्ड का भी सहारा लेने लगे हैं। ब्राह्मणों के कर्तव्यभ्रष्ट होने का प्रभाव क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों पर भी पड़ रहा है।

अतएव महाराज! आपके राज्य की किसी सीमा में सभी वर्णों के कुछ लोग पाखण्डपूर्ण आचरण में लिप्त हो गये हैं। उसी दोष के कारण इस बालक की मृत्यु हुई है।

नारद जी के वचन सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि ऐसी व्यवस्था करो कि बालक का शरीर विकृत या नष्ट न होने पाये। फिर उन्होंने मन ही मन पुष्पक का चिन्तन किया। उसी मुहूर्त में पुष्पक विमान आ गया। श्रीराम ने अपने मन्त्रियों को साथ लेकर भ्रमण के लिए प्रस्थान किया। राज्य के अधिकांश भाग की यात्रा कर लेने पर भी सर्वत्र धर्मपूर्ण आचरण ही देखने को मिला। किन्तु पर्याप्त भ्रमण के बाद श्रीराम को कहीं-कहीं पाखण्डपूर्ण आचरण में लिप्त तथा अपने कर्तव्यों से रहित व्यक्ति भी दिखाई दिये। श्रीराम ने राजा के कर्तव्य का पालन करते हुए ऐसे लोगों को कठोर दण्ड दिया जिसके परिणामस्वरूप धर्म के नाम पर पाखण्डपूर्ण आचरण उनके राज्य की सीमा में विलुप्त हो गये तथा सर्वत्र कर्तव्यपरायणता एवं सात्त्विकता की धारा बहने लगी।

यह देखकर सब देव प्रसन्न हुए तथा श्रीराम से वर माँगने के लिए कहा। राम ने कहा कि वह ब्राह्मण-पुत्र जीवित हो जाय, यही वर दें। वह बालक जीवित हो गया। फिर श्री राम देवताओं के साथ महर्षि अगस्त्य के जलशयन सम्बन्धी व्रत की दीक्षा के समापन को देखने गये। अगस्त्य मुनि ने श्रीराम का स्वागत किया तथा पाखंडियों के विनाश और बालक के जीवित होने की घटना को महान् कर्म बताया। मुनि अगस्त्य विश्वकर्मा का बनाया दिव्य आभूषण श्रीराम को देने लगे। तब श्रीराम ने कहा– विप्रवर! क्षत्रियों के लिए दान लेना निन्दित कर्म है, और विशेषतः ब्राह्मण से दान लेना तो और भी निन्दित है। फिर मैं आपसे यह कैसे ले सकता हूँ ? अगस्त्य मुनि ने कहा– सत्ययुग में सारी प्रजा बिना राजा के थी। इन्द्र देवों के राजा बनाये गये। तत्पश्चात् सारी प्रजा ने ब्रह्मा जी से अपने लिए भी राजा की

माँग की। तब सभी लोकपालों के तेज से क्षुप नामक राजा उत्पन्न हुए। अतएव देवों से प्राप्त अंश से राजा प्रजा का पालन करता है। (आप भी राजा होने के कारण सभी लोकपालों के तेज से सम्पन्न हैं और प्राप्त होने वाले भाग से प्रजापालन करते हैं) अतः आप ग्रहण करें। श्रीराम ने उसे स्वीकार करके पूछा कि यह आभूषण आपको कैसे प्राप्त हुआ?

अगस्त्य जी कहते हैं– हे राम! एक विस्तृत वन था, जो सौ योजन तक फैला था। उसमें कोई पशु और पक्षी नहीं था। उस वन का स्वरूप बहुत सुखदायी था। उसके मध्य में एक सरोवर था और सरोवर के पास ही एक आश्रम था जिसमें एक भी तपस्वी नहीं था। मैं एक रात उसमें रहकर प्रातःकाल स्नान आदि के लिए सरोवर के तट पर गया। उस समय मुझे एक शव दिखाई दिया। उसमें कहीं कोई मलिनता नहीं थी। यह क्या बात है, सोचता हुआ मैं वहाँ बैठ गया। उसी समय एक दिव्य विमान उतरता हुआ देखा जिसमें एक स्वर्गवासी देवपुरुष बैठे थे। उन्होंने नीचे उतरकर मेरे देखते-देखते उस शव का भक्षण किया और सरोवर में उतरकर हाथ-मुँह धोया तथा फिर विमान पर चढ़ने के लिए ऊपर आये। मैंने उनसे पूछा– आप कौन हैं और किसलिए ऐसा घृणित आहार ग्रहण करते हैं? यह सुनकर उन्होंने कहा– ब्रह्मन्! वह मेरे सुख-दुःख का कारण है, सुनिये। पूर्वकाल में मेरे पिता विदर्भ के राजा थे, उनका नाम सुदेव था और उनकी दो पत्नियाँ थीं। उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ मैं श्वेत हूँ तथा कनिष्ठ भाई का नाम सुरथ था। पिता के बाद मैं राजा बना। एक समय मुझे अपनी आयु का पता लग गया। तभी मैं राज्य पर अपने भाई सुरथ का अभिषेक करके वन में तपस्या के लिए गया। तपस्या करके मैंने ब्रह्मलोक प्राप्त किया। ब्रह्मलोक में भी मुझे भूख और प्यास बड़ा कष्ट देते हैं। एक दिन मैंने ब्रह्मा जी से कहा कि यह स्थान तो भूख-प्यास के कष्ट से रहित है, फिर ये मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ते? यह मेरे किस कर्म का परिणाम है? पितामह! मेरा आहार क्या है? यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले– तुम मर्त्य-लोक में पड़े अपने ही शरीर का मांस प्रतिदिन खाया करो। तुमने उत्तम तप करते हुए भी केवल अपने शरीर का पोषण किया। दानरूपी बीज बोये बिना कहीं कुछ भी नहीं उगता। तुमने देवताओं, पितरों एवं अतिथियों के लिए कभी थोड़ा-सा भी दान नहीं किया, केवल तपस्या करके यह लोक प्राप्त किया है, इसलिए ब्रह्मलोक में आकर भी तुम भूख-प्यास से पीड़ित हो। श्वेत! जब उस वन में महर्षि अगस्त्य पधारेंगे, तब तुम्हें इस कष्ट से छुटकारा मिलेगा। अपनी यह कथा सुनाकर श्वेत ने कहा– मुने! इस प्रकार मैं संकट में पड़ा हूँ। अपने ही शव का भक्षण करता हूँ, पर इसका क्षय नहीं होता। आप दृष्टिपथ में आ गये। आप ब्रह्मर्षि कुम्भज ही हैं, अन्यथा अन्य कोई यहाँ नहीं आ सकता। आप मेरा उद्धार करिये। आप मेरे इस आभूषण का दान ग्रहण करें और मुझे आपका कृपा-प्रसाद प्राप्त हो। यह दिव्य आभूषण सुवर्ण, धन, वस्त्र, भक्ष्य-भोज्य आदि वस्तुएं देता है। आप कृपा करें। तब उनके उद्धार के लिए मैंने यह आभूषण ले लिया। ज्यों ही मैंने उनसे दान ग्रहण किया, वह शव अदृश्य हो गया तथा राजर्षि श्वेत नित्यतृप्त होकर प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मलोक को चले गये।

अगस्त्य जी की बात सुनकर श्रीराम ने पूछा–भगवन्! वह भयंकर वन पशु-पक्षियों से रहित क्यों हो गया था ? महर्षि पुनः कहने लगे– सत्ययुग में राजा मनु इस भूतल पर शासन करते थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। उन्हें राजा पद पर स्थापित करके मनु ने कहा– पुत्र! तुम भूतल पर राजवंशों की सृष्टि करो। तुम दण्ड के द्वारा दुष्टों का दमन करते हुए प्रजा की रक्षा करो, परन्तु बिना अपराध के ही किसी को दण्ड न देना। इस प्रकार बहुत-सा संदेश दे मनु सनातन ब्रह्मलोक को चले गये।

इक्ष्वाकु के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनका सबसे छोटा पुत्र मूढ़ और विद्या-विहीन था। उन्होंने सोचा कि यह कभी दण्डित होगा, इसलिए उसका नाम दण्ड रक्खा। उसे विन्ध्य और शैवल पर्वत के बीच का घोर वनों वाला राज्य दे दिया। उसने शुक्राचार्य को पुरोहित बनाकर बहुत वर्षों तक वहाँ अकंटक राज्य किया। एक दिन वह शुक्राचार्य के आश्रम पर आया, वहाँ उनकी सुन्दर कन्या को देखकर मोहित हो गया। उसका कामजनित भाव देखकर कन्या ने कहा– राजेन्द्र! मैं शुक्र देवता की ज्येष्ठ पुत्री अरजा हूँ। मेरे पिता तुम्हारे गुरु हैं। बलपूर्वक मेरा स्पर्श न करो। मेरे पिता यदि कुपित हो जायें तो तुम्हें बड़ी भारी विपत्ति में डाल सकते हैं। अतः तुम सन्मार्ग से चलकर मेरे पिता से मुझे माँग लो, अन्यथा भयानक फल भोगना पड़ेगा। काम के अधीन हुए दण्ड ने मदोन्मत्त होकर उत्तर दिया– सुन्दरी! समय न बिताओ। तुम्हारे लिए मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। ऐसा कहकर उसने बलपूर्वक भुजाओं में भरकर समागम किया। यह अनर्थ करके दण्ड तुरन्त ही अपने नगर मधुमन्त चला गया। दो घड़ी बाद शिष्य द्वारा अरजा के साथ बलात्कार की घटना सुनकर शुक्राचार्य आश्रम पर आये तथा कहा– उस दुर्बुद्धि को उसके पापकर्म का फल अवश्य प्राप्त होगा। इस नरेश का सात रात के भीतर ही पुत्र, सेना और वाहनों सहित नाश हो जायेगा। उसका सौ योजन लम्बा-चौड़ा राज्य सात रात-दिन भीषण धूल की वर्षा से धूल में डूब जायेगा। फिर आचार्य ने अपने आश्रम के सभी निवासियों को दण्ड के राज्य से बाहर निवास करने को कहा। जब से ब्रह्मर्षि ने उस राजा को दण्डित करने के लिए शाप दिया, तभी से धूल में डूबकर नष्ट हुआ वह सारा स्थान दण्डकारण्य कहलाता है। यहाँ इस स्थान पर तपस्वी बस गये, इसलिए इसका नाम जनस्थान पड़ गया।

रात्रि में वहाँ निवास करके श्रीराम ने महर्षि कुम्भज से अपनी पुरी जाने की आज्ञा माँगी और कहा कि आपके दर्शन से मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ तथा अपने आप को पवित्र करने के लिए फिर कभी आपके दर्शन के लिए आऊंगा। यह सुनकर मुनि ने कहा– राम! आपके वचन शुभ और अद्भुत हैं। समस्त प्राणियों को पवित्र करने वाले तो आप ही हैं। आपका दर्शन पाने वाला पवित्र तथा देवों के लिए भी पूज्य हो जाता है। जो आपकी कथाएं कहते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। आप धर्मपूर्वक राज्य का शासन करें, क्योंकि आप ही संसार के परम आश्रय हैं। फिर मुनि को प्रणाम करके श्रीराम पुष्पक विमान पर बैठकर अयोध्यापुरी आ गये।
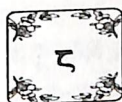
श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ; वाल्मीकि मुनि का लव-कुश के साथ आगमन; दोनों भाइयों द्वारा रामायण-गान।

श्रीराम ने भरत और लक्ष्मण को बुलाकर कहा कि मैं राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहता हूँ। दोनों इस विषय में मुझे परामर्श दो। भरत ने कहा– राजन्! पुत्र जैसे पिता को देखते हैं, उसी प्रकार आपके प्रति सब राजाओं का भाव है। आप ही समस्त पृथ्वी और प्राणियों के भी आश्रय हैं। फिर आप ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं जिसमें भूमण्डल के समस्त राजवंशों का विनाश दिखाई देता है? पृथ्वी पर जो पुरुषार्थी पुरुष हैं, उन सबका सभी के कोप से उस यज्ञ में संहार हो जायेगा। यह सुनकर श्रीराम ने कहा– भरत! तुम्हारी बात सुनकर मुझे हर्ष हुआ तथा तुम्हारी बात सारी पृथ्वी की रक्षा करने वाली है। अब मैं इस उत्तम यज्ञ से मन को हटा लेता हूँ।

लक्ष्मण ने कहा– रघुनन्दन! अश्वमेध यज्ञ समस्त पापों को दूर करने वाला, परम पावन, और दुष्कर है। आप उसका अनुष्ठान करें। ऐसा सुना गया है कि इन्द्र अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान से ही ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होकर पवित्र हुए थे।

यह कहकर लक्ष्मण ने कहा कि पहले देव और असुर मिलकर रहते थे। उन्हीं दिनों वृत्र नाम से प्रसिद्ध एक असुर था जिसका बड़ा आदर था। वह बहुत विशाल शरीर वाला था और सभी को आत्मीय समझकर प्यार करता था। उसे धर्म का यथार्थ ज्ञान था। उसके शासनकाल में पृथ्वी सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली थी। अन्न-धन-धान्य से प्रजा सम्पन्न रहती थी। एक समय वृत्रासुर के मन में तप का विचार हुआ और वह कठोर तप करने लगा। इसे देखकर इन्द्र दुःखी होकर भगवान् विष्णु के पास गये और कहा कि वृत्रासुर जब तक तप करता रहेगा, तब तक हम सब देवों को उसके अधीन रहना पड़ेगा। वह धर्मात्मा असुर बहुत बलवान् हो गया है। अतः भगवन्! आप वृत्रासुर का वध करके हम पर उपकार कीजिये।

देवराज इन्द्र की प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा कि मैं उसके स्नेह-बन्धन में बँधा हूँ, इसलिए मैं वध नहीं करूंगा। परन्तु मैं उपाय बताता हूँ जिससे इन्द्र उसका वध कर सकेंगे। मैं अपने तेज को तीन भागों में विभक्त करता हूँ। एक अंश इन्द्र में प्रवेश करे, दूसरा वज्र में व्याप्त हो जाये और तीसरा भूतल में चला जाय। तत्पश्चात् इन्द्र आदि देवगण उस स्थान पर आये जहाँ वृत्रासुर तप कर रहा था। इन्द्र ने दोनों हाथों से वज्र उठाकर वृत्रासुर के मस्तक पर दे मारा। उससे उसका मस्तक कट गया। निरपराध वृत्रासुर का वध उचित नहीं था, यह सोचकर इन्द्र बहुत चिन्तित हुए और तुरन्त ही अन्धकारमय प्रदेश में चले गये। जाने के समय ब्रह्महत्या उनके पीछे लग गयी और उनके अंगों पर टूट पड़ी।

इन्द्र अदृश्य हो गये थे, इससे देवों को बड़ा दुःख हुआ और भगवान् विष्णु से कहा कि ब्रह्महत्या इन्द्र को कष्ट दे रही है, अतः आप उद्धार का कोई उपाय बताइये। विष्णु बोले कि इन्द्र मेरा ही यजन करें। पवित्र अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करके वे पुनः अपना देवेन्द्र पद प्राप्त कर लेंगे। तदनन्तर बृहस्पति जी को साथ ले सभी देवगण इन्द्र के छिपने के स्थान पर गये और अश्वमेध यज्ञ करने लगे। जब यज्ञ समाप्त हुआ तो ब्रह्महत्या ने देवताओं के निकट आकर पूछा- मेरे लिए कहाँ स्थान बनाओगे? देवों ने कहा- तू अपने आपको स्वयं ही चार भागों में विभक्त कर ले। वह बोली- मैं अपने एक अंश से वर्ष के चार मास नदियों में निवास करूंगी, दूसरे भाग से भूमि पर। तीसरे अंश से युवावस्था वाली स्त्रियों में प्रतिमास तीन रात तक निवास करूंगी और उनके दर्प को नष्ट करती रहूंगी। तथा चौथे भाग से शुद्ध आचरण वाले ब्राह्मणों का जो वध करते हैं उन पर आक्रमण करूंगी। देवों ने कहा- वह सब ऐसा ही हो। तत्पश्चात् लक्ष्मण ने कहा- अश्वमेध यज्ञ का ऐसा ही प्रभाव है। आप इसका यजन करें।

लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम ने कहा- अश्वमेध यज्ञ का जो फल तुमने बताया है वह उसी रूप में ठीक है। इस सम्बन्ध में तुम दोनों वाह्लीक देश के राजा इल की कथा सुनो। इल बड़े धर्मात्मा नरेश थे और उनका प्रभाव बहुत व्यापक था। एक बार वे आखेट (शिकार) के लिए वन में गये और महासेन (स्वामी कार्तिकेय) के जन्म-स्थान के प्रदेश में पहुँच गये। उस समय वहाँ भगवान् शिव पार्वती और अपने अनुचरों के साथ मनोरंजन कर रहे थे। सभी ने स्त्री रूप धारण कर रखा था। उस वन में जन्तु, वृक्ष आदि भी स्त्रीलिंग में परिणत हो गये थे। राजा इल ने वहाँ पहुँचने पर देखा कि सेवकों सहित वे स्त्री रूप में परिणत हो गये हैं। यह जानकर कि यह महादेव जी की इच्छा से हुआ है, वे भयभीत हो गये तथा सेना व सेवकों के साथ भगवान् नीलकण्ठ की शरण में गये। महादेव जी ने कहा- राजर्षि! पुरुषत्व छोड़कर जो चाहो वर माँग लो। इस प्रकार पुरुषत्व के लिए इन्कार होने पर वे पर्वतराज की पुत्री उमादेवी के चरणों में गिर गये और कहा- आप अनुग्रह कीजिये। उमा देवी ने कहा- राजन्! तुम पुरुषत्व-प्राप्ति का वर चाहते हो। उसके आधे भाग के दाता महादेव जी हैं, आधा वर मैं दे सकती हूँ। मैं तुम्हारे आधे जीवन को पुरुषत्व में परिवर्तित कर सकती हूँ। यह सुनकर राजा ने कहा- देवि! मैं एक मास तक अनुपम रूपवती स्त्री के रूप में रहकर फिर एक मास तक पुरुष होकर रहूँ। पार्वती जी ने कहा- ऐसा ही होगा तथा उस समय तुम्हें पिछला रूप स्मरण नहीं रहेगा। तदनंतर इला नारी होकर नारी रूप में ही परिणत अनुचरों से घिरी हुई वन में विचरने लगी। उस वनप्रान्त में एक सुन्दर सरोवर था। वहाँ सोम-पुत्र बुध तपस्या करते थे। इला ने उन्हें देखा और उनके सुन्दर रूप के आलोक से विस्मय में पड़ गयी। इला पर दृष्टि पड़ने से ही बुध भी कामदेव के वशीभूत हो गये। उनका चित्त अस्थिर हो उठा और उसका परिचय जानने को उत्सुक हुए। अतः आश्रम में पहुँचकर सभी सुन्दरियों को बुलाया और उनके द्वारा यह जानकर कि उनका कोई पति नहीं

है और वे उन्मुक्त भाव से वन में विचर रही हैं, कहा– तुम सब लोग किंपुरुष (किन्नरी) होकर पर्वत के किनारे रहोगी। अपने लिए निवास-स्थान बना लो। और वे रहने लगीं। जब सब किन्नरियाँ चली गयीं तो बुध इला के साथ विहार करने लगे। इस प्रकार एक मास बीत गया। श्रीमान् इल अपनी शय्या पर जाग उठे। जलाशय पर बुध को तपस्या करते देखा तो कहा– भगवन्! मैं अपने सेवकों के साथ इस पर्वत पर आया था, परन्तु वे दिखाई नहीं दे रहे हैं। बुध ने कहा– ओलों की वर्षा से आपके सेवक मारे गये तथा भय से पीड़ित हो आप इस आश्रम में आकर सो गये। आप धैर्य धारण करें तथा सुखपूर्वक निवास कीजिये। इल ने कहा– ब्रह्मन्! मैं राज्य का परित्याग नहीं करूंगा, अतः मुझे जाने की आज्ञा दें। मेरा पुत्र शशविन्दु राज्य प्राप्त करेगा। बुध ने कहा– राजन्! तुम प्रसन्नतापूर्वक यहाँ रहना स्वीकार कर लो, तब मैं तुम्हारा हितसाधन एक वर्ष में करूंगा। इस प्रकार राजा इल एक मास स्त्री तथा फिर एक मास पुरुष होकर रहने लगे और नवें मास में इला ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम पुरूरवा पड़ा। इल जब एक मास के लिए पुरुष भाव को प्राप्त हुए तो बुध ने महात्मा संवर्त को बुलाया तथा च्यवन, दुर्वासा इत्यादि अन्य महान् महर्षिगण भी बुध का आमन्त्रण पाकर आये। बुध ने सभी से कहा कि इनकी जो स्थिति है उससे मुक्ति दिलानी है। सबने सम्मति दी कि इस रोग का भेषज (उपचार) केवल अश्वमेध यज्ञ है। यज्ञ से भगवान् शिव प्रसन्न होकर आये और इल को सदा के लिए पुरुषत्व प्रदान कर दिया। राजा इल ने वाह्लीक देश छोड़कर मध्य देश में (गंगा-यमुना के संगम पर) एक उत्तम नगर बसाया जिसका नाम था– प्रतिष्ठानपुरी। राजा इल के पुत्र शशदिन्दु ने वाह्लीक देश का राज्य प्राप्त किया तथा इल के ब्रह्मलोक जाने के बाद पुरूरवा ने प्रतिष्ठानपुर का राज्य प्राप्त किया। अश्वमेध यज्ञ का ऐसा ही प्रभाव है।

श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ का निश्चय करके वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि और काश्यप आदि द्विजों को मन्त्रणा के लिए सादर आमन्त्रित किया। उन लोगों की सम्मति प्राप्त करके श्रीराम ने लक्ष्मण और भरत से कहा कि नैमिषारण्य में गोमती के तट पर विशाल यज्ञमण्डप बनाया जाय तथा सुग्रीव, विभीषण एवं अन्य सब नरेशों को शीघ्र आने के लिए आमंत्रित किया जाय। नैमिषारण्य में सभी प्रकार के अन्न, घी, तेल, दूध, दही, चन्दन, सुगन्धित पदार्थ प्रचुर मात्रा में भेजे जायँ। भरत सौ करोड़ से अधिक सोने-चाँदी के सिक्के लेकर जायें। मार्ग में क्रय-विक्रय के लिए बाजार लगाया जाय। ऐसी व्यवस्था हो कि जो लोग आयें, वे सब विधिपूर्वक तुष्ट, पुष्ट एवं सम्मानित होकर लौटें। मेरी सभी माताएं मेरी पत्नी की स्वर्णमयी प्रतिमा साथ लेकर यज्ञकर्म के जानकार ब्राह्मणों को आगे करके भरत का अनुगमन करते हुए यात्रा करें।

श्रीराम ने उत्तम लक्षणों से सम्पन्न तथा कृष्णसार मृग के समान काले रंग वाले एक घोड़े को छोड़ा तथा लक्ष्मण को उस अश्व की रक्षा के लिए नियुक्त करके सेना सहित नैमिषारण्य गये। यज्ञमण्डप तथा अन्य व्यवस्था देखकर श्रीराम संतुष्ट हुए। अश्व के भ्रमण

का कार्य भी सम्पन्न हो गया। यज्ञ इतनी सुन्दर व्यवस्था से सम्पन्न हुआ कि वहाँ आये तपस्वी मुनि कहते थे कि ऐसा यज्ञ तो इसके पूर्व कहीं नहीं देखा गया। वह यज्ञ एक वर्ष से अधिक चलता रहा तथा उसमें कभी किसी बात की कमी नहीं हुई। वानर और राक्षस सामग्री लिये खड़े रहते थे और वस्त्र, धन तथा अन्न की इच्छा रखने वाले याचकों को अधिक से अधिक देते थे।

यज्ञ जब चालू हुआ तो वाल्मीकि मुनि अपने शिष्यों के साथ पधारे। राजा राम तथा महात्मा मुनियों द्वारा सम्मानित होकर मुनि ने वहाँ निवास किया। उन्होंने अपने दो शिष्यों से कहा– तुम दोनों भाई सब ओर घूम-फिर कर सम्पूर्ण रामायण काव्य का गान करो। प्रतिदिन बीस-बीस सर्गों का मधुर स्वर से गान करना। धन की इच्छा से थोड़ा भी लोभ न करना। यदि श्रीराम पूछें कि तुम दोनों किसके पुत्र हो, तो कह देना कि हम महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं। सीता के ये दोनों पुत्र 'बहुत अच्छा, हम ऐसा ही करेंगे' कहकर चल दिये।

प्रातःकाल दोनों भाई रामायण का गायन करने लगे। श्रीराम ने भी वह गान सुना। वह आचार्यों के बताये हुए नियमों के अनुकूल था। संगीत की विशेषताओं से युक्त स्वरों के आलापने की अपूर्व शैली थी। श्रीराम को बड़ा कौतूहल हुआ। अवकाश मिलने पर श्रीराम ने बड़े-बड़े मुनियों, राजाओं, पण्डितों तथा अनेक विद्वानों एवं सभासदों को बुलाया तथा रामायण का गायन करने वाले दोनों बालकों को भी बुलाया। दोनों मुनिकुमारों ने गाना आरम्भ किया। फिर तो मधुर संगीत का तार बँध गया। किसी की तृप्ति नहीं हो रही थी। सभी परस्पर बातचीत में कहने लगे कि इन कुमारों की आकृति श्रीराम से मिलती-जुलती है; वल्कल वस्त्र और जटाएं छोड़ दें तो जैसे इन्हीं के प्रतिबिम्ब हों। प्रारम्भ से लेकर बीस सर्गों का गायन सम्पन्न हुआ। उसे सुनकर श्रीराम ने भरत से कहा कि तुम इन बालकों को अठारह सहस्र स्वर्णमुद्राएं और जो भी ये चाहें, पुरस्कार के रूप में प्रदान करो। भरत जब देने लगे तो बालकों ने कहा– हम वनवासी हैं, सोना-चाँदी वन में ले जाकर क्या करेंगे? यह सुनकर श्रीराम सहित सभी आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने पूछा कि इस महाकाव्य का परिमाण कितना (श्लोक-संख्या कितनी) है? इसके रचयिता कौन हैं और कहाँ हैं? यह सुनकर दोनों मुनिकुमार बोले कि इसके रचयिता भगवान् वाल्मीकि हैं और वे यज्ञ में पधारे हैं। इस महाकाव्य में चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं। तपस्वी भार्गव ने इसमें आदि से अन्त तक पाँच सौ सर्गों तथा छः काण्डों का निर्माण किया है। इनके अतिरिक्त उत्तरकाण्ड की भी रचना की है। इसमें आपके जीवन-पर्यन्त तक की सारी बातें आ गयी हैं। यह सुनकर श्रीराम ने प्रतिदिन वह काव्य सुनने का निश्चय किया।

श्रीराम बहुत दिनों तक रामायण-गान सुनते रहे। उस कथा से उन्हें ज्ञात हुआ कि कुश और लव सीता के ही पुत्र हैं। यह जानकर उन्होंने अपने दूतों से कहा कि तुम लोग वाल्मीकि मुनि के पास जाओ और मेरा संदेश दो कि सीता का चरित्र शुद्ध है तो वे आकर जन-समुदाय में अपनी शुद्धता को प्रमाणित करें। दूतों ने जाकर वाल्मीकि मुनि को श्रीराम

का संदेश सुनाया। मुनि ने कहा– श्रीराम जो आज्ञा देते हैं, सीता वही करेगी। यह समाचार पाकर श्रीराम ने ऋषियों तथा राजाओं और सभी सभासदों से कहा कि सब लोग एकत्र होकर सीता का शपथ-ग्रहण देखें।

६
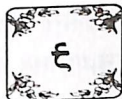
वाल्मीकि मुनि के साथ सीता का आगमन; पृथ्वी-प्रवेश; श्रीराम का परमधाम-गमन।

दूसरे दिन मुनिवर वाल्मीकि सीता जी को साथ लेकर वहाँ आये। उस समय समस्त दर्शकों का हृदय दुःख देने वाले महान् शोक से व्याकुल था। वे सीता और राम को उच्च स्वर से साधुवाद दे रहे थे। मुनिवर वाल्मीकि ने कहा– राम! यह सीता धर्मपरायणा है। आपने लोकापवाद से डरकर इसे मेरे आश्रम के पास त्याग दिया था। सीता आपको अपनी शुद्धता का विश्वास दिलायेगी। ये दोनों कुमार जो जुड़वाँ जन्मे हैं, आपके ही पुत्र हैं। मैं प्रचेता का दसवाँ पुत्र हूँ, मेरे मुँह से कभी असत्य बात नहीं निकली है। यदि सीता में कोई दोष हो तो मुझे तपस्या का फल न मिले। पाप इसे छू भी नहीं सकता। अतः लोकापवाद से डरे हुए आपको यह अपनी शुद्धता का विश्वास दिलायेगी।

मुनिवर वाल्मीकि की बात सुनकर श्रीराम ने कहा– सीता के सम्बन्ध में आप जैसा कह रहे हैं वह सब ठीक है। एक बार पहले भी देवताओं के सामने सीता की शुद्धता का विश्वास मुझे प्राप्त हो गया था। किन्तु आगे चलकर लोकापवाद उठा, जिसके कारण मुझे त्याग करना पड़ा। सीता सर्वथा निष्पाप है। मैंने केवल समाज के भय से इसे छोड़ दिया था। अतः आप इस अपराध को क्षमा करें। मैं यह भी जानता हूँ कि कुश और लव मेरे पुत्र हैं। तथापि जन-समुदाय में शुद्ध प्रमाणित होने पर ही मिथिलेशकुमारी में प्रेम हो सकता है। सीता के शपथ के समय ब्रह्मा जी के साथ मुख्य-मुख्य देव वहाँ आ गये। समस्त राज्यों से आये हुए मनुष्यों ने प्राचीन काल के सत्ययुग की भाँति यह अद्भुत-सी घटना अपनी आँखों से देखी। उस समय सीता जी तपस्विनियों के अनुरूप गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थीं। हाथ जोड़कर मुख को नीचे किये सीता जी बोलीं– श्रीराम के सिवा दूसरे किसी पुरुष का मैं मन में भी चिन्तन नहीं करती, यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दे। सीता के इस प्रकार शपथ ग्रहण करते हुए भूतल से एक सुन्दर दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ जिसे महापराक्रमी नागों ने अपने सिर पर धारण कर रक्खा था। साथ ही पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी प्रकट हुईं। उन्होंने सीता को गोद में उठा लिया और सिंहासन पर बैठा दिया तथा सीता जी रसातल में प्रवेश करने लगीं। यज्ञमण्डप में पधारे सभी मुनि और नरेश आश्चर्य से भर गये। कोई हर्षनाद करने लगे, कोई ध्यानमग्न हो गये, कोई श्रीराम की ओर देखने लगे और कोई हक्के-बक्के होकर सीता की ओर निहारने लगे। उस मुहूर्त में वहाँ का सारा जन-समुदाय अत्यन्त मोहाच्छन्न-सा हो गया। वानर चीखने लगे और मुनियों ने

साधु-साधु कहा।

विदेहकुमारी सीता के रसातल-प्रवेश कर जाने पर श्रीराम बहुत दुःखी हुए। बहुत देर तक रोकर आँसू बहाते हुए क्रोध और शोक से युक्त हो बोले– आज मेरा मन अभूतपूर्व शोक में डूबना चाहता है, क्योंकि इस समय मेरी आँखों के सामने से सीता अदृश्य हो गयी। जब लंका में जाकर मैं सीता को लौटा लाया, तब पृथ्वी के भीतर से ले आना कौन बड़ी बात है? पूजनीये भगवती वसुन्धरे! मुझे सीता को लौटा दो, अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊंगा। यदि इस पृथ्वी पर तुम उसी रूप में सीता को मुझे नहीं लौटातीं तो पर्वतों और वनों सहित सारी भूमि का मैं विनाश कर डालूंगा। फिर भले ही सब कुछ जलमय हो जाय। श्रीराम जब इस प्रकार क्रोध से बोल रहे थे, तब ब्रह्मा जी ने कहा– हे राम! आप मन में संताप न करें। अपने पूर्व-स्वरूप का स्मरण करें। साध्वी सीता सर्वथा शुद्ध हैं। वे नागलोक के बहाने आपके परम धाम चली गयी हैं। अब पुनः साकेतधाम में आपकी उनसे भेंट होगी। इस समय जो कुछ मैं कहता हूँ, उस पर ध्यान दीजिये। राम! यह आदिकाव्य है। यह आपके सारे जीवन-वृत्त का विस्तार से ज्ञान करायेगा। सीता के अन्तर्धान होने के बाद जो भविष्य में होने वाली बातें हैं, उनका भी महर्षि वाल्मीकि ने वर्णन कर दिया है। इसमें कही गयी सारी बातें सत्य हैं। आप धर्मपूर्वक एकाग्रचित हो भविष्य की घटनाओं से युक्त शेष रामायण सुन लीजिये। इसके अन्तिम भाग का नाम उत्तरकाण्ड है। अतः आप सुनिये। यह कहकर ब्रह्मा जी देवताओं के साथ अपने लोक को चले गये।

प्रातःकाल श्रीराम ने बड़े-बड़े मुनियों को बुलाकर अपने दोनों पुत्रों से कहा– शेष रामायण का गायन करो। दोनों ने गाना प्रारम्भ किया। शोक से व्यथित होने के कारण श्रीराम के मन को शान्ति नहीं मिली। तदनन्तर श्रीराम ने राजाओं, ऋक्षों, वानरों और राक्षसों एवं जन-समुदाय को धन देकर विदा किया तथा अयोध्या में प्रवेश किया। वे दोनों पुत्रों के साथ रहने लगे। प्रत्येक यज्ञ में सीता की स्वर्णिम प्रतिमा बनवा लिया करते थे। श्रीराम ने दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया और यज्ञ किये। इस प्रकार राज्य करते हुए श्रीराम का समय धर्मपालन में ही व्यतीत हुआ। भूमण्डल के सभी राजा श्रीराम को प्रसन्न रखते थे। सदा सुकाल रहा, कभी अकाल नहीं पड़ता था। संसार में कोई उपद्रव नहीं होता था। दीर्घकाल के बाद राजमाता कौसल्या मृत्यु को प्राप्त हुई। फिर सुमित्रा और कैकेयी ने भी उसी पथ का अनुसरण किया। इस प्रकार सहस्रों वर्ष बीत गये।

कुछ काल के पश्चात् केकय देश के राजा युधाजित ने अपने पुरोहित ब्रह्मर्षि गार्ग्य को श्रीराम के पास बहुत से उपहारों के साथ भेजा और संदेश दिया कि सिन्धु नदी के दोनों तटों पर बसा गन्धर्व देश बहुत सुन्दर है, उसे जीतकर अपने राज्य में मिला लें। मामा का संदेश सुनकर श्रीराम ने 'बहुत अच्छा' कहा और भरत की ओर देखकर कहा– दोनों भरतकुमार तक्ष और पुष्कल उस देश का शासन करेंगे। भरत उन्हें वहाँ स्थापित करके लौट आयेंगे। तदनन्तर दोनों का राज्याभिषेक कर दिया।

केकयराज युधाजित ने जब सुना कि स्वयं भरत सेनापति होकर आ रहे हैं तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा बड़ी सेना के साथ इच्छानुसार रूप धारण करने वाले गन्धर्वों के देश के पास भरत से मिलकर आक्रमण किया। सात रात तक युद्ध चलता रहा। तब भरत ने कुपित होकर संवर्त नाम से प्रसिद्ध अस्त्र का प्रयोग किया जिससे तीन करोड़ गन्धर्वों का पराभव हो गया। भरत ने दो समृद्धिशाली नगर बसाये तथा अपने पुत्रों को भलीभाँति सुस्थापित करके पाँच वर्ष पश्चात् अयोध्या लौट आये।

तदनंतर श्रीराम ने लक्ष्मण के दोनों पुत्रों अंगद और चन्द्रकेतु को भी राज्य का भार सौंपने की बात सोचकर उनका राज्याभिषेक किया। अंगद के साथ लक्ष्मण ने जाकर कारुपथ देश में अंगदीया नामक नगरी बसायी तथा उनके साथ एक वर्ष तक रहकर उनका राज्य सुदृढ़ किया। यह स्थान अयोध्या से पश्चिम की ओर था। भरत ने चन्द्रकेतु के साथ उत्तर दिशा में जाकर चन्द्रकांता नाम से विख्यात नगरी बसायी तथा उनके राज्य को सुदृढ़ करके वर्ष भर बाद अयोध्या लौट आये। धर्म-साधन में तत्पर तीनों भाई यथा-समय घूम-फिर कर प्रजा की देखभाल करते थे।

कुछ समय और बीत जाने पर साक्षात् काल तपस्वी के रूप में राजभवन के द्वार पर आया और द्वार पर खड़े लक्ष्मण से कहा कि मैं एक भारी कार्य से आया हूँ, तुम श्रीराम को मेरे आगमन की सूचना दो। लक्ष्मण के सूचना देने पर श्रीराम ने भीतर ले आने की आज्ञा दी। तपस्वी ने आकर कहा कि मैं अतिबल का दूत हूँ तथा जो संदेश मैं उनका लाया हूँ उसको सुनने के लिए केवल हम और आप ही रहें। आपको यह भी घोषित करना होगा कि जो कोई मनुष्य हम दोनों की बातचीत सुन ले अथवा वार्तालाप करते देख ले, वह आपका वध्य होगा। श्रीराम ने 'तथास्तु' कहा और लक्ष्मण को आज्ञा दी कि तुम पहरा दो और यदि किसी ने देख लिया तो मारा जायेगा। लक्ष्मण को द्वार पर नियुक्त करके श्रीराम ने कहा– महर्षि! आप बतायें।

तपस्वी ने कहा– महाराज! ब्रह्मा जी ने यह संदेश दिया है। पूर्वावस्था में हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति के समय मैं माया द्वारा आपसे उत्पन्न हुआ था, इसलिए आपका पुत्र हूँ। मुझे सर्वसंहारकारी काल कहते हैं। आपने लोकों की रक्षा के लिए जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हो गयी। आपने स्वयं ही ग्यारह हजार वर्षों तक मर्त्यलोक में निवास की अवधि निश्चित की थी, वह पूरी हो गयी, अतः अब आपके लिए यह हम लोगों के समीप आने का समय है। यदि और अधिक काल रहने की इच्छा हो तो आप रह सकते हैं। अथवा यदि परमधाम पधारने का विचार हो तो अवश्य आयें। यह सुनकर श्रीराम ने कहा– मेरा उद्देश्य पूरा हो गया, अब मैं जहाँ से आया था वहीं चलूंगा।

इस प्रकार दोनों में बातचीत हो रही थी कि महर्षि दुर्वासा राजद्वार पर आ पहुँचे। उन्होंने लक्ष्मण से कहा– तुम शीघ्र ही मुझे श्रीराम से मिला दो। उनसे मिले बिना मेरा एक काम बिगड़ रहा है। मुनि की बात सुनकर लक्ष्मण ने कहा– भगवन्! आप बताइये, आपका

कौन-सा काम है? मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ? इस समय श्रीराम दूसरे कार्य में संलग्न हैं। अतः दो घड़ी तक आप प्रतीक्षा कीजिये। यह सुनकर दुर्वासा रोष से तमतमा उठे और बोले- लक्ष्मण! इसी क्षण श्रीराम को मेरे आगमन की सूचना दो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो मैं इस राज्य, नगर, तुमको, श्रीराम, भरत तथा तुम्हारी सन्तानों को भी शाप दे दूंगा। यह घोर वचन सुनकर लक्ष्मण ने विचार किया कि अकेले मेरी ही मृत्यु हो, यह अच्छा है, किन्तु सबका विनाश नहीं होना चाहिये। ऐसा सोचकर लक्ष्मण ने श्रीराम को दुर्वासा के आगमन का समाचार निवेदन किया। यह सुनकर श्रीराम काल को विदा करके दुर्वासा मुनि से मिले। दुर्वासा बोले- मैंने एक सहस्र (हजार) वर्षों तक उपवास किया है। आज व्रत की समाप्ति का दिन है। इसलिए इस समय आपके यहाँ जो भी भोजन तैयार हो, उसे मैं ग्रहण करना चाहता हूँ। यह सुनकर श्रीराम ने मुनिश्रेष्ठ को तैयार भोजन कराया और वे तृप्त होकर अपने आश्रम को चले गये। दुर्वासा मुनि के जाने के बाद श्रीराम को काल के उस वचन पर विचार करके भ्रातृवियोग के स्मरण से महान् दुःख हुआ। वे कुछ बोल न सके और इस निर्णय पर पहुँचे कि अब यह कुछ भी न रहेगा।

श्रीराम को सिर झुकाये तथा दीन स्थिति में देखकर लक्ष्मण ने बड़े हर्ष के साथ कहा- महाबाहो! आपको मेरे लिए संताप नहीं करना चाहिये, क्योंकि पूर्वजन्म के कर्मों से बँधी हुई काल की गति ऐसी ही है। आप निश्चिन्त होकर मेरा वध कर डालें। आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन करें। श्रीराम की इन्द्रियाँ चंचल हो उठीं तथा धैर्य विचलित हो गया। वे मन्त्रियों तथा पुरोहित जी को बुला कर सारा वृत्तान्त बताने लगे। तब वसिष्ठ जी ने कहा- महाबाहो! इस समय विकट विनाश आने वाला है। काल बड़ा प्रबल है। तुम लक्ष्मण का परित्याग कर दो। प्रतिज्ञा झूठी न करो। उनके बिना अब धर्मपूर्वक सम्पूर्ण जगत् को स्वस्थ एवं सुखी बनाओ। यह सुनकर श्री राम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ। साधु पुरुषों का त्याग किया जाय अथवा वध, दोनों समान हैं। यह सुनकर लक्ष्मण के नेत्रों में आँसू आ गये और वे वहाँ से चल दिये। सरयू के किनारे जाकर उन्होंने आचमन किया और सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके प्राणवायु को रोक लिया। लक्ष्मण अपने शरीर के साथ ही ओझल हो गये और इन्द्र उन्हें लेकर स्वर्ग चले गये।

लक्ष्मण का त्याग करके श्रीराम दुःख-शोक में मग्न हो गये। वे अपने पुरोहित, मन्त्री और महाजनों से बोले कि आज मैं भरत का राजा के पद पर अभिषेक कर देता हूँ, उसके बाद वन को चला जाऊंगा। यह सुनकर भरत राज्य की निन्दा करने लगे और बोले- मुझे आपके बिना राज्य नहीं चाहिये। नरेश्वर! आप इन कुश व लव का राज्याभिषेक कीजिये। दक्षिण कोशल में कुश को तथा उत्तर कोशल में लव को राजा बनाइये। भरत की बात सुनकर महर्षि वसिष्ठ ने कहा- श्रीराम! पृथ्वी पर पड़े इन प्रजाजनों की ओर देखो और इनका अभिप्राय जानकर कार्य करो। श्रीराम ने प्रजाजनों से पूछा- मैं आप लोगों का कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ? प्रजाजनों ने कहा- आप जहाँ भी जायेंगे, हम भी वहीं चलेंगे। यदि आपका

प्रेम है तो हमें साथ चलने की आज्ञा दीजिये। पुरवासियों की दृढ़ भक्ति देख श्रीराम ने "तथास्तु" कहकर उनका अनुमोदन किया और कुश तथा लव को दक्षिण एवं उत्तर कोशल के राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। उन दोनों को प्रचुर धन तथा सेना के साथ उनकी राजधानियों में भेज दिया और शत्रुघ्न को बुलाने के लिए दूत भेजा।

तीन दिन और तीन रात चलकर दूत मधुरा (मथुरा) पहुँचे तथा शत्रुघ्न को सब समाचार दिया। शत्रुघ्न ने दोनों पुत्रों को अलग-अलग नगर एवं जनपदों का राजा बनाया और तुरन्त श्रीराम के पास अयोध्या आ गये और बोले कि मुझे भी आप अपने साथ चलने की आज्ञा दें। इसके विपरीत आप मुझसे कुछ न कहियेगा। उनकी बात समाप्त होते-होते ही इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानर, रीछ और राक्षसों के समुदाय बड़ी संख्या में वहाँ आ गये। वे सब बोले– राजन्! हम भी आपके साथ चलने का निश्चय लेकर यहाँ आये हैं। इस बीच सुग्रीव ने भी कहा कि मेरा भी आपके साथ चलने का दृढ़ निश्चय है। यह सुनकर श्रीराम ने कहा– सखे सुग्रीव! मैं तुम्हारे बिना देवलोक में और महान् परमपद या परमधाम में भी नहीं जा सकता। फिर उन्होंने राक्षसराज विभीषण से कहा– विभीषण! जब तक संसार की प्रजा जीवन धारण करेगी, तब तक तुम भी लंका में रहकर अपने शरीर को धारण करोगे। तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिये। भगवान् जगन्नाथ की सदा पूजा करते रहना। विभीषण ने श्रीराम का आज्ञापालन स्वीकार किया। तदनंतर हनुमान् से श्रीराम बोले– तुमने दीर्घ काल तक जीवित रहने का निश्चय किया है। अपनी उस प्रतिज्ञा को व्यर्थ न करो। जब तक संसार में मेरी कथाओं का प्रचार रहे, तुम प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो। हनुमान् ने कहा– भगवन् ! आपके आदेश का पालन करता हुआ मैं पृथ्वी पर ही रहूंगा। फिर श्री राम ने जाम्बवान्, विभीषण, हनुमान्, मैन्द और द्विविद, पाँचों को कहा कि जब तक प्रलय एवं कलियुग न आ जाय, तुम जीवित रहो। अन्य सबसे कहा कि तुम सब अपने कथनानुसार मेरे साथ चलो।

सबेरा होने पर भगवान् राम पुरोहित से बोले कि महाप्रयाण के रथ पर अग्निहोत्र की आग और ब्राह्मणों लेकर चलें तथा मेरे वाजपेय यज्ञ का सुन्दर छत्र भी ले चलना चाहिये।

फिर भगवान् श्रीराम वेद-मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सरयू नदी के तट की ओर चले। श्रीराम के दाहिने पार्श्व में श्रीदेवी तथा वाम भाग में भूदेवी विराजमान थीं तथा आगे-आगे उनकी व्यवसाय (संहार)-शक्ति चल रही थी। चारों वेद ब्राह्मणों का रूप धर कर तथा गायत्री देवी, ओंकार, और वषट्कार भक्तिभाव से श्रीराम का अनुसरण कर रहे थे। उत्तम धनुष-वाण लेकर बहुत से पुरुष, महात्मा ऋषि, ब्राह्मण, अन्तःपुर की स्त्रियाँ, भरत, शत्रुघ्न तथा समस्त मन्त्री अनुचरों सहित श्रीराम के पीछे-पीछे जा रहे थे। चराचर प्राणियों में जो-जो श्रीराम को जाते देखते थे, वे सभी उस यात्रा में उनके पीछे-पीछे चल देते थे।

अयोध्या से डेढ़ योजन दूर जाकर भगवान् श्रीराम ने सरयू का दर्शन किया। वहाँ वे प्रजाजनों के साथ बैठ गये। उसी समय ब्रह्मा जी समस्त देवों के साथ उस स्थान पर आ

पहुँचे। उनके साथ करोड़ों दिव्य विमान थे। श्रीराम सरयू के जल में प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ने लगे। तब ब्रह्मा जी आकाश से ही बोले– श्री विष्णुस्वरूप रघुनन्दन! आइये, आपका कल्याण हो। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि आप परमधाम को पधार रहे हैं। यह सुनकर श्रीराम ने भाइयों के साथ शरीर सहित अपने वैष्णव तेज में प्रवेश किया। फिर तो सभी देवता, ऋषि, नाग, गन्धर्व, यक्ष, दानव और राक्षस उनका गुणगान करने लगे। तत्पश्चात् श्रीराम ब्रह्मा जी से बोले– पितामह! इस सम्पूर्ण जन-समुदाय को भी आप उत्तम लोक प्रदान करें। यह सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा– भगवन्! ये सभी लोग 'संतानक' नामक लोकों में जायेंगे। वे ब्रह्मलोक के ही निकट हैं। जिन वानरों और रीछों की देवताओं से उत्पत्ति हुई थी, वे उन्हीं में प्रविष्ट हो गये। सुग्रीव ने सूर्यमण्डल में प्रवेश किया। ब्रह्मा जी ने जब संतानक लोकों की प्राप्ति की घोषणा की, तब सरयू के गो-प्रतारघाट पर आये उन सब लोगों ने जल में डुबकी लगायी। जिसने-जिसने जल में गोता लगाया, वही-वही मनुष्य शरीर त्याग कर विमान पर आ बैठा। स्थावर और जंगम सभी प्रकार के प्राणी सरयू के जल में प्रवेश करके दिव्य लोक में जा पहुँचे। इस प्रकार सब प्राणियों को संतानक लोक में स्थान देकर ब्रह्मा जी देवों के साथ अपने महान् धाम को चले गये।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम पहले की ही भाँति अपने विष्णु स्वरूप से परमधाम में प्रतिष्ठित हुए। उनके द्वारा चराचर प्राणियों सहित यह समस्त त्रिलोकी व्याप्त है।

यह प्रबन्ध-काव्य आयु तथा सौभाग्य को बढ़ाता है और पापों का नाश करता है। रामायण वेद के समान है। विद्वान् पुरुषों को इसे श्राद्धों में पढ़कर सुनाना चाहिये।

इसके पाठ से पुत्रहीन को पुत्र और धनहीन को धन मिलता है। जो प्रतिदिन इसके श्लोक के एक चरण का भी पाठ करता है वह सब पापों से छुटकारा पा जाता है।

जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्न, अथवा सायंकाल में रामायण का पाठ करता है, उसे कभी किसी प्रकार का दुःख नहीं होता।

रमणीय अयोध्यापुरी भी बहुत वर्षों तक सूनी पड़ी रहेगी। फिर राजा ऋषभ के समय यह पुनः बसेगी।

प्रचेता के पुत्र (महर्षि) वाल्मीकि ने अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति के बाद की कथा एवं उत्तरकाण्ड सहित रामायण नामक इस ऐतिहासिक काव्य का निर्माण किया है। ब्रह्मा जी ने भी इसका अनुमोदन किया था।

जिसने इस लोक में रामायण की कथा सुन ली, उसने मानो प्रयाग आदि तीर्थों, गंगा आदि पवित्र नदियों, नैमिषारण्य आदि वनों और कुरुक्षेत्र आदि पुण्यक्षेत्रों की यात्रा पूरी कर ली।

इस प्रकार इस पुरातन आख्यान का आप लोग भक्तिपूर्वक पाठ करें। आपका कल्याण हो और भगवान् विष्णु के बल की जय हो।

उत्तरकाण्ड सम्पूर्ण

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सम्पूर्ण